स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, श्रृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -श्रृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ भगवान् कृष्णा

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मैं उस महापुरुष की बेला पर जाना चाहता हूँ, जिस महापुरुष ने जीवन की प्रतिभा को जाना है, जो अपने सुख और ऐश्वर्य को त्याग करके संसार सागर में आ करके अपनी विचित्रता का दिग्दर्शन कराते हुए इस संसार में चले गये। आज हम उस महापुरुष के ऊपर विचार-विनिमय करना चाहते है जिस महापुरुषों ने इस संसार में मानव को ज्ञान और विज्ञामयी जगत का दिग्दर्शन कराया।

जितने भी महापुरुषों का जन्म होता है वह ऊँचे-ऊँचे भवनों में नहीं होता है वह आपत्तिजनक स्थानों में ही हुआ करता है। उनका कहीं पर्वतों में जन्म हुआ है, कहीं कारागार में हुआ। भगवान् कृष्णा का जन्म भी ऊँचे भवनों में नहीं हुआ था, उनका जन्म महाराज कंस के कारागार में हुआ था। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, दिल्ली 3 सितम्बर, 1969)

भगवान कृष्णा का जन्म

महाराजा कंस उग्रसेन के पुत्र थे। उनके हृदय में अभिमान की मात्रा अधिक थी। अभिमान होने के नाते भगवान् कृष्णा के माता पिता, देवकी और वसुदेव को अपने कारागार में बन्द कर लिया था क्योंकि उन्होंने एक समय नारद मुनि से कहा था कि महाराज मेरी मृत्यु कैसे होगी? उन्होंने कहा कि तुम्हारी जो बहन है इसी के गर्भ

से सातवें स्थान में एक पुत्र का जन्म होगा वह तेरी मृत्यु का कारण बनेगा। उस समय महाराजा कंस ने विचारा कि जब मेरी मृत्यु उसके भुजों में है तो मैं उस पुत्र को जन्म होते ही नष्ट करूंगा और मृत्यु को आने ही नहीं दूंगा। मुनिवरो देखो, अभिमान में मनुष्य क्या नहीं करता? अपनी बहन देवकी और वसुदेव दोनों को अपने कारागार में स्थिर कर लिया। वह कारागार में रहे। जो भी शिशु देवकी के गर्भ से उत्पन्न होता उसको कंस अपने सेवकों से नष्ट करा देता। स्वयं भी इसी प्रतिभा का बन गया। मनुष्य स्वार्थ के वशीभूत होकर क्या नहीं कर सकता। मृत्यु के भय से वह सूक्ष्म-सूक्ष्म कन्याओ को भी नष्ट करने लगा। (बारहवां पुष्प माडल टाऊन दिल्ली, 4 सितम्बर, 1969)

जब माता देवकी के गर्भ में पुनीत आत्मा का प्रवेश हो गया जब पंचम माह हुआ तो देवकी के नेत्रों में एक लालिमा आ गई। नेत्रों में जब लालिमा आई तो देवकी पति देव से कहती है हे प्रभु! यह लालिमा क्यों बन गयी है? उन्होंने कहा कि हमारे द्वारा ऐसी सन्तान का जन्म होना है जो हमें कारागार से मुक्त करा सकेगा। यह कौन कह रहा है? यह वसुदेव कह रहा है क्योंकि वह वैज्ञानिक थे, वह अन्तरात्मा से वार्त्ता प्रकट करते थे। यदि राष्ट्र की लोलुपता कंस को नहीं होती तो वह (वसुदेव देवकी) कारागार में नहीं जा सकते थे। जब लालिमा बनी छठा माह प्रारम्भ हुआ तब देवकी अपने ही मस्तिष्क से ज्ञान की वार्त्ता प्रकट करने लगी। उन्होंने कहा प्रभु! यह

मुझे क्या हो गया है? आज मैं मन्त्रो को उच्चारण कर रही हूँ और मेरा ज्ञान उपजने लगा है। उन्होंने (वसुदेव) कहा देवी! वह जो पुण्य आत्मा है जो अन्तरिक्ष से आई है, जो नाभि में प्रवेश हो गयी है उसकी जो तरंगे है, उसका जो ज्ञान है, उसका समन्वय तुम्हारे मास्तिष्क से होने जा रहा है। शब्द जब महा लग्नाकता हो गया उस समय वह लालिमा समाप्त हो गयी और उर्ध्वा में ब्रह्मरन्ध से ले करके और त्रिवेणी के स्थान तक नारी की आभा में रसों का स्वादन होने लगा। उन्होंने कहा प्रभु! यह क्या हुआ? वसुदेव कहते है, हे देवी! तेरे गर्भस्थल से योगी का जन्म होगा। (सैतिसवाँ पुष्प, बरनावा, 23 फरवरी, 1980)

राजा कंस के कारागार में जहाँ वसुदेव और देवकी रहते थे, देवकी सदैव गायत्री का चिन्तन करती हुई संकल्प वादिनी बनी और भगवान् कृष्णा जैसें को जन्म देने वाली हुई। वे मातायें कैसी महान् होती हैं जिसका मन पवित्र होता है। जो कंस अन्न देता था उसको गायत्री मां को अर्पण करके, शुद्ध संकल्प करके अर्थात् एक सौ एक गायत्री का पाठ करके पान करती थी। (आत्मलोक अमृतसर 11 अप्रैल, 1979)

माता जब तू यहां कणाद, गौतम, राम, कृष्णा आदि को जन्म देती है तब तेरे हृदय की उदारता किस प्रकार की होगी यही विचार में नहीं आता। क्योंकि हे माता! जब प्रभु तेरे गर्भ स्थल में पुत्र की

रचना करते है तो उस समय जो सूक्ष्म यन्त्र बनते है यह यन्त्र तेरे भाव से बनते हैं। परमात्मा उन मन्त्रों के बनाने में जो द्रव्य लेता है वह द्रव्य तो तेरे द्वारा है परन्तु बनाने की शक्ति नहीं है। रचाने वाला तो प्रभु है। तो माता जितने ऊंचे तेरे भाव होगे उतने ही तेरे गर्भस्थल से होने वाले हम जैसे पुत्रों के भाव भी ऊंचे होंगे परन्तु जहां तेरे विचारों में, तेरी रसना से जैसे रसों का स्वादन् होगा तो देखो, वैसे ही रस स्वादन् से प्रभु तेरे गर्भ की रचना करते हैं। यदि तू मांस का भक्षण करती है तो उसके जो परमाणु होंगे वह तमोगुणी होगे तो तेरे पुत्र या पुत्री का तमोगुणी चुनाव होगा। हे मेरी पवित्र माता! तेरे शृंगार पर, तेरी मानवीयता पर उस काल में आक्रमण होता है जिस समय तू अपनी मानवीयता को और अपने वास्तविक स्वरूप को त्याग देती है। मेरे प्यारे! आदि ऋषि मण्डल। मुझे स्मरण है भगवान् कृष्ण का जीवन, उनका जन्म राजा कंस के कारागार में हुआ। जहां राजा कंस के हृदय की वेदना थी कि जन्म होते ही उसको नष्ट किया जायेगा। परन्तु वसुदेव और माता देवकी परमात्मा का चिन्तन कर रहे थे और उनके हृदय में एक वेदना जागृत हुई। वासुदेव ने कहा कि देवी! ''यदि हम इस कारागार में अपने सुन्दर पुत्र को जन्म दे सकते है तो बिना समय के उसकी मृत्यु कोई नहीं कर सकता। मेरे प्यारे! देखो माता देवकी और वासुदेव ने वैज्ञानिक रूपों से प्यारे पुत्र को जन्म दिया। (नौवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली 29

जुलाई, 1967)

यशोदा का त्याग

जब देवकी के गर्भ में आठवे शिशु की आशाकृति हुई, तब महाराजा कंस के अत्याचारों से समाज मे एक बड़ी क्रांन्ति आई और क्रान्तिवादियों ने यह कहा कि क्या करें? इसने तो अपने सम्बन्धियों को भी कारागार में स्थिर कर लिया है, वह हमें भी क्यों नहीं मृत्यु दण्ड देगा? वे परमात्मा से याचना करने लगे कि हे प्रभु! तू इनकी रक्षा कर। उनके गर्भ से जो यह आठवां शिशु उत्पन्न होने वाला है उसकी रक्षा कर। प्रजा की आत्मा की जो एक ध्वनि थी परमपिता परमात्मा ने वह स्वीकार की और उसका यह परिणाम हुआ कि जिस दिवस (कृष्णा) जन्म होने वाला था उस दिन वसुदेव-देवकी जमुना पर स्नान करने जा पहुँचे। अहा! माता देवकी को माता यशोदा के दर्शन हुए और उसने यशोदा से कहा "भोजक प्रभे अकृतान् पुत्रो ग्रतानि पुत्रं अन्यै कृतानि अस्तीति" उन्होंने कहा कि मैं भी गर्भवती हूँ मेरे यदि पुत्री होगी, तो मैं तुम्हें अर्पित कर सकती हूँ और अपने पुत्र को मेरे यहाँ अर्पित कर देना। दोनों की एक प्रकार की संकल्पना बन गई और उन दोनों का एक प्रकार का संकल्प हो गया।

यही रात्रि थी। आज मुझे प्रतीत हो रहा है जैसे भगवान् कृष्णा का जन्म आज हुआ हो। क्योंकि आज वही दिवस है, वही रात्रि है, जिस दिवस आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष से कुछ अधिक हुआ जब

भगवान् कृष्ण का जन्म हुआ था। जब जन्म हुआ तो उस समय कारागार पर जितने भी सेवक थे वह सब गाढ़ी निद्रा में परिणत हो गये, क्योंकि जिसको प्रभु जीवन देता है और जो स्वयं पवित्र आत्मा है, उसको संसार में कौन नष्ट कर सकता है? आज भी यदि कोई मानव प्रयत्नशील रहें कि मैं अमुक व्यक्ति को नष्ट कर सकता हूँ तो कोई कर ही नहीं सकता। तो मेरे प्यारे ऋषिवर जितने कारागार में सेवक थे सब विश्राम करने लगे और गाढ़ी निद्रा में परिणत हो गए। पुत्र का जन्म होते ही वसुदेव अपने बालक को एक सूक्ष्म से पात्र में ले गए क्योंकि उन्हें जमुनापार करना था। जमुना को पार कर उन्होंने यशोदा के द्वारा पुत्र को त्याग दिया। उसी रात यशोदा के यहाँ कन्या का जन्म हुआ था। यशोदा ने उसे अपने पति को अर्पित कर दिया। पति ने उसे वसुदेव को दे दिया। देवकी ने उसे स्वीकार कर लिया। दिवस होते ही कंस ने कहा कि पुत्र है या पुत्री? वसुदेव ने कहा कि महाराजा पुत्री है। कंस ने उसे भी नष्ट कर दिया। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 4 सितम्बर, 1968)

हमने तो ऐसा सुना है कि राजा कंस ने माता यशोदा की कन्या, जो भगवान् कृष्ण के स्थान पर लाई गई थी उसको नष्ट किया तो वह विद्युत् बन करके मेघों में चली गयी और मेघों में चले जाने से राजा कंस भयभीत हुआ था क्योंकि उसने आकाशवाणी से कहा कि तेरे विनाश के लिए उत्पन्न हो गई हूं और यह वह विद्युत है जिसमें

कंस के परिवार का कुछ अंकुर होता है उसी पर उसका प्रहार हो जाता है, ऐसा कहते है। (महानन्द जी)

यह विद्युत् तो प्रारम्भ से है, यह तो तन्मात्राओं का रूप है। यह विद्युत तो वह है जो प्राणों के महान संघर्ष से उत्पन्न होती है। जब यह मेघ अन्तरिक्ष में रहते हैं तो इन्द्र वायु अपने प्राण रूपी वज्रों का आक्रमण करता है तब जल और इन्द्र दोनों का संघर्ष होता है दोनों के आक्रमण से विद्युत उत्पन्न हो जाती है। (द्वितीय पुष्प, 21 अगस्त, 1962, विनय नगर, नई दिल्ली)

नारद की कंस को पुनः चेतावनी

कुछ दिवस के पश्चात् नारद जी पुनः आये। देव ऋषि नारद ने कहा कहिए भगवन्! कंस ने कहा कि महाराज मैंने तो देवकी के सर्व शिशुओं को नष्ट कर दिया है तब उन्होंने कहा कि तुम्हारी मृत्यु का तो कारण बन गया है। वह पुत्र तो माता यशोदा के यहाँ चला गया है और वह नष्ट नहीं हो सकेगा। यह वाक्य जब कंस ने श्रवण किया। तो उन्होंने अपने नाना योद्धाओं, क्षत्रियों को एकत्रित किया और उनसे कहा कि 'जाओ, उसे नष्ट करो। परन्तु वह कैसे नष्ट हो सकता था? महापुरुषों की महिमा अलौकिक होती है और उनका जीवन भी अलौकिक होता है और उनके नेत्रों की ओर सब इन्द्रियों की प्रतिभा एक अलौकिक होती है, उनकी अलौकिकता को कोई नष्ट नहीं कर सकता।

भगवान् कृष्णा ने, कंस के अनेक सेवकों को नष्ट किया परन्तु स्वयं ज्यों के त्यों रहे। उनके गृहों में जितना भी दही और घृत था वह महाराजा कंस के यहाँ जाता था भगवान् कृष्णा ने कहा कि घृत गृहों में ही रहना चाहिए या इसे मुझे पान कराओं। मेरे पान करने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक गृह में यह प्रविष्ट होना चाहिए। राजा के यहाँ इस प्रकार का कर नहीं जाना चाहिए। बाल्यकाल से ही उनकी इतनी तीव्र बुद्धि थी कि वह अपनी तीव्रता से कार्य करते थे। जितना उनका जीवन बलिष्ठ और चातुर्यता में था उतना ही यौगिकता में पारंगत था। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 4 सितम्बर, 1969)

महान् और पराक्रमी जीवन

कारागार में जन्म लेने वाले भगवान् कृष्णा का जीवन कितना अग्रणी रहा है, कितना महान रहा है, उनका जीवन सदैव पवित्रता में परिणात रहा है। वह ज्ञान-विज्ञान में पारंगत थे। वेद की परम्परा को ऊँचा बनाने में उनका जीवन सदैव संलग्न रहता था। गोपनीय विषयों को सदैव विचार-विनिमय करते रहते थे। एक समय सोमतीति नाम की जो रेखा है उसको जानने में लगभग दस दिवस तक लगे रहे और इस मध्य उन्हें प्रायः अन्न भी प्राप्त नहीं होता था। उनके जीवन में कोई ऐसा अवसर नहीं प्राप्त हुआ कि जो संसार में आकर के वह किसी भी प्रकार के पाप कर्म करने में तत्पर हो गये हो। (बारहवाँ

पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

भगवान् कृष्णा ने देखो महाराज कंस के नाना वीरों को अपने बाल्यकाल में ही नष्ट कर दिया था। देखों, उस काल में महाराज इन्द्र के रूप में राजा की पूजा होती थी। भगवान् कृष्णा ने प्रजा से कहा ''कि इन्द्र की पूजा न करों, ईश्वर की पूजा करों।'' सब प्रजा ने उस महापुरुष की प्रतिभा को बाल्यकाल में ही स्वीकार किया अन्त में महाराजा कृष्णा ने कंस को नष्ट किया। कंस को नष्ट करने के पश्चात् वह गुरु आश्रम में चले गए। गुरु आश्रम से पनपेतु ऋषि महाराज के आश्रम में गए और द्वारिका राष्ट्र को अपने माता-पिता को अर्पित कर दिया। ''कंस-ब्रह्मे अपरातन् नाना ब्रह्मे कृति'' मानों जो उग्रसेन कंस के कारागार में था उसे मुक्त कर, कंस का राज्य अग्रसेन को प्राप्त कराया। भगवान् कृष्णा के जीवन से प्राप्त होता है, कि यदि राष्ट्र नाना प्रकार के पापों से गठित है तो उस राष्ट्र को भी नहीं रहना चाहिए, उस राजा को नष्ट कर देना चाहिए जो दूसरों के अधिकारों को नष्ट करता है, दूसरों के शृंगारों को नष्ट करता है। जो राजा दूसरों के अधिकारों को लेता है वह राजा नहीं होता, महान् द्रोही होता है। सब प्रजा एवं महापुरुषों का कर्त्तव्य है कि उस राजा को नष्ट-भ्रष्ट कर दें। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, दिल्ली, 4 सितम्बर, 1969)

विद्या अध्ययन

आज मुझे वह समाज स्मरण आ रहा है जिस समाज में देखों, 'गऊ अप्रभे अस्तं मधु कृतः हृदयस्तं ब्रह्मे'। जहाँ प्राणीमात्र की रक्षा करने वाले महापुरुष उत्पन्न हो जाते हैं, तो प्रत्येक प्राणीमात्र की रक्षा में एक उज्ज्वलवाद छाता चला जाता है। जिस उज्ज्वलता की ज्योति को अपनाते हुए एक खम के तुल्य स्थिर हो जाती है। यहाँ समय-समय पर ऐसे सुन्दर महापुरुषों का आगमन होता रहा है।

आज मुझे वह प्रातः स्मणीय भगवान् कृष्ण का जीवन स्मरण आता चला जा रहा है। भगवान् कृष्ण के जीवन में सदैव अग्नि प्रदीप्त रहती थी। उनके पठन-पाठन का कर्म और मनन् करने की पद्धति सदैव विचित्रता में परिणत रही है। उन पद्धतियों के आधार पर ज्ञान और विज्ञान की पुनः विवेचना की जाए और उस विज्ञान को पुनः से लाना चाहिए जिस विज्ञान को जान करके भगवान् कृष्ण का पाठ्यक्रम सदैव विचित्रता में परिणत रहा है। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

भगवान् कृष्ण का वह बाल्यकाल, मुझे स्मरण आता रहता है जिस काल में वह संदीपन ऋषि के यहाँ अध्ययन करते रहते थे और संदीपन ऋषि महाराज अध्ययन कराते रहते थे, एक समय गुरु के चरणों में ओत-प्रोत हो करके उन्होंने यह कहा कि महाराज! मैंने कुछ वेदमन्त्रों का अध्ययन किया है, इसके आधार पर मैं आपसे कुछ जानना चाहता हूँ। आप ऋषिवर हैं, आपने बहुत अध्ययन किया है

और इस अध्ययन के आधार पर मैं आपके चरणां में विद्यमान हूँ। यह जो वेदमन्त्रकह रहा है कि 'सर्व ब्रह्मः अग्निः चित्रां अग्रते देवः' इसका अभिप्रायः क्या है? ऋषि ने कहा, हे ब्रह्मचारी! तुम्हारा प्रश्न बहुत गम्भीर है, बड़ा अद्वितीय है। उन्होंने कहा, महाराज् इसका मुझे निर्णय कराइए। अध्ययन के आधार पर उन्होंने कुछ अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। उन्होंने कहा हे कृष्ण! यह जो तुम उच्चारण कर रहे थे ''सर्व ब्रह्मः अग्नि चित्रां अग्रते देवः''। यह जो वेदमन्त्रकी आख्यायिका हैं, जिन्हें नित्यप्रति याग के समय मैं तुम्हें का परिचय देता रहता हूँ और वेदमन्त्रयह कहता है कि जिस मानव के मन की विकृति शान्त नहीं होती, वह मानव ब्रह्मवर्चोसि नहीं बन सकता और तुम्हें ब्रह्मवर्चोसि बनना है और ब्रह्मवर्चोसि बन करके तुम्हे अपनी मुद्रिका को जानना है। भगवान कृष्ण, वायु और पृथ्वी दोनों के मिलान को क्रियात्मक जानना चाहते थे। संदीपन ऋषि महाराज, ब्रह्मचारी के इस प्रश्न का समाधान करते हुए अपने हृदय में हर्षता से वेदमन्त्रका परिचय देने लगे। उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी! आओ, विराजो। तुम साधना के क्षेत्रमें जाना चाहते हो या विज्ञान के क्षेत्रमें, कृष्ण जी ने कहा कि महाराज! मैं तो दोनों ही क्षेत्रों में जाना चाहता हूँ, मैं यौगिक क्षेत्रों में भी रमण करूँगा और विज्ञान के क्षेत्रमें भी मेरा अनुसन्धान चलना चाहिए। उन्होंने कहा, यदि तुम इस विज्ञान में जाना चाहते हो, भौतिकवाद में प्रवेश करना चाहते हो तो

तुम अपनी मुद्रिका को जानो। मुद्रिका क्या है? बाह्य जगत् और आन्तरिक-जगत् दोनों के ऊपर तुम्हें अध्ययन करना है। अध्ययन कैसे करना है? एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके तुम अपनी गम्भीर मुद्रा बना लो। परन्तु गम्भीर मुद्रा कैसे बनाओगे? जब तक बाह्य जगत् का समन्वय आन्तरिक-जगत् से नहीं होगा, तब तक तुम गम्भीर मुद्रा में प्रवेश नहीं करोगे। वेद-मन्त्रों के ऊपर अध्ययन करने वाला, हृदय से योगी होना चाहिए और योगी प्राण को संग्रह करता हुआ अग्नि को संग्रह करता हुआ पार्थिव तत्त्व का चित्त से उसका समन्वय होना चाहिए। वह चित्त के मण्डल और पार्थिव तत्त्व दोनों का समन्वय करके, दोनों प्रकार के विज्ञान में पारायण बनता है। दोनों प्रकार का विज्ञान क्या है? सबसे प्रथम है भौतिक विज्ञान, जिस भौतिक विज्ञान के ऊपर मानव अपना अनुसन्धान करता रहता है। कहीं वह गम्भीर मुद्रा में चला जाता है, कहीं वह बाह्य जगत् में प्रवेश करता हुआ सूर्य मण्डल की किरणों में चला जाता है, और कहीं पार्थिव तत्त्व के ऊपर अध्ययन करना प्रारम्भ करता है। तुम्हारी जो अध्ययन करने की प्रवृत्ति है वह तुम्हारी विशाल उस काल में बनेगी जब तुम अपने हृदयंग म ज्योति में अपनी महिमा के द्वारा साधना कृतियों में मुद्रा बनाओगे।

मुद्रिका का ज्ञान

उन्होंने कहा, प्रभु! मैं मुद्रा को जानना चाहता हूँ, मुद्रा किसे

कहते हैं? उन्होंने कहा, जैसे मानव के एक हस्त में पांच अगुष्ठान कहलाते हैं। प्रत्येक अगुष्ठान का सम्बन्ध पाँच तत्त्वों से रहता है, सबसे प्रथम अगुष्ठान का सम्बन्ध पृथ्वी से होता है, द्वितीय का अग्नि से होता है, तृतीय का अन्तरिक्ष से होता है, चतुर्थ का आपो से रहता है और पंचम का वायु से रहता है। इसी प्रकार जो मानव अपने को विजय करना चाहता है तो पांचां का जो अगुष्ठान हैं उन पर उसका अध्ययन होना चाहिए और वह क्रियात्मक होना चाहिए अध्ययन क्रियात्मक कैसे बनता है? साधक शान्त मुद्रा में विद्यमान है, एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके अन्धकार से अपने जीवन को प्रकाश में लाने के लिए वह अगुष्ठान और अग्नि तत्त्वों का मिलान करना चाहता है, क्योंकि पृथ्वी के तत्त्व में तो चित्त रहता है और अग्नि के गर्भ में प्रकाश रहता है जिस द्यौ से और प्राण से योगी उनका समन्वय एकाग्र करने के लिए करता है क्योंकि यह सब मन का मण्डल कहलाता है। प्राण की गति के द्वारा मन का मण्डल समन्वित संग्रहित किया जाता है। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है दोनों विचार-विनिमय करते रहते थे परन्तु वह रात्रिके अन्तिम काल में वह मुद्रिका बनाते थे। अपनी मुद्रिका बना करके मन को उस मुद्रिका पर लगा देते तो हृदय से उसका समन्वय हो जाता था। मानव का जो हृदय है, वह संसार के ज्ञान और विज्ञान की एक पूंजी माना गया है। क्योंकि हृदय से ही मानव स्नेह करता है, हृदय से ही मानव

पचीकरण को जानता है, हृदय से ही मानव अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ता है, हृदय से ही नाना प्रकार के परमाणुवाद को जान करके अपने मन्त्रों में यन्त्रित हो जाता है। हृदयंग म ज्योति को जान करके, अन्तर्मुखी हो करके वह वेद की पोथी को, वेद के मन्त्रके गम्भीर रहस्यों को जान करके वह बाह्य जगत् में प्रवेश करते रहते थे। भगवान कृष्ण का जीवन मुझे स्मरण आता है, चाहे अन्धकार हो या प्रकाश हो, वह सदैव अपने जीवन को प्रकाश में लाते रहते, ब्रह्मवर्चोसि बन करके ब्रह्मचर्य की आभा में रमण करते। ब्रह्मवर्चोसि उसे कहते हैं जो प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जान करके और पाँचों अगुष्ठानों का अपने विचारों का उससे समन्वय कराता है और उसको ले जा करके उसका साकल्य बना करके हृदय रूपी यज्ञशाला में उसकी अगम्य ज्योति बना करके अपनी ज्ञान रूपी अग्नि को प्रचण्ड करके बाह्य जगत् के साकल्य को ला करके वह जो स्वाहा कर रहा है, आहुति दे रहा है, वह स्वाहा करके अपने हृदय को परमात्मा के हृदय से मिलाना चाहता है।

सहपाठी सुदामा

भगवान् कृष्ण का जीवन ऋषि के आश्रम में पनप रहा था, आनन्दित हो करके पनप रहा था। सन्दीपन ऋषि के आश्रम में उनके मित्रसुदामा थे। सुदामा के साथ उनका विचार-विनिमय होता रहता था। सुदामा भी दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता थे, दोनों संग में विचार-

विनिमय करते रहते थे। परन्तु कृष्णा में यह विशेषता रही है कि जो उन्हें एक समय में विवेचना दी है, उस विवेचना को वह स्मरण कर लेते थे और उसी का अनुष्ठान करते हुए बाह्य जगत् में प्रसारित करते थे और बाह्य जगत् से उसे समेट करके वह आन्तरिक जगत् में ले जाते थे। आन्तरिक जगत् में ले जा करके वह उसको मुद्रित रूप में बनाते थे।

दोनों का, गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर विचार-विनिमय होता रहता था। एक समय भगवान् कृष्णा ने कहा कि महाराज! मैं चित्त के मण्डल के ऊपर अपना अध्ययन करना चाहता हूँ। उन्होंने अग्नि और पृथ्वी दोनों की मुद्रिका बनाई। मुद्रिका बना करके भगवान् कृष्णा अन्तर्मुखी बन गए। भगवान् कृष्णा का 20 वर्ष का काल जब समाप्त हुआ था तब वह अन्तर्मुखी बने थे। जिस काल में उन्होंने मुद्रिका बनाई। मुद्रिका बना करके 20 वर्ष के ब्रह्मचारी का अन्तर्मुखी हो जाना, बाह्य जगत् में आना, शिशु विज्ञान को जानना और बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय करते हुए आचार्य के चरणों में सदैव वेद मन्त्रों के ऊपर उनका अध्ययन होता रहता था।

तो मुनिवरो! सन्दीपन ऋषि महाराज ने एक समय ब्रह्मचारी कृष्णा से एक वेद-मन्त्रका अनुष्ठान कराया। उन्होंने कहा इसका तुम लगभग बारह दिवस तक अनुष्ठान करो। अनुष्ठान का अभिप्राय यह है कि उस वेद-मन्त्रको लेकर के अध्ययन करना, उसके एक-एक शब्द

के ऊपर, उसके ज्ञान और विज्ञान के ऊपर अध्ययन करना और अध्ययन करके उसके स्वरूप का वर्णन करना। जब उन्होंने आज्ञा दी तो भगवान् कृष्ण एक वेद-मन्त्रके ऊपर बारह दिवस तक अध्ययन करने लगे। वेद-मन्त्र क्या था? वेद-मन्त्रथा "विष्णु चक्रां भवः सम्भवेति देवं ब्रहेः शम्भु अप्रणां बहु अस्ति जीवाः" भगवान् कृष्ण बारह दिवस तक एकान्त मुद्रिका बना करके अन्तर्मुखी बन गए। ऋषि सन्दीपन कुछ औषधियों का पंचाँग बना करके, उनका रस बना करके भगवान् कृष्ण को प्रातःकाल पान कराते थे। बारह दिवस तक अनुसन्धान किया तो जितने भी यह नाना प्राणी हैं जैसे सर्प है, सुदुकेतु है, मृग है और गोस्वामी है यह कुछ पशु होते हैं जो वनचर हैं, उनकी भाषा, उनका क्रियाकलाप उनका आमोद-प्रमोद सर्वत्रका ज्ञान हो गया। इस वेद-मन्त्रमें, वह विज्ञान विराजमान है। उस विज्ञान को भगवान कृष्ण ने अध्ययन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से जो गुरु-शिष्य की परम्परा है वह बड़ी विचित्ररही है गुरु और शिष्य दोनों एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके अध्ययन करते उनका अध्यापन का कार्य रुचिकर होता हुआ जिस प्रकार का वह जीवन बनाना चाहते, अपने जीवन में उसी प्रकार की विद्या, उसी प्रकार की अनुभूतियों का चक्र वह उनको प्रदान करते रहते थे।

ब्रह्माण्ड की गतियों का ज्ञान

भगवान् कृष्ण उनके चरणों में विद्यमान हो करके मुद्राओं के

सम्बन्ध में जानते थे, किसी मुनि ने अग्नि तत्त्व को प्रधान माना है, किसी मुनि ने आकाश-तत्त्व को प्रधान माना है, और किसी ने जल और वायु का समन्वय किया है और पार्थिव-तत्त्व से इसका समन्वय करते हुए उसमें नाना प्रकार के स्वरों की आभा का जन्म होता है। मिलान करने से शब्दों की धाराओं का जन्म होने लगता है। इस विचार को देते हुए भगवान् कृष्णा नाना आचार्यों से नाना प्रकार के प्रश्न किया करते थे। उन्होंने कहा, प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो बाह्य जगत् है यह ब्रह्माण्ड एक स्थूल बना हुआ है, यह ब्रह्म का अनुपम जगत् है, इसे ब्रह्माण्ड कहते हैं। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो ब्रह्माण्ड गति कर रहा है यह स्वरों से कर रहा है या व्यजनों से कर रहा है?

उस समय महात्मा सन्दीपन ने कहा कि जो भी गतियाँ हो रही हैं वह नाना प्रकार के व्यजनों में हो रही हैं, स्वरों में हो रही हैं और यह अपनी आभा में आभायित होने वाली प्रक्रिया चल रही है। तुम्हें यह प्रतीत है, कि यह जो ब्रह्माण्ड है, इसमें पाँच प्रकार की प्रक्रिया होती रहती है। सबसे प्रथम प्रसारणा है उसके पश्चात् इसी में गति है गति के पश्चात् इसी में ध्रुवा है, ध्रुवा के पश्चात् इसी में ऊर्ध्वा है और इसी में आकुचन शक्ति विद्यमान रहती है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल का जितना भी विज्ञान है वह सर्वत्रपाँचों प्रकृति की गतियों से दृष्टिपात हो रहा है। जितना भी विज्ञान जो हमें

दृष्टिपात आ रहा है, या जितना भी भौतिक विज्ञान है वह प्रसारण में है। वही ध्रुवा में है, वही गति में है और मुनिवरो! यही ऊर्ध्वा में होता हुआ आकुचन में चला जाता है। इस प्रकार का विज्ञान है। इस विज्ञान की जो प्रतिभा है वह पाँचों प्रकार की आभाओं में गति कर रहा है। भगवान् कृष्ण के हृदय में एक सøल्प जागा कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि इन पाँचों गतियों का इस आत्मा से क्या समन्वय होता रहता है? और इस ब्रह्माण्ड को तो मैंने जान लिया है कि ब्रह्माण्ड में कितनी कृत्तियां हैं परन्तु इसका आत्मा से क्या सम्बन्ध है?

महात्मा सन्दीपन ऋषि ने कहा, हे कृष्ण! यह जो 'अग्रतः सम्भवः देवं ब्रह्मा' मैंने यह जो पाँचों प्रकार की, ब्रह्माण्ड की आभा का वर्णन किया है। इसी ब्रह्माण्ड का समन्वय मानव के शरीर में होता है क्योंकि शरीर आत्मा का रथ है। इस रथ से इसका समन्वय रहता है। मानव के नेत्रहैं इसमें प्रसारण-शक्ति रहती है, इसी में आकुचन शक्ति है, इसी में गति है। गति से 'अप्रतम ब्रह्मेः गच्छतः देवः' नेत्रसंसार का चित्रले लेते हैं। जिस वस्तु को दृष्टिपात किया जा रहा है, नेत्रद्वारा केवल दृष्टिपात करते ही मन रूपी व्यजन और उनकी आकर्षण शक्ति उसकी आभा को अपने में धारण कर लेती है। उसी के प्रसारण और उसी की क्रिया से, उसी में सर्वत्रध्रुवा, ऊर्ध्वा, आकुचन, प्रतिभा ओत-प्रोत हो जाती है।(चवालीसवाँ पुष्प, लाक्षागृह

बरनावा, 15 मार्च, 1983)

गतियों का आत्मा से सम्बन्ध

भगवान् कृष्णा जी महाराज, ऋषि सन्दीपन मुनि महाराज के द्वारा यह अध्ययन करते थे। आचार्य से यह प्रश्न किया महाराज! यह जो पचमहा क्रियाएं है, जिनकी जगत् मे आभा दृष्टिपात हो रही है जिनसे यह जगत् क्रियाशील-सा दृष्टिपात आ रहा है इनका आत्मा से क्या सम्बन्ध रहता है? आत्मा के सम्बन्ध को मैं भली-भांति जानना चाहता हूँ। जब उन्होंने यह कहा कि मैं आत्मा के सम्बन्ध को जानना चाहता हूँ तो महात्मा सन्दीपन ऋषि ने कहा, हे कृष्णा! यह जो पचमहाभूत है, प्रकृति से, जब चेतना का मिलान होता है तो पचमहाभूतों में सदैव गतियां उत्पन्न हो जाती हैं। यदि चेतना का इसमें स्रोत नहीं होगा तो परमाणु में गति का सचार नहीं होगा। इसीलिए वह जो गति, परमाणुवाद में है जो गति आकुचन में है, जो गति प्रसारण में है, जो गति गतियों में है, जो गति ध्रुवा और ऊर्ध्वा में है, इस गति को देने वाला बाह्य जगत् में वह चैतन्य देव है और आन्तरिक मानव के शरीर में गति देने वाली यह आत्मा है। तो आत्मा से इसका विशेष सम्बन्ध रहता है। इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा है कि इस आत्मा को जानने वाला ही इस ब्रह्माण्ड की प्रतिक्रिया को जान जाता है। आत्मा को जानने वाला वैज्ञानिक बन जाता है। आत्मा को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है, आत्मा को

कैसे जाना जाएगा? (तैंतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 15 मार्च, 1983)

इन्द्रियों और प्राणों का अध्ययन

भगवान् कृष्ण का जीवन महान् और पवित्रहै। जब वह पचीकरण में अपनी इन्द्रियों को समेट करके, हृदय स्थली में ले जाते थे तो योग की प्रवृत्तियाँ बिखर के जब बाह्य जगत् से सुगन्धि को लाती थी, तो आन्तरिक जगत से वह सुगन्धित प्रसारित होती थी। पूज्यपाद गुरुदेव के समीप विद्यमान होकर के वह प्रत्येक इन्द्रियों का अनुसंधान करते थे। प्रत्येक प्राणों का अनुसन्धान करते थे कि यह किस प्रकार का प्राण है? इसको मुझे जानना है। इस प्रकार वह अपने में मुद्रित होते थे। अपनी महान् आभा को सुगन्धि में लाना ही उनका कर्त्तव्य कहलाता था। वह पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों में विद्यमान रहते थे। उनके एक मित्रविद्यालय में 'अध्ययनं ब्रह्मे' मित्रबने, जिनको सुदामा कहते थे। जब वह दोनों विचारक वन करके वनो में पीपल के वृक्ष के नीचे अनुसन्धान कर रहे थे।

गुरु का आदेश 'अध्ययन करो' का अर्थ

एक समय गुरु ने यह कहा कि अध्ययन करो। दोनों अध्ययन करने लगे। तो महात्मा संदीपन की वार्ता को पान करते हुए सुदामा ने कहा, हे कृष्ण! आचार्य ने हमें तीन, समय कहा है कि तुम अपना अध्ययन करो, अध्ययन करो, ऐसा क्यों कहा है? कृष्ण जी बोले कि

हे सुदामा! तुम पूज्यपाद गुरुदेव की आन्तरिक ध्वनि को नहीं जानते हो, यह तो उनकी आन्तरिक ध्वनि है, आन्तरिक ध्वनि में मुद्रित हो करके ही मुद्रिका बनती है। पूज्यपाद ने हमें कहा है कि तुम अध्ययन करो। अध्ययन का अभिप्राय यह है कि वेद-मन्त्रका अध्ययन करो, तुम ज्ञान का अध्ययन करो। परन्तु जब द्वितीय कहा कि अध्ययन करो तो वह कहते हैं कि वेद की ध्वनि का तुम प्रसारण करों तुम उसके योग को जानो। तृतीय कहते है कि तुम अध्ययन करो तो वह कहते है कि अध्ययन का अभिप्राय यह है कि अपना स्वतः अध्ययन कर लो। अपना अध्ययन करना क्या है? हमारे मानवीय शरीर से, प्रत्येक इन्द्रिय से विज्ञान की धारा, नित्य-प्रति जो तरंगें ओत-प्रोत होती रहती हैं, बाह्य जगत् में वह तरंगें जाती हैं और आन्तरिक जगत् से वह तरंगें आती हैं उनसे भौतिक विज्ञान में प्रवेश करते हैं। इन्हीं विचारों का अध्ययन स्वतः करने से हम अपनी अन्तरात्मा को जानते हैं। हम अन्तरात्मा को जान करके प्रभु से मिलान करते हैं। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा है कि तुम स्वतः अपना अध्ययन करो अतः हमें स्वतः अपना अध्ययन करना है।

स्वतः अध्ययन कैसे किया जाता है? यह एक विचार का विषय रहता है। एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके अध्ययन की नाना प्रकार की आभाएं हैं। अध्ययन करता हुआ मानव परम सीमा पर पहुँच जाता है। वहाँ अध्ययन की परम्परा भी समाप्त हो जाती है।

विचार देते हुए भगवान् कृष्णा कहते है, कि हे सुदामा! तुम पूज्यपाद गुरुदेव की भाषा को नहीं जानते। पूज्यपाद ने कहा था हे ब्रह्मचारियो! तुम अध्ययन करो। हे ब्रह्मचारियों! तुम अध्ययन करो। परन्तु अध्ययन का अभिप्रायः केवल अपना अध्ययन करना है। कहाँ तक करना है इसके ऊपर विचार-विनिमय आज हम करना चाहते हैं। भगवान् कृष्णा ने कहा, हे सुदामा! हमें वहाँ तक जाना है जहाँ हम संसार को विजय कर सकें। अपने को विजय करना ही संसार को विजय करना है। यह संसार विजय नहीं हुआ करता है। परन्तु जब हम अपने को अध्ययन में ला देते हैं, अपने में महान् और मौन हो जाते हैं, हम वेद के पठन-पाठन प्रकाश में रमण करते हैं तो उस समय मानव का अपने को विजय करना ही संसार को विजय करना है। भगवान् कृष्णा ने यह सब उच्चारण किया और कहा कि हे सुदामा! हमें, ''तुम्हें यह कहा है कि तुम अध्ययन करो तुम्हें-हमें दोनों को मुद्रित हो जाना है और मुद्रित कैसे हो जाना है? यह संसार पाँचों ही वस्तुओं पर विद्यमान रहता है।

तुम्हें यह प्रतीत होगा, कि एक समय हमें अध्ययन कराते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया था, कि जिस समय त्रेता के काल में रावण और राम का संग्राम होने का विचार बना, राम और रावण के संग्राम होने की जब वार्ता आई तो राम ने बालि के पुत्रको यह कहा कि तुम रावण के समीप चले जाओ, वहाँ जा करके रावण से

मुद्रित होकर के तुम यह उच्चारण करे। कि हे रावण! तुम अपने में अपनत्व हो जाओ। तुम्हारा यह संग्राम प्रिय नहीं है। उस समय, बालिपुत्रने जब वहाँ से गमन किया तो भ्रमण करते हुए वह लंका में रावण के राज्य में पहुँचे। लंका का कुछ भ्रमण किया और उन्होंने रावण को यह सूचना दी कि मैं राम का दूत बन करके आया हूँ। जब दूत बनने की वार्ता आई तो वह राज्यसभा में पहुँचे। रावण ने कहा कहो, तुम कैसे आ पहुँचे? उन्होंने कहा, प्रभु! मेरी इच्छा यह है कि आप राजा हैं, आपका जीवन बहुत ऊंचा रहा है और आपका राष्ट्र भी पवित्ररहा है। परन्तु आप माता सीता को तुम ले आए यह राष्ट्र का अपराध होता है। जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियों का हनन किया जाता हो, वह काल हे राजा रावण! प्रिय नहीं होता है। तुम्हारे राष्ट्र में यह प्रियता नहीं है। तुम अपने महापिता के साहित्य को ले करके चलो, तुम अपने महापिता का साहित्य राष्ट्र को दो। महात्माकाक-भुषण्ड जी, महर्षि लोमश इत्यादियों ने तुम्हारे यहाँ कई अश्वमेघ याग सम्पन्न कराए हैं। एक समय महर्षि श्वेतकेतु ने तुम्हारे यहाँ यागों का चलन कराया। तुम्हारा याग यह नहीं कहता, तुम्हारी राष्ट्रीय पद्धति भी यह नहीं कहती, तुम मुझ सेवक को माता सीता को अर्पित कर दो। तुम्हारा (रावण और श्रीराम) दोनों का सम्बन्ध हो जाएगा। विच्छेद से मिलान हो जाएगा। परन्तु रावण ने क्रोधित होकर कहा कि यह महादुष्कृत्य है।

मुनिवरो! मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उस समय बालिपुत्रबोल तुम क्रोध में क्यों आते हो? मुझ पर क्रोध करने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि मैं राम का सेवक हूँ। वह वनों में रहते हैं, मैं न्याय की वार्ता प्रकट कर रहा हूँ। आप न्याय नहीं स्वीकारते हैं। जो न्याय की वार्ता को स्वीकार नहीं करता है उस राजा की पद्धति भ्रष्ट हो जाती है। जब बालिपुत्रने यह कहा, तो मुनिवरो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि रावण क्रोधित हो गए। उस समय अंगद यौगिक मुद्रा में प्रवेश कर गए। उन्होंने प्राणों के ऊपर अध्ययन किया था। शरीर के सर्वत्रप्राण को एक पग में स्थिर कर लिया और वह जो प्राण था एक ही पग में आ गया। उन्होंने कहा, मेरे पग को यदि कोई दूरी कर देगा तो मैं माता सीता को त्याग दूँगा और राम को ले करके अयोध्या चला जाऊँगा। यह वाक्य उन्हांने प्रकट किया। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि वह यही मुद्रा थी जो भगवान् कृष्ण और सुदामा गुरु आश्रम में चर्चा कर रहे थे। वह मुद्रा क्या थी? मुनिवरो! प्राण, अपान, उदान व्यान और समान को मिलान करते हुए सर्वत्रप्राण की सत्ता को एक ही पग में ले आए। उनके यहाँ कोई ऐसा बलिष्ठ नहीं था जो बालिपुत्रके पग को दूरी कर सके। जब दूरी करने वाला कोई न हुआ तो विचार हुआ कि अब क्या करें? सर्वत्रबलवान जितने जो बलिष्ठ थे, वह पग दूरी न कर सके। यन्त्रों-तन्त्रों के निर्माण करने वाले वहाँ विराजमान होने

वाले अक्षय थे, नरान्तक यन्तक थे, अहिरावण भी थे, मेघनाद इत्यादि सर्वत्रविद्यमान थे उन्होंने जब उनके पगों को अस्वान् करने का प्रयत्न किया तो किसी से न हो सका। क्योंकि वह तो प्राण-शक्ति थी। आत्मा की, चित्त की प्रवृतियों को एकाग्र करके वह मुद्रित हो करके, प्राण को अपने पग में ले लाये थे। जब रावण ने मद-मोह आ जाने के पश्चात् उनके पग के लिए कृत्य किया, अपनी क्रिया की तो उस समय उन्होंने अपने प्राण को, अपनी मुद्रा से अमुद्रित बना करके और प्राण को ज्यों का त्यों ला करके अपने पग को दूरी कर लिया। उन्होंने कहा, हे रावण! आप तो राजा है और ऐसे राजा हैं जिसके राष्ट्र में न सूर्य उदय होता है, न अस्त होता है। आप इस प्रकार के व्यापक राजा है। परन्तु आपकी जो धृष्टता है, हीनता है, यही राष्ट्र को नष्ट कर सकती है। बालीपुत्रा, अंगद ने जब यह कहा कि चरणों को स्पर्श करना है तो माता सीता को ले करके, राम के चरणों को स्पर्श करो और माता सीता के चरणों को स्पर्श करके कहे? कि यह मेरे से आश्चर्यजनक पाप हो रहा था जब उन्होंने यह कहा तो रावण मौन हो गए। रावण से कोई उत्तर नहीं बना।

तो विचार-विनिमय क्या? भगवान कृष्ण ने कहा हे सुदामा! हम और तुम दोनों विद्यमान हैं और हमारे आचार्य ने कहा है कि इस प्रकार का तुम दोनों अध्ययन करो। अध्ययन क्या? यह जो हमारे शरीर में प्राण-अपान जो गति कर रहा है, दोनों को रसना के द्वारा,

आहार के द्वारा, व्यवहार के द्वारा अपने ब्रह्मवर्चोति को धारण करके अपने को मुद्रित बना लेना चाहिए। हम मुद्रा में लाना चाहते हैं, हम स्वयं मुद्रित होना चाहते हैं। मुद्रा का अभिप्राय क्या है? हमारा यह जो शरीर है वह ब्रह्माण्ड की कल्पना करता है। यह शरीर हमारा सर्वत्रभू-मण्डल की परिक्रमा कर रहा है। लोक-लोकान्तरों की परिक्रमा कर रहा है। इसी में आभायित हो रहा है। प्रकृतिवाद को, शून्य आभा को यह अच्छी प्रकार जानता है। सुदामा ने कहा हे कृष्णा! वार्ता तो बहुत प्रिय आपने प्रकट की है परन्तु हम यह जानना चाहते हैं कि मुद्रा का विज्ञान से क्या समन्वय रहता है? विज्ञान से इसका क्या सम्बन्ध है? भगवान् कृष्ण ने कहा कि मानव जब ध्यानावस्थित होता है और यह विचारता है कि हमें यह वस्तु जाननी है, हम एक वस्तु पर अनुसन्धान करते हैं। अनुसन्धान क्या है? कि हम यह चाहते हैं कि जैसे माता अपने प्यारे पुत्रको स्नेह कर रही है। जब माता स्नेह करती है तो उसका हृदय, उसके रक्त की जो तरगें हैं जो माता के शरीर में हैं। माता के रक्त की तरगें बाल्य के शरीर में हैं। दोनों का जब परस्पर मिलान होता है, दोनों की जब परस्पर स्नेह की प्रतिभा होती है, तो एक-दूसरे के शरीर में परमाणुओं के मोह का संचार उत्पन्न हो जाता है, और वह जो संचार है, वह ममत्व को धारण करा देता है, वही ममता की आभा में रमण करा देता है। परन्तु कृष्ण ने कहा हे सुदामा! यह तुम्हें प्रतीत होना चाहिए। अब

रहा यह विज्ञान की वार्ता का विषय, विज्ञान में एक मानव यह जानना चाहता है कि मुझसे कोई वार्ता प्रकट कर रहा है, मेरे नामोकरण की वार्ता दे रहा है, उस वार्ता को मुद्रित हो करके कहता है कि मुझे कोई वाणी से ध्वनियां (पुकार) कर रहा है। उस ध्वनि को स्वीकार करता हुआ कहता है कि यह ध्वनि जहाँ से आ रही है और जहाँ मैं हूँ वह बहुत दूरी है। यह दूरिता का जहाँ परस्पर मिलान हुआ है उस मिलान के ऊपर अनुसंधान करता है। वैज्ञानिक जब उस दूरी का अनुसंधान करता है तो अनुसंधान करता हुआ एक यन्त्रका निर्माण करता है; उन तरंगों को ला करके एकत्रित करता है ध्वनियाँ आ रही है, ध्वनि उस यन्त्रमें प्रवेश कर रही है। हम उसे श्रवण कर रहे है। वह ध्वनि अन्तरिक्ष से आ रही है। (तैतालिसवाँ पुष्प, लाक्षागृह बरनावा, 16 मार्च, 1983)

भगवान् कृष्ण ने कहा हे सुदामा! तुमने यह जान लिया कि नहीं। मैंने इतना कुछ अनुसन्धान, अध्ययन कुछ पोथिओं से किया है, उसी अध्ययन को मैं क्रियात्मक रूप में लाना चाहता हूँ। जैसे ध्रुवा है ऊर्ध्वा है, जैसे आकुंचन, प्रसारण और गति है जिनसे प्रकृति की पांचों आभाओं का जन्म होता रहता है। किसी भी काल में प्रभु ने जब यह संसार रचा, इस पृथ्वी में जब किसी चेतना का समन्वय हुआ, चेतना के मिलान होते ही प्रकृति के पांचों स्वभाव जागरूक हो गए और पाँचों स्वभाव कौन से हैं? जो प्रकृति के गुण हैं प्रकृति में

प्रसारण हैं, गति है, ऊर्ध्वा है, ध्रुवा है और आकुंचन है। इन गुणों का गुणावदन होने लगा। जब यही गुण एक बिन्दु के रूप में माता के गर्भ में प्रवेश हो गए तो माता के गर्भ से पुत्रका जन्म हुआ। आकुंचन रूपों से, क्योंकि वही पाँचों गति इस मानव के शरीर में आ करके विद्यमान हो गयी।

बेटा! मैं कहाँ तक इन वाक्यों को प्रकट करता रहूँगा यह बहुत गहन विषय है। जब मैं किसी काल में अध्यापन का कार्य करता रहता था तो ब्रह्मचारियों को यह अध्ययन कराता रहता था। ब्रह्मचारियों के अध्ययन की शैली इतनी विचित्ररही है, इतनी आभा में रही है कि इस पर निर्णय करना ब्रह्मवर्चोसि कहलाया जाता था। मेरे पुत्रो! भगवान् कृष्ण ने सुदामा से यह कहा हे सुदामा! पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि हे ब्रह्मचारिओं! तुम अघ्ययन करो अध्ययन करो, तुम अध्ययन करो! क्योंकि तीन समय अध्ययन का अभिप्राय तीन वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि तीन ही वाक्यों में जगत् समाहित हो रहा है। जैसे ओ३म् की तीन मात्राएँ हैं इनमें यह जगत् समाहित है, सृष्टि भी तीन प्रकार की कहलाती है, वेद भी तीन ही कहलाए जाते हैं। उनमें तीन ही प्रकार विषय कहलाए जाते है। संसार का जितना भी ज्ञान है, विज्ञान है उसमें तीन प्रकार की वाचनाएं हैं, ज्ञान, कर्म, और उपासना यह तीन प्रकार की विद्या वेदों में विद्यमान है। आगे इसका वृक्ष बनता रहता है। अंकुर रूपों में यह

तीन ही रूपों में विद्यमान हैं। प्रकृति के पांच गुण हैं परन्तु उसमें तीन प्रकार के ही परमाणु हैं। सबसे प्रथम पार्थिव परमाणु, जल परमाणु, अग्नि परमाणु इन्हीं परमाणुओं से अन्तरिक्ष और वायुमण्डल में परमाणुओं की गति होती है। अन्तरिक्ष में परमाणु वास करते रहते हैं। यह आभामयी जगत् कहलाता है। यह त्रैतवाद ही है जोकि आभा में परिणत हो रहा है। जब हम त्रैतवाद की बातों को ले करके चलते हैं तो हमें यह आश्चर्य होता है कि यह प्रभु का कैसा अनुपम जगत् है। वेद का ज्ञान भी तीन ही प्रकार का है। मानव के शरीर में गुण भी तीन ही हैं। तीन ही प्रकार की यजमान यज्ञ में आहुति दे रहा है। तीन ही प्रवृत्ति बन रही हैं। प्रभु का यह कैसा अमूल्य जगत् है, जिसके ऊपर हमारे ऋषि-मुनि एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते रहते हैं। मुद्रित होते रहते हैं। ऋषि-मुनियों का सबसे प्रथम मुरदा में जाना, मुद्रित होना, पंचमहाभूतों को जानना, उनको यौगिकता में लाना उसको बाह्य जगत् से हृदय में प्रवेश करते हुए हृदय में ही संसार को दृष्टिपात करना, यही उनकी विशेष यौगिकता कहलायी जाती है। (तैंतालिसवाँ पुष्प, लाक्षागृह बरनावा, 16 मार्च, 1983)

सोलह हजार मन्त्रों के ज्ञाता

भगवान् कृष्ण जब अध्ययन करते थे तो उन्होंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा कि हे प्रभु! मैं विज्ञान में मुद्रित

होना चाहता हूँ यह जो विज्ञान है इसमें मैं कैसे मुद्रित होऊँ? क्योंकि वेद के शब्द जब मुझे स्मरण नहीं आ पाते तो उस समय मुझे क्या करना चाहिए? महाराजा सन्दीपन ऋषि ने कहा कि जब तुम वेद के मन्त्रसे वंचित होने लगो, इसका विधिवत संगतिकरण न कर सको, तो उस समय तुम अपने प्रत्येक इन्द्रियों को समेट करके अपने को हृदयंगम ज्योति में प्रवेश कर दो और जब तुम अर्न्तहृदयंगम ज्योति में प्रवेश करा पाओगे, तो वह परमात्मा का जो हृदय है जो वह ज्ञान से परिपूर्ण है, तुम्हारा जो हृदय है दोनों का समन्वय करके और वह जो वेदवाणी है, वेदवाणी का वह जो प्रकाश है वह प्रकाश तुम्हारी वाणी से उद्बुध होने लगता है, वह प्रदीप्त हो जाता है। तो विचार क्या है? यदि तुम अपने में मुद्रित होना चाहते हो, तुम यह चाहते हो कि मैं प्रत्येक वेद की ऋचा को अपने में अध्ययन करना चाहता हूँ तो तुम यह करो। मेरे प्यारे! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि भगवान कृष्ण ने सोलह हजार वेद की ऋचाओं को कण्ठस्थ किया। वे सदैव उन पर मनन करते रहते थे। प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानने वाला अपने में अनुसन्धानित हो रहा है, ब्रह्म की चर्चा हो रही है। ब्रह्म के विचारों का आदान-प्रदान हो रहा है। सर्वत्रराष्ट्र में, ऋषियों से विचारों की प्रतिभा की चर्चा होती रहती थी। इसी वेद के मन्त्रों को लेकर के वह अध्ययन करते रहते थे। वह उस ज्ञान का अध्ययन करते, जहाँ वह आत्मतत्त्वों का अध्ययन करते वही उनका भौतिक विज्ञान भी

विशालता में परिणत होता रहता था।

रात्रि करने वाला यन्त्र

आश्रम में विद्या का अध्ययन करते हुए एक यन्त्रका निर्माण भी उन्होंने किया। एक समय महाराजा शिव ने और हनुमान जी दोनों ने एक स्थली पर विद्यमान हो करके हिमालय की कन्दराओं में एक यन्त्रका अनुसंधान किया था और वह यन्त्रइस प्रकार का था कि जैसे सूर्य उदय हो रहा है, यन्त्रअपने प्रभाव से सूर्य को अपने में ढांप लेता था और रात्रिबन जाती थी। सूर्य की कृतिका का समावेश हो जाता था। एक समय भगवान् कृष्ण और सुदामा भी इस यंत्रका अध्ययन कर रहे थे। उनका आभाओं में विज्ञानमयी, तत्त्वमयी जो रहस्य था। उसके ऊपर उनका अध्ययन हो रहा था। जब अध्ययन हो रहा था तो भगवान कृष्ण ने महात्मा सन्दीपन ऋषि से कहा कि हे पूज्यपाद! आप तो वेद के मर्म को जानने वाले हैं धर्म के मर्म को जानने वाले हैं परन्तु हम यह जानना चाहते हैं इस यन्त्रका निर्माण कैसे होता है? इस यन्त्रके निर्माण की प्रक्रियाओं को हम जानना चाहते हैं। हमें ऐसा कुछ स्मरण है उन्होंने कहा, ''हे कृष्ण! तुम भौतिक विज्ञान में जाना चाहते हो या आध्यात्मिक विज्ञान में प्रवेश करना चाहते हो?'' उन्होंने कहा महाराज! ''विज्ञानां ब्रह्मे कृतकः लोकः, हिरण्यं ब्रह्मे अस्ते दिव्या'', भगवान् कृष्ण ने यह कहा कि मैं उस विज्ञान को जानना चाहता हूँ जो विज्ञान वेद की प्रतिभा के गर्भ में विद्यमान रहता है।

क्योंकि वेद नाम प्रकाश का है और मानव की प्रवृत्ति इस प्रकाश को जानना है। प्रत्येक मानव की, प्रत्येक विद्यार्थी की आचार्य के चरणों में रहकर यह उत्सुकता बनती है कि वह प्रत्येक वस्तु का विशेषज्ञ बन जाए। मानव उस धारा को जानना चाहता है, उसका विशेषज्ञ बनना चाहता है। भगवन्! तुम्हारे चरणों में वैदिकता के मन्त्रों का बहुत सा अध्ययन किया है परन्तु जो उनमें उद्गम है, उनमें जो बहुत-सा रहस्य है, उन रहस्यों को जानने के लिए मैं आपके चरणों में विद्यमान रहता हूँ क्योंकि मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं अनुसन्धानवेत्ता बनूं। जहाँ हमारे यहाँ विद्यालयों में यज्ञशाला होती है, उन्हीं विद्यालयों में एक सूक्ष्म सी विज्ञानशाला भी होती है। जहाँ ज्ञानशाला है वहाँ विज्ञानशाला भी है। जहाँ मन्त्रों का निर्माण होता है मन्त्रों के धातुपिपाद को निर्माण करने की विधिवत् क्रिया का स्थान और यन्त्रउसमें विद्यमान रहते हैं। जब भगवान कृष्ण ने उन मन्त्रों को जानने का प्रयास किया तो वहाँ वेद में एक वाक्य आया कि अग्नि के द्वन्द्व में यह विशेषता होती है कि वह कालिमा को ला करके सूर्य की कृतियों को अपने में धारण कर लेता है परन्तु वेद में जहाँ यह शब्द आया, वहाँ वेद के मन्त्रों में अन्य भी शब्द प्रतिपादित होने लगे। उन्होंने कहा कि रात्रिक्यों होती है? उन कणों को जानना चाहिए। कहीं उन्होंने यह अध्ययन किया, "सूर्यं ब्रह्मे पृथ्वी वचस्वाः" यह पृथ्वी जैसे गतिशील रहती है, सूर्य के जैसे-जैसे आंगन में गति

करती हुई इसका जो भाग सूर्य के सम्मुख आ जाता है वहीं प्रकाश होता रहता है परन्तु यह भी यथार्थ है कभी मानव के दिवस में भी रात्रिआ जाती है। वहाँ उन्होंने इन्हीं धातु-पिपादों पर अनुसन्धान करना प्रारम्भ किया और वह इस वाक्य पर अनुसन्धान करने लगे कि मानव के आंगन में जब मानव के मस्तिष्क में सुसज्ञिता आ जाती है, कृतिका आ जाती है तो उस समय मानव के नेत्रों के समीप अन्धकार आ जाता है। इस अन्धकार की कालिमा को ले करके उन्होंने कहीं वेदों में ऐसा अध्ययन किया था, उन्होंने संकल्प किया कि मुझे तो उस वस्तु को जानना है। मुझे ऐसा स्मरण है कि भंयकर वनों में सन्दीपन ऋषि के यहाँ वह अनुसन्धान करने लगे और उन्होंने मन्त्रों का निर्माण करना प्रारम्भ किया।

विद्यालयों में अनुसन्धानशाला है, विज्ञानशाला है, उन वैज्ञानिक मन्त्रों में नाना धातु-पिपाद को लेकर के जल के परमाणुओं को ले करके पृथ्वी के परमाणुओं से उनका समन्वय करते। अग्नि के परमाणुओं में द्वन्द्व विशेष होता है अग्नि के परमाणुओं से जब उनका समन्वय किया गया, उन परमाणुओं को ले करके ऊपरी परमाणुओं को उस परमाणुवाद को अन्तरिक्ष में को लेना प्रारम्भ किया, कुछ धातुओं से लेना प्रारम्भ किया तो उन्होंने एक ''अन्देश'' नाम के यन्त्रका निर्माण किया था। जिस ''अन्देश'' नामक यन्त्रका प्रहार महाभारत के काल में किया गया। मुझे कुछ ऐसा स्मरण है, जब

वह जयद्रथ को नष्ट करने की प्रवृत्ति के लिए आए तो उन्होंने (भगवान् कृष्ण ने) महारानी रुक्मिणी से इस यन्त्रका प्रहार कराया था। वह सूर्य को ढांपने वाला यन्त्रथा।

मेरे पुत्रों! इस सम्बन्ध में मैं विज्ञान में तुम्हें नहीं जाना चाहता हूँ परन्तु विचार-विनिमय क्या? उस यन्त्रको भगवान् कृष्ण ने निर्माण किया। इसी यन्त्रको महाराजा शिव और महाराजा हनुमान ने सम्मति से, त्रेता के काल में निर्माण किया था और उसका निर्माण होने के पश्चात् जिस समय राम का काल था, जिस काल में भगवान् राम और रावण दोनों का संग्राम हो रहा था तब राम ने एक ऐसे यन्त्रका वायुमण्डल में प्रसारण कर दिया जिससे अन्धकार छा गया। परन्तु रावण भी एक विशेष वैज्ञानिक था, उन्होंने ऐसे यन्त्रका प्रहार किया जिससे वृष्टि हुई, फिर अग्नि की वृष्टि होने लगी, सेना में त्राहि-त्राहि होने लगी। तो विचार-विनिमय क्या? मुनिवरो! मैं यन्त्रकाल में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार-विनिमय केवल यह कि भगवान् कृष्ण, सन्दीपन ऋषि के यहाँ जब अध्ययन करते रहते थे तो उनके अध्ययन की प्रक्रियाएं प्रारम्भ रहीं। मुनिवरो! सन्दीपन ऋषि के यहाँ उन्होंने अध्ययन का कार्य किया, उनका अध्ययन अड़तालीस वर्षो तक चलता रहा। ओर अड़तालीस वर्षो में वह विज्ञान में भी पारायण होने लगे। जहाँ वह बुद्धिमान थे वही मुनिवरो! उनका विज्ञान विशालता में रहता था। उनका सौम्य क्रिया-क्लाप था, वह चरित्रकी

प्रतिभा में उस महानता में रहते कि उनकी सन्तुलना उस समय कोई कर नहीं पाता था।

मुद्रित अवस्था से विज्ञान को जानना

''ब्रहो सम्भवं देवाः'' मैं उस काल में जा रहा था जहाँ भगवान् कृष्ण और सुदामा दोनों मुद्रित हो करके ऋषि-मुनियों के साहित्यों की चर्चा करते रहते थे। दोनों के द्वारा उनके जीवन चरित्रा, उनके विचारों का आदान-प्रदान होता रहता था, उसके ऊपर उनका विचार-विनिमय होता रहता। उनका विचार क्या होता? वह अपने में मुद्रित होने के लिए आत्म-तत्त्व की चर्चा करते रहते थे। मानव अपने में कैसे मुद्रित हो जाता है? अग्नि को पृथ्वी से मिलान करना चाहता है। अग्नि, और पृथ्वी को वायु से मिलान करना चाहता है और वायु का अन्तरिक्ष में अग्नि से समन्वय करना चाहता है। इस प्रकार का उनका विचार-विनियम आदान-प्रदान होता रहता था। उन विचारों को ले करके दोनों अपने में 'सम्भवः दिव्यं गतप्रः अस्वः रुद्रो भागः दिव्यस्ते।' मेरे पुत्रो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि वह अपने में मुद्रित होते और योगाभ्यास के द्वारा अग्नि और पृथ्वी के परमाणुओं के साथ मुद्रित हो करके पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश कर जाते थे और चिन्तन करते रहते थे कि अग्नि का भण्डार इस पृथ्वी में कैसे गति कर रहा, कैसे धातुओं को तपा रहा है, कैसे उऋण बन रहा है? इसी प्रकार वह कहीं चन्द्रमा में मुद्रित होते हुए उसकी शीतली आभा में रमण

कर जाते और वह शीतली आभा को जान करके चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा अपने मन की प्रवृत्ति को परिवर्तित करते रहते थे? मुनिवरों! इसी प्रकार सूर्य विज्ञान की नाना प्रकार की मुद्रायें जानते थे। (तैंतालिसवाँ पुष्प, बरनावा 17 मार्च, 1983)

विराट स्वरूप का ज्ञान

भगवान् कृष्णा ने एक समय महात्मा सन्दीपन ऋषि महाराज से कहा था कि हे भगवन्! मैं विराट स्वरूप ब्रह्म को जानना चाहता हूँ। ब्रह्म का जो विराटमयी स्वरूप है उसे मैं जानना चाहता हूँ। मैं यह चाहता हूँ कि अपान और प्राण दोनों का समन्वय कैसे करता है साधक? जब भगवान् कृष्णा ने यह कहा था तो उस समय भगवान कृष्णा की आयु 20 वर्ष 22 दिवस की थी। महात्मा सन्दीपन ऋषि क्योंकि योग के मर्म को जानते थे, जहाँ वह व्याकरण के, ध्वनियों के मर्म को जानते थे, वहाँ वह योग की प्रतिभा को भी जानते थे। जब उन्होंने यह प्रश्न किया, तो मेरे प्यारे! योग की प्रतिभा में न जाते हुए उन्होंने कहा कि कृष्ण् तुम अपान और प्राण की आभा को जानना चाहते हो? तो यह प्रश्न तुम्हारा महान् है, गहन है। क्योंकि इस अपान और प्राण के मिलान करने वाले बहुत से ब्रह्मवेता हुए हैं, जो बहुत बुद्धिमान हुए हैं। तुम राष्ट्र और विज्ञान की चर्चा करो। परन्तु उन्होंने कहा, नहीं, प्रभु! मेरे हृदय की यह आकांक्षा है और मैं संसार में विराटमयी ब्रह्म को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। भगवान् कृष्णा से

सन्दीपन ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी! आओ, तुम विराजो। वह विराजमान हो गए। उन्होंने कहा योग की आभा में तुम गमन करना चाहते हो। तो सबसे प्रथम उन्होंने अग्नि और गति दोनों की मुद्रा को मुद्रित करना प्रारम्भ किया। प्राण को मन पर आभाषित कर दिया, जब प्राण और मन दोनों का समन्वय हुआ, तो दोनों एक सूत्रमें परिणत हो गए। तो वायु का जो वेग था, वह नाभि केन्द्र से प्रकाशित होने लगा। जिससे गति करता हुआ, प्राण की मस्तिष्क में जो कृतिका है उसमें मुनिवरो! स्थिरता आ जाती है। आज इस योग की आभा का तुम्हें केवल परिचय देना है, मैं सर्वत्रअनुभव की चर्चा नहीं करुंगा, केवल परिचय दूंगा और वह परिचय क्या है? जब टिकटिकी अस्वानम् हो जाती है वह जो कृतिका है जिसे हमें त्रिवणी कहते हैं, जहाँ प्राणों का, और मन का, प्राण और अपान का नाभि केन्द्र से समन्वय हो करके दोनों का मिलान होता है। वह मूलाधार में भी होता है, नाभि चक्र से त्रिवेणी के स्थान में तीनों प्रकार के परमाणुओं का मिलान हो जाता है। क्योंकि वास्तव में इस मानव शरीर में प्राण, अपान और उदान इन तीनों प्राणों के एकाग्र करने से ही योग सिद्ध हो जाता है। कैसे होता है? प्राण में से जितना भी अन्तरिक्षवाद है, लोक-लोकान्तरवाद है, इनमें परमाणुओं का उद्गम होता रहता है, उसको वैज्ञानिक बन के वह योगी इस अन्तरिक्ष की आभा में रमण कर जाता है। परन्तु जब वह अपान में जाता है तो

उससे निचला स्थान जो वह पृथ्वी का गर्भ है, खाद्य और खनिज है। मुनिवरो! प्राण-अपान के मिलान होते ही विज्ञान का एक सृष्टिकरण हो जाता है। परन्तु उदान को लिया जाता है इसमें उदान का मिलान किया जाता है तो इसके मिलान से जितना चित्त का मण्डल है वह नाना जन्म-जन्मान्तरों का है, करोड़ों जन्मों का क्यों न हो परन्तु उसके संस्कार उसके समीप नृत्य करने लगते हैं। यह तीन प्राण माने गये है। प्राण, अपान और उदान इनकी आभा को जानने से योगी, योग सिद्ध हो जाता है। (तैंतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 19 मार्च, 1983)

भगवान् कृष्ण ने एक समय सन्दीपन ऋषि से प्रश्न किया था कि महाराजा! मैं आध्यात्मिकता में मुद्रित होना चाहता हूँ? मैं आध्यात्मिकता में मुद्रित कैसे बनूगाँ? महाराजा सन्दीपन ऋषि ने कहा कि तुम्हें मुद्रित होना है तो ''सम्भवं ब्रहे वृतः'' तुम प्रत्येक इन्द्रियों को मुद्रित बना लो। भगवान् कृष्ण ने उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके अपने को मुद्रित बनाने का प्रयास किया। नेत्रों को मुद्रित किया, श्रोतों को मुद्रित किया, त्वचा को मुद्रित किया, सबको मुद्रित करने के पश्चात् इस ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात किया। इस ब्रह्माण्ड के विज्ञान को विज्ञान के तत्वाधान में ले गए।

वेद के आचार्य सन्दीपन ने यह कहा था भगवान् कृष्ण को कि हे पुरुष मानव! ये जो ब्रह्माण्ड ''ब्रह्म वाचः'' है, यह प्राण सूत्रमें पिराया

हुआ है। इसका सूत्रही प्राण है। प्राण सूत्रमें देखो, इन्द्रियाँ पिरोई हुई हैं। जब प्राण चला जाता है तब इन्द्रियों का अपना अस्तित्व नहीं रह जाता है (बयालिसवाँ पुष्प, नई दिल्ली, 9 मई, 1983)

योग याग

सन्दीपन ऋषि के आश्रम में प्रातः कालीन योग-याग होता था। योग-याग किसे कहते हैं? दो वस्तुओं के मिलान का नाम योग माना गया है। मनस्तत्व, प्राणास्तत्व, इन्द्रियस्तत्व सम्भवः। सर्वत्रइन्द्रियों के मिलान का नाम और ध्यानावस्था का नाम योग है। योग से परिणत होते ही वे देव याग में परिणत हो जाते। सन्दीपन ऋषि के आश्रम में जहाँ इस प्रकार की यज्ञशालाएँ, विचारशलाएं थी, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की देव पूजाओं के सम्बन्ध में चिन्तन और मनन होता रहा, वही उन्हीं स्थलियों पर विज्ञान के परमाणुओं को जानना इन ब्रह्मचारियों के लिए इस शिक्षा का विशेष महत्व था। मानव का निर्माण नाना प्रकार के भवनों में नहीं होता। मानव का निर्माण उसकी भावनाओं से होता है। मानव का निर्माण भयंकर वनों में होता है। भगवान् कृष्ण का जीवन निर्माण हुआ तो गुरुओं के द्वारा भयंकर वन में। अरे! मानव को कहाँ जीवन मिलता है, जहाँ बेटा! प्रकृति अपने श्रृंगार से सुशोभित है। जहाँ प्रकृति का श्रृंगार ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य से परिपक्व कर देता है। जहाँ उसे जीवन की निधि प्राप्त होती है और जहाँ मानव से प्रकृति रुष्ट हो जाती है, प्रकृति निःश्रृंगार हो

जाती है और मानव का बनाया शृंगार आ जाता है। वहाँ मानव के निर्माण नहीं होते। (आठवाँ पुष्प, सीताराम बाजार, दिल्ली, 11 मई, 1967)

पनपेतु जैसे आचार्यो ने भगवान् कृष्ण को वैज्ञानिक बना दिया। (सोलहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 1 अगस्त, 1970)

गृहस्थ आश्रम में

क्या, भगवान् कृष्ण की सत्यभामा, और रुक्मिणी दोनों पत्नी थी? (महानन्द जी)

मेरे प्यारे मुनिवरों! भगवान् कृष्ण एक ही पत्नी के ब्रह्मचारी थे, परन्तु उनकी पत्नी को कई नामों से पुकारा करते थे। उनको सत्यभामा भी कहते थे, रुक्मिणी भी कहते थे और भी विभिन्न नामों से पुकारा जाता था। (चतुर्थ पुष्प, आर्य समाज (जम्मू) 2 अप्रैल, 1964)

जो ब्रह्म का चिन्तन, मनन करता है उस को भी ब्रह्मचारी कहते है। ब्रह्मचारी कई प्रकार के होते हैं। इस प्रकार के ब्रह्मचारी भी होते हैं जिनसे सन्तान इत्यादि की उत्पत्ति भी हो सकती है। परन्तु जब प्रत्येक प्राणी की ऊर्ध्वागति हो जाती है तो यह संसार स्वर्गमय हो जाता है, वायुमण्डल पवित्रहो जाता है। सतोयुग के काल में प्रायः मानव प्राणायम करने वाला होता था और सन्तानोत्पति भी नियमानुसार होती थी। कृष्ण गृह आश्रम से प्रविष्ट थे परन्तु वह नित्य

प्रति प्राणायाम करते थे, रात्रिहोती तब भी प्राणायाम करते रहते, दिवस होता तब भी प्राणायाम करते रहते, परन्तु उनके प्रद्युम्न जेसा पुत्र भी हुआ। (ग्यारहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 1 अगस्त 1968)

महाराजा कृष्णा के जीवन की एक ऐसी घटना मिल रही है जिसका आज सूक्ष्म सा संदेश है। जिस समय उनकी पत्नी रुक्मिणी के, प्रद्युम्न नामक एक बालक उत्पन्न हो गया, उसके पश्चात् कृष्णा ने यह कहा था कि मैं ब्रह्मचारी बनने जा रहा हूँ। उस महान जन्म-जन्मान्तरों के योगी ने देखो, बारह वर्ष तक अपने जीवन का अनुसन्धान किया। द्वापर के पश्चात् किसी ने अपने जीवन का ऐसा मन्थन नहीं किया, उनके एक-एक रोम से ऐसी-ऐसी ज्योतियाँ उत्पन्न होती थी जैसे सूर्य की महान् किरणें होती हैं। परन्तु आज हम उनकी महानता को कलंकित बनाना चाहते हैं। उनके कर्त्तव्यों पर दृष्टि पहुँचानी चाहिए, जिससे मानव का पुनः उत्थान हो जाए। (सातवाँ पुष्प, विनयनगर, नई दिल्ली, 22 अगस्त, 1962)

माता रुक्मिणी ने एक समय भगवान कृष्णा से यह कहा था कि मैं ब्रह्मचर्य की महानता को जानना चाहती हूँ। यह ब्रह्मचर्यता क्या है? क्या हम भी ब्रह्मचारी बन सकते हैं? उस समय भगवान् कृष्णा ने यह कहा था; कि देवी! संसार में सभी ब्रह्मचारी बन सकते हैं। केवल वे जो अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं करते वह ब्रह्मचारी नहीं कहला

सकते। न वह ब्रह्मचारी हैं न उनमें ब्रह्मचर्यता है। ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं, एक तो महान् आदित्य नाम के होते हैं, जो भोगों के विशेषण में नहीं जाते, तृष्णा में नहीं जाते, विडम्बना में नहीं जाते, वेद के आदेश का पालन करते हैं। परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान को जानने वाले, ब्रह्मचर्य की रक्षा करने वाले महान् तपस्वी कहलाते हैं। दूसरे प्रकार के गृह स्थली में रहने वाले भी ब्रह्मचारी कहलाते हैं जो ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् गृह आश्रम में प्रवेश हो करके एक-दो सन्तान उत्पन्न करने के पश्चात् यज्ञ वेदी पर विराजमान होकर के प्रतिज्ञा करते है कि सन्तानोत्पन्न करने की हमारी मनोकामना पूर्ण हो चुकी है अब हमें परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान में लगना है। इसके पश्चात् पति और पत्नी दोनों वानप्रस्थ में पहुँच जाते हैं और उसके पश्चात् सन्यास धारण कर लेते हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने मानव के लिए यह चार आश्रम के विधान बनाये हुये हैं। (दसवाँ पुष्प, करोलबाग, नई दिल्ली, 26 जुलाई, 1963)

सोमपान

बाह्य जगत् में जो वृष्टि है, एक तो वह सोम कहलाता है, उस सोम को पान करने वाले अपनी-अपनी दिशाओं को प्राप्त कर लेते हैं। एक सोम आध्यात्मिकवादी कहलाता है जिसे आध्यात्मिक विज्ञानवेता तब पान करता है जब इस 'मंगलम् ब्रहे' अर्थात् जब उदीची में प्रवेश करता है, उदीची दिग्सोमम् ब्रह्म वाचाः' उदीचीदिक् सोम का

पान करता है, वह ऊर्ध्वा में गति, उड़ान उड़ता हुआ उदीची में प्रवेश कर जाता है। जब भगवान् कृष्णा 'ब्रह्मव्रताम्' अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करते थे, तो वह (श्रीकृष्णा) कहा करते थे कि प्रभु में आध्यात्मिक सोम का पान करना चाहता हूँ। समर्पणा ऋषि महाराज ने ''मंगलम् ब्रहे वाचो' देखों उन्होंने उसको उपदेश दिया। वह सोम का पान कराते, प्राणों के मिलान से जो झरनियाँ झरती हैं उसको सोम कहते हैं। (अड़तालीसवाँ पुष्प, चंड़ीगढ़, 31 जुलाई, 1985)

आहार व्यवहार

भगवान् कृष्णा भी महारानी रुक्मिणी से यह कहते देवी! संसार में आहार पवित्रहोना चाहिए, आहार पवित्रनहीं होगा तो व्यवहार पवित्रनहीं बनेगा और व्यवहार पवित्रनहीं बनेगा तो हमारी मानवीयता नहीं बनेगी और मानवीयता नहीं बनेगी तो किसी को ऊर्ध्वा में पहुँचा नहीं सकेंगे। हम अपने विचारों से समाज को महान् नहीं बना सकते। मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण है भगवान् कृष्णा जब रुक्मिणी से यह कहते थे तो वह इसे स्वीकार करती थी। आधुनिक काल में देखो, राधा-कृष्णा का कीर्तन हो रहा है। जो राधा अपने जीवन में दुर्गन्धित पदार्थो का पान नहीं करती थी, उसे द्वितीय रूपों में कृष्णा पत्नी भी कहते हैं। राधा-कृष्णा दोनों का कीर्तन हो रहा है परन्तु देखो, कीर्तनवादी कैसे हैं? मुझे ऐसा दृष्टिपात् आता है कि वह मांस का

भक्षण कर रहे हैं। कहाँ उनका जीवन, उनका विचार और आज राधा-कृष्ण के विचारों को तो त्याग दिया है और केवल यह चाहते हैं कि नाम कीर्तन से हमारी मुक्ति हो जाए। अरे! मुक्ति तो उस काल में होगी, जब मानव अपने मन-कर्म-वचन से ऊँचा बनेगा, जब मन-कर्म-वचन तीनों उनके ऊंचे होगे, तभी तो वह मानव समाज ऊँचा बनेगा। (इकतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 16 मार्च, 1986)

भगवान् कृष्ण के मुखारबिन्द से उद्गीत शब्दों को मानव अपने हृदय का उद्गार बनाना चाहता है परन्तु भगवान् कृष्ण का जीवन कैसा ऊँचा था? कैसी ऊँची उनके जीवन की प्रतिभा रही है? भगवान् कृष्ण सदैव शाकाहार में परिणत रहते थे। शाकाहार किसे कहते है? मानो पृथ्वी के गर्भ से जो आहार प्राप्त हो उस आहार को पान करना, उसी से सतोगुणी भावना को जन्म देना। आधुनिक काल के जो कृष्ण को मानने वाले हैं, उनके आहार और व्यवहार दोनों दूषित हो गये हैं। भगवान् कृष्ण जो फल इत्यादि का पान करते थे, गौ-धृत का पान करते थे' गौ रस का पान करते थे उनके मानने वाले आज गऊओं के मांस का भक्षण कर रहे हैं, तो कितना अंतर आ गया है आज के समाज में।

भगवान् कृष्ण ने अपने जीवन में कोई पाप नहीं किया। वह समुद्रों के तटों पर विद्यमान हो करके याग करते थे और याग करने से ही उनका राष्ट्र पवित्रकहलाया और उनका आहार कितना सात्विक

था, मानों लवण युक्त आहार वे करते थे। आज उनके मानने वालों को देखो, क्या-क्या पान कर रहे है? उनके विचारों की आभा में कौन सदैव रत रहा है? ('चित्त की वृत्तियां का निरोध', बरनावा, 5 मार्च, 1987)

उदारता

अपमान को सहन करने वाला महान् बनता है, नाम को ग्रहण करने वाला एक समय अभिमानी बन करके संसार में विनाश को प्राप्त हो जाता है। आज हमें विनाश के पदार्थो को एकत्रित नहीं करना है। हमें उस क्षेत्रमें जाना है जहाँ न मान है, न अपमान है। वह क्षेत्रहै ज्ञान का, वह क्षेत्रहै उदारता का। उदार बनेंगे तो हम ज्ञान के द्वारा ही बन सकेगें। जब ज्ञान से मनुष्य उदार बनता है तो उस मनुष्य के द्वारा महानता आती है, उसे न मान होता है, न अपमान होता है। वह मनुष्य विचित्रहोता है।

भगवान् कृष्ण कितने उदार थे? उनके मुखारबिन्द पर उसकी निन्दा होती थी, दुष्ट कहा जाता था। परन्तु वह इतने उदार थे कि सब वार्ताओं को सहन करते थे और आज संसार में पूजनीय है। यह उनकी उदारता का फल है। जब मनुष्य संसार में उदार बनकर रहता है, तो संसार में उसकी पूजा होती है।   (नवम् पुष्प)

गौ रक्षक

आज मैं भगवान् कृष्ण के जीवन और उनके कर्त्तव्यवाद पर जा

रहा हूँ। आज मैं उनके जीवन की प्रतिभाओं को अथवा उनकी आकृतियों को वर्णन करता रहूँ तो इससे मुझे लाभ नहीं परन्तु विचार-विनिमय यह करना है कि भगवान् कृष्ण ने जीवन में सदैव समय-समय पर आ करके किस प्रकार की मानव पद्धति को अपनाने का प्रयास किया।

वैदिक परम्परा को अपनाते हुए भगवान् कृष्ण ने एक वाक्य कहा था कि जहाँ समाज में गऊओं की रक्षा होती है वह समाज महान् बनता है। जहाँ हमें गौ नाम के पशु की रक्षा करनी है, गौ नाम की इन्द्रियों की रक्षा करनी है वहीं राष्ट्रीय विचार धारा और मानव पद्धति को भी विलक्षण बनाना है। मुझे स्मरण आता है कि जब भगवान् कृष्ण मार्ग से आते तो वह एक ध्वनि किया करते थे और उसी ध्वनि के आधार पर एक नाद होता और गऊएँ प्रसन्न हो करके दुग्ध देने को तत्पर हो जातीं। जब पशु प्रसन्न हो करके दुग्ध देता है तो वह दुग्ध स्वामी के लिए बुद्धिवर्द्धक होता है। यदि आज कोई मानव पशु के दुग्ध को लेना चाहता है परन्तु उस पशु के हृदय में यह भाव नहीं है कि मैं इसको दुग्ध प्रदान करूँ, तो आचार्य कहते है, भगवान् कृष्ण ने भी कहा है, कि वह दुग्ध रक्त के तुल्य ही होता है, वह दुग्ध मानव के मस्तिष्क को कदापि भी उन्नत नहीं बना सकेगा। क्योंकि मानव के मस्तिष्क का जो जन्म है वह उसकी प्रसन्नता से सुगठित रहता है। भगवान् कृष्ण ने कहा कि सबसे प्रथम पशु को प्रसन्न किया

जाए। वह पशुओं की रक्षा करने में कितने दक्ष रहते, मार्ग में जाते हुए भी उनका वेदों का अध्ययन प्रारम्भ रहता। गऊओं की रक्षा करना उनका परम कर्त्तव्य था। सबसे प्रथम गऊ नाम के पशु की रक्षा करना, क्योंकि उससे राष्ट्रीय परम्परा ऊँची बनती है। राष्ट्रीय सम्पदा क्या है? राष्ट्र में जो दुग्ध देने वाला पशु है उसी से मानव की बुद्धि ऊँची बनती है, मानव की बुद्धि में ऊर्ध्व गति आती है। ऐसे उत्तम पशु राजा के राष्ट्र में हो और उनकी रक्षा करना यह सबका परम कर्त्तव्य हो जाता है। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

भगवान् कृष्णा की गऊएँ आती, तो एक नाद बजता और जब उनको दुहा जाता तो वह प्रसन्न हो करके दूध दिया करती तो उनका हृदय भी अहिंसा परमोधर्म में परिणत हो जाता। हिंसा कहां से प्रारम्भ होती है? हिंसा मानव की वाणी से प्रारम्भ होती है। (चौदहवाँ पुष्प, ग्रा. रोहटा, मेरठ 8 नवम्बर, 1969)

गौ के अर्थ

''गौरसि अमृता'' वेदाचार्यो ने ''गौ'' का बड़ा सुन्दर वर्णन किया हैं। भगवान्! कृष्णा से एक समय महारानी रुक्मिणी ने कहा कि प्रभु! 'गौ' हम किसको कहते हें? भगवान् कृष्णा ने कहा था हे देवी! 'गौ' नाम हमारी इन्द्रियों का है, दुग्ध देने वाला जो पशु है उसका नाम भी गौ है, 'गौ' नाम सूर्य की किरणों का भी है, चन्द्रमा की कान्ति

का नाम भी गौ है और गौ नाम पृथ्वी का भी है। भगवान् कृष्ण ने 'गौ' को नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्दों से विभक्त किया है। 'गौ' शब्द की व्याख्या करते हुए हमारे आचार्यजनों ने कहा है कि जब सूर्य से अमूल्य किरणें चलती हैं तो संसार में उनका प्रसार होता है, एक-एक किरण से नाना प्रकार की किरणों की प्रबलता हो जाती है, जिस समय वह संसार में ओत-प्रोत होती है तो प्रत्येक मानव उन किरणों से अपने जीवन को महान बनाता हुआ यौगिकता को प्राप्त हो जाता है। आज वह इन्द्र सहस्रों भुज वाला बन करके हमारा कल्याण और हमारी रक्षा कर रहा है। (पाँचवाँ पुष्प, मोगा मण्डी, पंजाब, 19 अक्टूबर, 1964)

पंच कर्म

संसार में बेटा पाँच प्रकार के कर्म होते है। सबसे पूर्व दो कर्म होते है, धुरवा और ऊर्ध्वा। ध्रुवा नीचे का कर्म और ऊर्ध्वा ऊपर जाने वाला। तीसरा कर्म ह व्यापकता। मानव के द्वारा जितनी व्यापकता होती है, जितना उसका विस्तार होता है उतना व्यापक बेटा! मानव का जीवन होता है। चतुर्थ कर्म का नाम है आकुंचन। बेटा! आकुंचन कहते है मानव का बहुत सूक्ष्म बन जाना। पचम कर्म है क्रिया। आज जो भी क्रियात्मक कर्म हैं, जैसे हम रमण करते है, भ्रमण करते है यात्रा करते है सब क्रिया कहलाती है। इन पांच प्रकार के कर्मो को विचारना है और विचार करके चलना है। आज हम अपने जीवन को

हताश में दृष्टिपात् करने लगते है क्योंकि हमारे द्वारा दृढ़ता नहीं है, साहस नहीं है, हम अपने जीवन में नपुंसक है। आज हमें नपुंसक नहीं बनना है। आज हमें विचारशील बनना है। इससे हमारे जीवन की जो धाराएँ हैं वे विचित्रता में परिणत होती रहें। आज हम अपने जीवन को संकुचित न बनायें। आकुंचन न करें क्योंकि इससे हमारे जीवन का विनाश होता चला जाता है। मेरे भद्रपुरुषों! मुझे भगवान् कृष्णा का जीवन स्मरण है उनका जीवन व्यापक था। व्यापकता से वह संसार को दृष्टिपात् करते थे। उनका जीवन, उनकी मानवीयता, कितनी व्यापकता में रहती। वह गऊओं के आँगन में रमण कर रहे हैं, गऊओं का पालन कर रहे हैं, उनकी ध्वनि आ रही है तो गऊएँ उनके आँगन में चली आ रही हैं। उस मानव के हृदय में कितनी उदारता होती है जिससे पशु-पक्षी भी स्नेह करते है। वह मानव कितना स्नेहधारी होता है।

इसलिए हे मानव! यदि चाहते हो कि संसार तुमसे प्रीति करें तो तुम स्वयं अपने अन्तरात्मा से प्रीति करो। संसार तुम्हें स्वतः अपना लेगा। यदि तुम अपनी अन्तर-आत्मा से द्रोह करोगे, मान-अपमान के क्षेत्रमें रमण करते रहोगे तो हे मानव! एक समय वह आयेगा कि तुम्हारा जो बाह्य अग्रणी कर्म है, वह सब नष्ट हो जायेगा। महापुरुषों से हमें एक महान् जीवन शक्ति प्राप्त होती है। जब हम भगवान् कृष्णा के क्षेत्रमें जाते है तो देखते है, कि उनके जीवन में कितनी व्यापकता

थी, जिनसे मार्ग में विचरण करने वाले पक्षी भी स्नेह करते हों। बेटा! वहाँ कितनी विचित्रता, कितनी मानवता, कितनी वास्तविकता होती है। मेरे भद्रपुरुषों! आज हम उस मानवीय क्षेत्रमें पहुँचे जहाँ व्यापकता प्राप्त होती हो। जहाँ ओज और तेज की प्राप्ति होती हो। (आठवाँ पुष्प, सीताराम बाजार, दिल्ली, 11 मई, 1967)

भौतिक वैज्ञानिक

मुनिवरो! देखो, जहाँ भगवान् कृष्ण का जीवन गऊओं की रक्षा करने में, वेद की परम्परा को ऊँचा बनाने में था, वहाँ वह भौतिक विज्ञान में कितने पारंगत थे, भौतिक विज्ञान में उनकी कितनी विलक्षण गति थी ? मुझे स्मरण है, मैंने महाभारत का काल अच्छी प्रकार अध्ययन करने के पश्चात् देखो, उनके द्वारा कितना विज्ञान था। उन्होंने वेदों से ही नाना प्रकार के मन्त्रों का आविष्कार किया था। भगवान् कृष्ण मौनधुक नाम की रेखा को जानते थे और उन्होंने एक सोमधुक नाम का यन्त्रबनाया था, जिन मन्त्रों में अनेक विशेषताएँ थी। क्या विशेषता थी? प्रायः महाभारत में आता है, श्रवण भी किया गया है कि जब महाराजा जयद्रथ को नष्ट करने का प्रश्न आया तो उस समय महाराज अर्जुन ने एक प्रतिज्ञा की, कि सूर्य अस्त होने से पूर्व अपने प्राणों को त्याग दूँगा, यदि जयद्रथ का वध न कर पाया। परन्तु दिवस आया और गुरु द्रोणाचार्य, दुर्योधन इत्यादियों ने जयद्रथ को अपने ही आँगन में ऐसे स्थान पर रखा जहाँ अर्जुन को वह दृष्टिपात्

ही नहीं आ पाता था। भगवान् कृष्णा ने यह विचारा कि अब क्या होना चाहिए? यदि सूर्य अस्त हो गया और जयद्रथ के दर्शन न हुए तो मेरा जो सखा अर्जुन है यह प्राणों को अवश्य त्याग देगा। तो उन्होंने जो मौनधुक नाम का यन्त्रथा, उसको अन्तरिक्ष में छा दिया। जब अन्तरिक्ष में छा दिया तो ऐसा प्रतीत होने लगा कि सूर्य अस्त हो गया, अन्धकार छा गया है। मुनिवरों! देखो, उस समय जयद्रथ इत्यादि सब आ पहुँचे कि अब अर्जुन के प्राणों को नष्ट होते दृष्टिपात् करेंगे। जब वह सब महाराजा अर्जुन के निकट विराजमान हो गए, तो भगवान् कृष्णा ने सोमधुक नाम के यन्त्रको अपरित किया। जिससे पहले यन्त्रका प्रभाव समाप्त हो गया और सूर्य उदय हो गया। भगवान कृष्णा ने अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! तू कहाँ है, देखो, यह सूर्य उदय हो रहा है, तू क्यों नहीं इसे (जयद्रथ) छेदन कर देता, देख जयद्रथ तेरे सम्मुख है। हे अर्जुन! किसी प्रकार की विडम्बना न कर देना। यदि इसका मस्तक नीचे गिर गया तो तेरा मस्तक भी नीचे गिर जायेगा इसीलिए यह मस्तक ऐसे स्थान पर जाना चाहिए जहाँ यह तुझसे नीचे न गिरे। कहा जाता है कि अपरेति जयद्रथ के पिता गंगा के किनारे, तप कर रहे थे। उस समय जयद्रथ का मस्तक तरकशों में विराजमान होता हुआ, पिता की गोद में जा पहुंचा और उन्होंने विचारा कि यह क्या है? ज्यों ही जयद्रथ का मस्तक नीचे गिरा, तो उस यन्त्रसे उसके पिता का मस्तक भी नीचे आ गया। उस

यन्त्रका प्रभाव था कि पिता और पुत्रदोनों का वध हो गया।

संसार की रक्षा

मुनिवरों, जहाँ उनमें इस प्रकार की विज्ञानधारा थी, वहीं उनके मन मे यह विडम्बना रहती थी कि मुझे आध्यात्मिकवाद का भी अध्ययन करना चाहिए। उनका जीवन सदैव इस प्रकार रहता था कि मन्त्रों में ही संलग्न रहते थे, एक जो मौनधुक नाम की रेखा थी दूसरी जिसको सौनधिक नाम की रेखा कहते थे, जिसका वेदों में बड़ा सुन्दर वर्णन आता है, उसका उन्होंने अध्ययन किया था। अध्ययन करने के पश्चात् यह जो यज्ञवेदी है, इसका जो परमाणुवाद है, जब अन्तरिक्ष में जाता है तो उसी परमाणुवाद से उन्होंने इस यन्त्रको जाना, इस रेखा को जाना था। महाभारत का जब संग्राम हुआ तो भगवान् कृष्णा यह जानते थे कि यदि मैंने दूसरी कृति को नहीं जाना तो यह समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने जितना महाभारत संग्राम का क्षेत्रथा उसके निकट उस रेखा को स्थिर कर दिया था। उस रेखा का परिणाम यह था उस रेखा की जो वैज्ञानिकता थी वह इस प्रकार की थी कि जितना भी परमाणुवाद, जितना मन्त्रों से संग्राम होता उन मन्त्रों के अन्तर्गत जितने रहते थे उनकी तो मृत्यु हो जाती थी परन्तु बाहर उसका प्रभाव नहीं पड़ता था। भगवान् कृष्णा ने उस रेखा को अच्छी प्रकार सुगठित कर दिया था। उसका प्रभाव यह था कि चार-चार, पाँच-पाँच योजन के ऊपरले

मार्ग में जा करके वह परमाणु पहुँचते थे परन्तु उससे ऊपर कोई परमाणु नही। जिससे दूसरे व्यक्ति उस महान् विषैले मन्त्रों से नष्ट-भ्रष्ट न हो जावे, भगवान् कृष्ण के समीप ऐसा विज्ञान रहता था। परन्तु जहाँ वैदिक परम्परा को इस प्रकार अपनाने में सदैव तत्पर रहते थे, वहाँ उनका जीवन इस प्रकार रहता था कि उनके जीवन मे सदैव अग्नि की प्रतिभा रहती थी। उस अग्नि को धारण करते हुए भगवान् कृष्ण ने ज्ञान और विज्ञान को जानने का प्रयास किया। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

भगवान् कृष्ण द्वारा बनाये यन्त्र

भगवान् कृष्ण विज्ञान का अनुसन्धान करते थे और उनके आश्रम में शिक्षार्थी विद्यमान होते थे और महारानी रुक्मिणी भी अनुसन्धान करती रहती थी। एक समय वे एक यन्त्रका निर्माण कर रहे थे और वह यन्त्रऐसा था जिससे उनकी इच्छा थी, कि मैं दिवस को रात्रिकैसे बना सकूँ? क्योंकि जब सूर्य अस्त हो जाता है, अन्धकार आ जाता है, रात्रिआ जाती है, नेत्रअन्धकार में अपने को दृष्टिपात् करने लगते है। यह कैसा अन्धकार आता है और कहाँ से आता है? तो मुनिवरों, उन्होंने एक ‘त्रिकेतुक विशारद कृत’ नाम के यन्त्रका निर्माण किया और उस यन्त्रमें उन्होंने पार्थिक तत्त्वों को जानने का, पार्थिव परमाणुओं को एकत्रित करने का प्रयास किया।

मेरे पुत्रों! उन तत्त्वों को एकत्रित करने के पश्चात् उस परमाणुवाद

को मन्त्रों में स्थित कर लिया, जिन परमाणुओं से सूर्य की, आदित्य की किरणों को निगला जाए और रात्रिछा जाए और किरणें वही शांत हो जाएँ। वह यन्त्रउन्होंने निर्मित किया। जब निर्माण कर लिया तो उसका परीक्षण भी किया गया। जब परीक्षण हुआ तो दिवस में रात्रिछा गई। रात्रिके छाने के पश्चात् मुनिवरों, जब अन्धकार हो गया तो महारानी रुक्मिणी उनकी सहायक थी, उन्होंने द्वितीय यन्त्रका निर्माण किया ''प्रकाशां ब्रहे व्रतां देवत्य'' नाम का यन्त्रथा। यदि उस यन्त्रको त्याग दिया जाए, उसका प्रहार कर दिया जाए तो वह अन्धकार के परमाणुओं को निगल लेता। सूर्य की किरण ज्यों की त्यों आने लगे और उससे प्रकाश आ जाए। उन्होंने इन दोनों मन्त्रों का निर्माण एकान्त स्थली पर, भंयकर वनों में किया था। मेरे पुत्रों! इस यन्त्रकी विशेषता भीम के पुत्रघटोत्कच्छ भी जानते थे, इस प्रक्रिया को कर्ण भी जानते थे, परन्तु यन्त्रका निर्माण उन्होंने नहीं किया था।   (आत्मलोक)

भगवान् कृष्ण यह भी जानते थे कि मैं मंगल की यात्रा कर सकता हूँ। मंगल की यात्रा करने के लिए उन्होंने सौकिक नाम के एक यन्त्रको निर्धारित किया था जिस यन्त्रमें विराजमान होकर के उन्होंने सूक्ष्म परमाणुओं को जानने का प्रयास किया था जैसे परमाणु, महापरमाणु, त्रिसरेण, चतुर्सेणु, पचरेणु, अकरेती सप्तरेणु को जानकर मंगल की यात्रा करते। सप्तरेणु इतना सूक्ष्म और शक्तिशाली

होता है कि उससे मानव मल की यात्रा करने में सफल हो जाता है। भगवान् कृष्ण मन्त्रों में विराजमान होते और वह लोकों की यात्रा कर लेते थे। परन्तु वह आत्मा रूपी यन्त्रको बना करके लोक-लोकान्तरों तथा परमात्मा के सर्वत्रब्रह्माण्ड में भी भ्रमण कर लेते थे। उनका जीवन इतना पवित्रमाना गया है कि उन्होंने अपने जीवन में एक भी पाप कर्म नहीं किया था। वह इस प्रकार के महान् व्यक्ति थे। आज तो मैं, प्रभु से यह कहा करता हूँ कि भगवान् कृष्ण जैसी पुनीत आत्माएँ संसार में आयें। संसार में अद्भुत आत्माएँ होनी चाहिए जिससे यह समाज और राष्ट्र उन्नतशील होता चला जाए और मानव समाज का कल्याण हो जाए। मानव पुनः से ज्ञान और विज्ञान की वेदी पर आ जाए। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1968)

एक समय भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों समुद्र के तट पर विद्यमान थे। दोनों का वैज्ञानिक तथ्यों के ऊपर विचार-विनिमय हो रहा था। भगवान् कृष्ण नाना प्रकार के वैज्ञानिक मन्त्रों में प्रवेश कर रहे थें। उन्होंने एक ऐसे यन्त्रका निर्माण किया था जिसको वायु में रमण करने मात्रसे सूर्य की किरणों को वह यन्त्रनिगलता था। सूर्य की किरणों को निगल करके द्यौ अथवा विद्युत् जो इस सूर्य में विद्यमान है और जिस विद्युत् से, जिस प्रकाश से वह इस रात्रिको अपने में धारण कर लेता है अथवा चन्द्र के प्रकाश को अपने में धारण कर

लेता है। वही भगवान् कृष्णा का यन्त्रउस सूर्य के प्रकाश को निगल रहा था। क्योंकि वह सूर्य द्यौ का प्रतिनिधि माना गया है। हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से अथवा सृष्टि के मध्य से कुछ ऐसा माना जाता है कि सूर्य द्यौ का प्रतिनिधि है क्योंकि द्यौ से यह प्रकाश लेता है। और उसी प्रकाश को ले करके एक रात्रिको अपने में धारण कर लेता है। चन्द्रमा के प्रकाश को कान्तिमय बना करके अन्धकार को प्रकाश में ले जाता है। वही प्रकाश जो चन्द्रमा को अपने में धारण करने वाला है, रात्रिको अपने गर्भ में प्रवेश कराने वाला है। वही भगवान् कृष्णा का यन्त्रथा, जो सूर्यकेतु यन्त्रकहलाता था। वह यन्त्र दिवस में तो सूर्य की किरणों को निगल रहा था और रात्रिमें उस यन्त्रसे प्रकाश लिया जाता था। वही प्रकाश मेरे प्यारे! भगवान् कृष्णा ने अपने मन्त्रों में स्थिर कर दिया। उसी यन्त्रसे और नाना प्रकार के मन्त्रों को विकास किया जा रहा था। एक यन्त्र, वायु मण्डल में गति करने का विकसित किया जा रहा था। यह यन्त्रजब वायु मण्डल में त्याग दिया जाता तो वायु को दूषित भी कर रहा था। उस समय भगवान् कृष्णा ने कहा, हे अर्जुन! प्रकाश का एक ऐसा यन्त्रमैंने स्थिर किया है जो सूर्य की किरणों को धारण करने वाला अथवा निगलने वाला यन्त्रहै। मेरा यन्त्रवायुमण्डल में त्यागते ही पच्चीस राष्ट्रों के प्राणियों के प्राणों का हरण कर सकता है।

वायु शोधक यज्ञ

जब भगवान् कृष्णा ने ऐसा कहा, तो अर्जुन ने कहा, कि भगवान्! वायुमण्डल इससे तो दूषित हो जाएगा, तो प्रभु! उसके शोधन करने की भी आपके द्वारा उत्तरकृति होनी चाहिए, शोधन करने की क्षमता भी होनी चाहिए। तो उस समय भगवान् कृष्णा ने कहा, हे अर्जुन! इस प्रकार वायु मण्डल दूषित हो जाता है, पृथ्वी के गर्भ से खनिजों को वैज्ञानिक अपने में धारण कर लेते है अथवा राष्ट्र की सम्पदा बना करके उसे वायु में त्याग करके वायु-मण्डल दूषित हो जाता है। प्राण-घातक बन जाता है। उस समय हम क्या करते हैं? उसका शोधन करने के लिए हम उस समय याग करते हैं और अग्नि में घृत को प्रवेश करते हुए अग्नि का सूक्ष्म रूप बना करके वायुमण्डल में प्रवेश करा देते हैं और उस वायुमण्डल में जितने भी दूषित परमाणु है उनको वह परमाणु निगलते रहते हैं और वायुमण्डल शुद्ध बनाते रहते है अथवा निर्माण करते रहते हैं। उस समय भगवान् कृष्णा ने यही कहा था कि हमें याग करना चाहिए। मैं याग करता रहता हूँ। वह याग की प्रक्रिया भी जानते थे। याग एक ऐसा कर्म है जो इस संसार में प्रायः महान माना गया है। हमारे ऋषि-मुनि परम्परागतों से ही याग करते रहे हैं। (चालीसवाँ पुष्प, ग्रा. धनौरा, 28 सितम्बर, 1981)

मुनिवरों! भगवान् कृष्णा तो अपने आसन पर विराजमान होते थे, हर समय मग्न रहते थे और वेद मन्त्रों के गोपनीय विषयों को विचारते

रहते थे, उसके ऊपर अनुसन्धान करते थे और अनुसन्धान करते-करते प्रकृति पर शासन कर लेते थे। मुनिवरों! भगवान् कृष्ण प्रातःकाल में जब अन्तरिक्ष में तारामण्डलों का प्रकाश रहता था उस समय अपने स्थान को त्याग देते थे और गायत्राणी छन्दों का पाठ किया करते थे, माता गायत्री का पाठ किया करते थे, उसके पश्चात् यज्ञ करते थे और यज्ञ के ऊपर अनुसन्धान किया करते थे कि जिस सुगन्धिदायक औषधि से यज्ञशाला में, अग्नि में जो आहुति दी है वह सूक्ष्मरूप बन करके कहाँ चली गयी, इसका परिणाम क्या होगा?

अन्त में उस विज्ञान को जानते, कि जो सुगन्धिदायक औषधि मैंने अग्नि में प्रविष्ठ की है सूक्ष्म रूप बनकर अन्तरिक्ष में रमण करने लगी। अन्तरिक्ष से वह सुगन्धि कहाँ जाती है? मुनिवरों! भगवान् कृष्ण का यह अनुसंधान किया हुआ है कि वह सुगन्धि आदित्य तक और उसके साथ मानव की जो इच्छाएँ होती हैं, जो कल्पनाएँ होती हैं वे भी प्रत्येक आहुति के द्वारा अन्तरिक्ष में जाती हैं और पुनः वह सुगन्धि संसार में आ जाती है। भगवान् कृष्ण ने अनुसंधान करते हुए जाना कि मैं जो क्रिया करता हूं इसका क्या अभिप्रायः है? मैंने देखो 'जलं पवित्रं भवनेति' मैंने जल को स्थापित किया है। यहाँ सब देवता, वायु अग्नि, जल, पृथ्वी विराजमान हैं। अब मैं इनसे कौन-सी वस्तु जान सकता हूं।

मुनिवरों! सबसे प्रथम भगवान् कृष्ण ने पृथ्वी से एक ''रुषीणि''

नाम की धातु को जाना और एक ''रुधेनु'' नाम की धातु को जाना। वायु से ''संकेत'' नाम की धातु को जाना, जल से ''त्रुटित जटा'' नाम की धातु को जाना। इसी प्रकार और भी धातुओं को जानते हुए उन्होंने ''शुभोषणी'' नाम का यन्त्रबनाया, जिससे अन्तरिक्ष में रमण करने वाले परमाणुओं को एकत्रित किया और उससे एक ''सुरकेतु'' नामक यन्त्रबनाया और उससे महा अणुओं, महा त्रिसरेणुओं को एकत्रित करने लगे और उनसे नाना मन्त्रों का आविष्कार किया। बेटा! तुम्हें स्मरण होगा कि भगवान् कृष्ण ने एक यन्त्रजाना था जिसके द्वारा महाभारत युद्ध की जितनी भूमि थी उसको ''शृंगीकेत'' नाम की रेखा से युद्ध क्षेत्रको सीमाबद्ध कर दिया था। और जब संग्राम हुआ तो नाना प्रकार के अणुओं का प्रयोग किया गया, परन्तु उस रेखा में ये विशेषता थी कि जितना भी वैज्ञानिक मन्त्रों का प्रभाव होता था जिनसे राज्य के राज्यों का विध्वस हो सकता था वह उस रेखा से बाहर नहीं जाता था। मुनिवरो! देखों, महाराजा लक्ष्मण ने भी इस यन्त्रको जाना। जब माता सीता ने लक्ष्मण को रक्षा करने की चुनौती दी थी उस समय वह पंचवटी में उस शृंगी नाम की रेखा को नियुक्त कर गये थे। आज मुनिवरों! उन मन्त्रों को जानने की आवश्यकता है हमें पुनः उन वैज्ञानिकों की आवश्यकता है। (सप्तम् पुष्प, जम्मू, 30 सितम्बर, 1964)

पर्यावरण के लिए यज्ञ

याग रचना बहुत ही प्रियतम है। परन्तु याग के अनुसार अपने जीवन को बनाना और भी प्रिय होता है। क्योंकि याग का जितना भी कर्म है वह आत्म-शक्ति के लिए है और मन की शान्ति के लिए है जिसके परमाणु बन करके वायु मण्डल में परिणत होते रहते हैं और उन्हीं परमाणुओं से अशुद्ध परमाणु निगले जाते हैं। शुद्ध परमाणुओं का प्रादुर्भाव होता है। जिससे वायुमण्डल पवित्रहोता है। हमारे यहां एक समय पुरातन के वैज्ञानिकों में, एक समय जब भगवान् कृष्णा, अपनी विज्ञानशाला में यन्त्रका निर्माण कर रहे थे। तब अर्जुन ने कहा कि हे भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो परमाणुओं में अशुद्धवाद होता है इसके निवारण के लिए आप क्या कर सकते हैं? भगवान् कृष्णा ने कहा हे अर्जुन! यदि वायुमण्डल में परमाणुओं का दुष्प्रहार होने लगेगा तो मैं उसके पश्चात् याग करूँगा। नाना साकल्य एकत्रित करके घृत के द्वारा याग करूँगा। घृत एक ऐसी वस्तु है जिसे हम पशु याग कहते हैं। पशु याग क्यों कहते? क्योंकि पशु से घृत आता है और उस घृत के द्वारा जो याग करते हैं अग्निहोत्रद्वारा अग्नि में वह परमाणु प्रवेश करते हैं। वह परमाणुवाद को उत्पन्न करते हैं और वह परमाणु सूक्ष्म बनता हुआ वायुमंडल में प्रवेश करके उसकी अशुद्धता को निगलते चले जाते हैं। उनका सम्बन्ध द्यौ लोक से रहता हैं यागकर्म इस प्रकार ऊर्ध्वा गति में ले जाने वाला है।

नाना प्रकार के यागों का चलन हमारे यहां परम्परागतों से माना

गया है। इसके भिन्न-भिन्न प्रकार माने गये हैं। जैसे हमारे यहां अग्निष्टोम, याग, वाजपेयी याग अश्वमेध याग, अजयमेध याग, गौमेध याग आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का वर्णन होता रहता है। क्योंकि यागों का चयन करने से ही इस वायुमण्डल में पवित्रता आती है। ऋषि-मुनियों ने परम्परागतों से ही इस याग के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार का चयन किया है। जिसके ऊपर ऋषि-मुनि परम्परागतों से अपने में अध्ययनशील रहे हैं यह याग 'द्यौ' लोक की प्रतिभा कहलाती है। (पैंतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 11 मार्च, 1984)

गौमेध याग

गौमेध याग की अभिप्राय क्या? गऊओं की पूजा होनी चाहिए, गऊओं की रक्षा होनी चाहिए, गऊओं का सदुपयोग होना चाहिए, जिनसे दुग्ध का आहार लिया जाए। जिस राजा के राष्ट्र में दुग्ध होता है, दुग्ध देने वाला पशु होता है अथवा गौ होती है वह राष्ट्र संसार में सम्पन्न होता है। जिस राजा के राष्ट्र में गऊओं के मांस को कृत्य बनाया जाता है, उसको पान किया जाता है, वह राष्ट्र आज नहीं तो कल, अग्नि के मुख में परिणत होता चला जायेगा। मुझे भगवान् कृष्णा का काल स्मरण आता रहता है। भगवान् कृष्णा गऊओं के मध्य मे विद्यमान हो करके अन्वेषण करते थे। जाबाला पुत्रसत्यकाम ने गऊओं को लेकर ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। यह ब्रह्मज्ञान का द्योतक है, ब्रह्मज्ञान इससे प्राप्त होता है।

भगवान् कृष्णा गऊत्र्रों के मध्य में विद्यमान हो करके, उनके श्वांस पर, उसके दुग्ध पर अनुसन्धान करते थे, विचारते रहते थे कि यह गऊ हमें क्या-क्या देती है, जिसका श्वांस भी हमारे दूषित परमाणुओं को निगलता है। इसका गौ धन भी दूषित परमाणुओं को निगलता है और इसकी गतियाँ भी दूषित परमाणुओं को निगलती रहती है। इसका जो दुग्ध है, घृत है, आयुर्वेदाचार्यो ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। यह कहा है कि गौ-धृत वायु नाशक है, वायु का विनाश करने वाला है यह जो धृत है वह तेजस्वी है, यह तेजोमयी बनाने वाला है तथा मानव के बहुत से रुग्णों को शान्त कर देता है। (पैंतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 11 मार्च, 1984)

सुदर्शन चक्र

''मृत्यानि गच्छं मम व्रतन्नमानि देवोभग ब्रह्मणा ये न कर्मन्य नमामि प्रश्नों वृध्यम् ब्रह्मे लोका'' जैसे भगवान् कृष्णा ने शिशुपाल की एक सौ अशुद्धियाँ समाप्त कर दी थी, उसे क्षमा कर दिया था और उसके पश्चात् उसका मस्तिष्क गिरा दिया था। (तेरहवाँ पुष्प, बरनावा, 1 नवम्बर, 1969)

जिस समय इन्द्रप्रस्थ में याग हुआ, उस याग में जब महाराजा कृष्णा का निर्वाचन होने वाला था तो महाराजा शिशुपाल ने उनको अपशब्दों से प्रतिपादन किया, भगवान् कृष्णा ने अपने सुदर्शन चक्र से जो संकल्प के द्वारा बना वैज्ञानिक यन्त्रथा, उसके कण्ठ के भाग को

दूर कर दिया। जब मैं इस विचार को ले करके चलता हूँ कि वह सुदर्शन चक्र वास्तव में क्या था? वह भगवान् कृष्णा ने कैसे जाना? महाराजा इन्द्र, जो त्रिपुरी के राजा थे उन्होंने एक पोथी का निर्माण किया था, जिस पोथी से सूर्य विद्या पर, नाना प्रकार की किरणों पर उनका अनुसन्धान था। सूर्यकिरणों में एक संकल्प शक्ति होती है, जो सीमा में बद्ध रहती है। परमात्मा के संरक्षण में रहती है। जैसे सूर्य की एक किरण है, जो स्वर्ण को निर्माणित कर रही है, वहीं एक किरण है, जो और भी नाना धातुओं का निर्माण कर रही है, रत्नों का भी निर्माण कर रही है इसी प्रकार की जो रत्नोमयी किरण है और भी नाना प्रकार की जो किरणों है, परन्तु उन किरणों में एक ''संकलन व्रत'' नाम की एक किरण होती है, जिससे विशेष आभा कहलाती है। उस किरण को मन्त्रों में लाने से सुदर्शन चक्र का निर्माण हो जाता है। उस सुदर्शन चक्र का भगवान् कृष्णा ने निर्माण किया और वह संकल्प से गति करता था। इसी प्रकार जो संकल्प शक्ति है, उसके भी परमाणु होते हैं। उसमें नाना किरणों होती हैं और उसमें ऐसी भयंकर संकल्प शक्ति हैं, कि जिस मानव को नष्ट करना चाहते हो, तो वही कृत्य कर जाता है। एक यन्त्रऐसा है, जो भुजाओं में है और अग्नि की किरणों से यह गति कर रहा है, और इतनी तीव्रगति उसकी होती है कि उसकी गति को गणित नहीं कर सकते। एक शब्द का जब तक उच्चारण किया जाए, इतनी देर में लाखों

प्रतिक्रियाएँ लाखों परिक्रमाएँ उस यन्त्रकी हो जाती हैं। इस प्रकार के यन्त्रआधुनिक जगत् में नहीं है। (उन्तालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 6 मार्च, 1982)

वेदों के अध्येयता

भगवान् कृष्ण का जीवन महान् गोपनीय और विचित्रता में सदैव परिणत रहा है परन्तु उन्होंने नाना वार्ताओं को प्रकट करते हुए कहा है कि आज हम वास्तव में इस आत्मतत्व को जानने का प्रयास करें जिस आत्मतत्व को जान करके हम संसार रूपी सागर से पार हो जाते हैं। भगवान् कृष्ण वेदों का पठन-पाठन करते रहते। उनकी पत्नी उनसे निवेदन करती रहती कि महाराज! आप भोजन भी नहीं पान करते हो, सदैव इसी गोपनीय विषय में संलग्न रहते हो कि आपको संसार का ज्ञान नहीं रह पाता। भगवान् कृष्ण ने कहा कि देवी! मैं क्या करूँ यह जो वेदों का ज्ञान है यह ऐसा गोपनीय विषय है कि जिससे मेरा हृदय प्रसन्न होता है और मेरी इच्छा नहीं होती कि मैं इस वैदिक परम्परा को त्याग दूं अथवा यह गोपनीय विषय मेरे हृदय से दूर चला जाये। मुनिवरों! देखो, पति और पत्नी दोनों एकान्त स्थान में विराजमान होते, वेदो की चर्चा प्रारम्भ होती रहती, विचार-विनिमय चलता रहता और उनका हृदय मग्न रहता कि आज वैदिक विचार धाराओं की छत्रा-छाया में हमारा जीवन परिपक्व रहता है। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

भगवान् कृष्णा एक समय गोपिकाओं से विनोद कर रहे थे और विनोद करते-करते उन्हें कई दिवस हो गये। महारानी रुक्मिणी आई और बोली कि 'प्रभु! यह आप क्या कर रहे है? आप इन गोपिकाओं में विनोद करते रहते हैं, क्या आपको राष्ट्र का ध्यान नहीं? भगवान् कृष्णा ने कहा, देवी! यह संसार तो चलता चला जा रहा है और चलता चला जायेगा। परन्तु तुम मुझे गोपिकाओं में विनोद करने दो, मुझे आनन्द आता है। जब में इनसे विनोद करता हूँ तो मेरा अन्तरातमा शक्ति को प्राप्त कर लेता है। भगवान् कृष्णा जब यह कहा करते, तो रुक्मिणी मौन हो जाती और कोई उत्तर उनसे नहीं बनता तो कहा करती, भगवन्, भोजन इत्यादि पान करो। परन्तु उसका भी समय उन्हें प्राप्त नहीं होता था। (आठवाँ पुष्प, सीताराम बाजार, दिल्ली, 11 मई, 1967)

सोलह हजार गोपिकाओं का अभिप्राय

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रश्न किया कि आधुनिक काल का संसार यह कहता है कि भगवान् कृष्णा की सोलह हजार गोपिकाएँ थीं? मेरे प्यारे, संसार ने महाराज कृष्णा को जाना नहीं। मुनिवरो! मुझे भगवान् कृष्णा के जीवन को देखनें का सौभाग्य मिला और हम गौरव के सहित कहा करते है कि भगवान् कृष्णा पर्जन्य नाम के ब्रह्मचारी कहलाते थे और सोलह हजार वेद की ऋचायें उनके कंठ थी और हर समय उन ऋचाओं में मुग्ध रहा करते थे।

उनकी पत्नी रुक्मिणी उनसे कहा करती थी कि प्रभु! आप तो हर समय इन वेद रूपी गोपिकाओं में रमण करते रहते हैं तो उस समय भगवान कृष्ण कहा करते थे कि हे देवी! परमात्मा ने इस वेद रूपी अमूल्य प्रकाश को जानने के लिए मुझे उत्पन्न किया है। आज इस प्रकाश को जानना है जिनको जानकर मानव मुग्ध हो जाता है और उसके द्वारा वेद की भावनाएँ उत्पन्न होकर संसार-सागर से पार हो जाता है। (चतुर्थ पुष्प, जम्मू 19 अप्रैल, 1964)

आधुनिक काल का ऐसा मत है, भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध मे कि उनकी सोलह हजार आठ गोप-गोपकाएँ थी। जिसमें सत्यभामा, रुक्मिणी आदि आठ पटरानी कहलाती थी। ये प्रमुख रानियाँ कहलाती थीं, उनकी और सोलह हजार गोपियाँ थीं जिनके साथ वो विनोद करते थे। लेकिन कई काल मेें पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन करते हुए कहा था कि भगवान् कृष्ण आठ चक्रों को जानते थे आठों चक्रों को जानकार आठों सिद्धियों को जानते थे और सोलह हजार वेद मन्त्रों के गोपनीय विषयों को जानते थे। वह सदैव उनमें विनोद करते रहते थे। आधुनिक जगत् ने उनके अर्थो का अनर्थ कर दिया है। ऐसा भी हमारे जीवन में आता है कि उन गोपनीय विषयों को षोडश कलाओं में नियुक्त माना गया है। इसलिए सोलह कलाएँ होती हैं, ब्रह्म की षोडश कलाएँ है और उन षोडश कलाओं की तरंगें होती हैं। मानव के शरीर में आठ चक्र हैं और नौ द्वार होते हैं। इसी प्रकार

उन सब क्रियाकलापों को भगवान् कृष्णा जानते थे। मुझे स्मरण है जब कंस को विजय करने के पश्चात् महाराजा कृष्णा समुद्र के तट पर विराजमान हो गए थे, तो वहां तपस्या करते रहे। उन्होंने बारह-बारह वर्षों तक तप किया ऐसे तपस्वी को देवियों से विनोद करने वाला कहना यह तो अज्ञान है। न जानकर अर्थों का अनर्थ नहीं होना चाहिए। अर्थों का अनर्थ हो करके महापुरुषों के जीवन की आभा समाप्त हो जाती है। महापुरुषों का किया हुआ क्रिया-कलाप समाप्त हो जाता है। उसमें रूढ़ि आ जाती है। और वह रूढ़ि ही उन महापुरुषों को ऐसे विडम्बित कर देती है जैसे जीवित मानव को अग्नि में दाह कर देते हैं। वह मानव विडम्बित होता है। ऐसे ही महान् आत्मा विडम्बित होती रहती है। (पैतिसवाँ पुष्प, ग्रीन पार्क, 9 नवम्बर, 1977)

प्रत्येक मानव को गोपिकाओं से विनोद करना चाहिए। गोपिकाएँ क्या है? मानव के द्वारा जो संकल्प विकल्प होते है, उनका नाम गोपनीय विषय कहा जाता है। जब हम उस गोपनीय विषय को विचारते है उनका मन्थन करते रहते है तो एक समय में देवता बनने की हमारे द्वारा प्रवृति आई तो देवता बन गये और एक क्षण समय आया तो असुर बन गये। अब विचारना है कि हम असुर क्यों बन गये? इस पर मन्थन करना, इन पर विचार करना प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या का कर्त्तव्य है। कि जब मानव इन पर विचार

करता है तो गोपनीय विषय को विचारता है। यह विचारने की विद्या कहां से आती है। बेटा! आज भगवान् कृष्ण को कहा जाता है कि उनके सोलह हजार आठ गोपिकाएँ थी, जो उनकी पत्नियाँ थी। वह क्या थी? बेटा, भगवान कृष्ण को सोलह हजार आठ वेद की ऋचाएँ कण्ठस्थ थी और वे उनमें रमण करते रहते थे, उनका मन्थन करते रहते थे उस समय उन्हें न भोजन ही स्मरण आता था न संसार स्मरण आता था। वे उनमें विनोद करते, अन्तरात्मा में चले जाते। तो जब हम इन वेद मन्त्ररूपी गोपिकाओं को विचारते है, अपनी प्रवृत्तियों को विचारते हैं तो हमारा जीवन एक नवीन बन जाता है। नवीन धारा हमारे हृदय में प्रविष्ट हो जाती है, हमारा अन्तःकरण पवित्रहो जाता है और हम पाँचों प्रकार के कर्मो को सुगमता से विचार लेते हैं। (आठवाँ पुष्प, सीताराम बाजार, दिल्ली, 11 मई, 1967)

सेवा भावना

षोडश कलाओ के जानने वाले भगवान् कृष्ण इतने महान थे कि उन्होंने अपने जीवन में किसी प्रकार का पाप-कर्म नहीं किया। क्यों नहीं किया? यह प्रायः होता है कि जब मानव संसार मे आता है तो पाप भी करता है और पुण्य भी करता है क्योंकि यह शरीर ही उसे पाप-पुण्य कर्म करने के लिए प्राप्त होता है। भगवान् कृष्ण इतने महान् थे, अपने कार्यो में इतने दक्ष थे, ज्ञान और विज्ञान में इतने पारांगत थे कि किसी कार्य को करने के पश्चात् उस पर उन्हें

पश्चाताप नहीं होता था। नम्रता की उनमें प्रतिभा थी। जब इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ हुआ था। जिस समय यज्ञ का कार्यक्रम बनने लगा कि कौन-कौन मनुष्य क्या-क्या कार्य करेगा तो युधिष्ठिर जी से कहा गया कि महाराज आप तो यज्ञ दृष्टिपात् करते रहो, अर्जुन से कहा कि तुम सेवा करो, भीम से कहा कि तुम अस्त्रा-षस्त्रों को नियुक्त करो और सहदेव से कहा कि तुम पशुओं के भोजन के प्रबन्धकर्त्ता होओ। इसी प्रकार द्रव्य का स्वामी महाराजा दुर्योधन को बनाया। जब सब चुन लिए, तो महाराजा युधिष्ठिर, कृष्णा से बोले कि महाराज आप क्या करेंगे? वह बोले कि मैं वह कार्य करूँगा, जो मैं सदा परम्परा से करता चला आया हूँ, उसी कार्य को मैं कर पाऊँगा। उन्होंने कहा कि महाराज क्या करोंगे? उन्होंने कहा कि यज्ञ मे जो अतिथि आयेंगे, मैं उनके चरणों को जल से स्पर्श करके आचमन करूँगा। मानव जितना भी गम्भीरता में, विवेक में चला जाता है उतनी ही उज्ज्वल उसकी प्रतिभा होती चली जाती है। मैं भगवान् कृष्णा की चर्चा करता चला जा रहा था।

वह कितने बड़े विज्ञान में रमण करते थे। कितना विज्ञान उनके समीप था? वह जानते थे कि पृथ्वी में क्या है, अन्तरिक्ष के परमाणु क्या कह रहे हैं। जो मानव विज्ञान के आश्रित हो करके वायु मण्डल की तरंगों को जानने लगता है वहीं तो संसार में विज्ञानवेत्ता कहलाया जाता है। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 5 मार्च, 1969)

याज्ञिक कृष्ण

एक मानव ही नहीं अपितु जितना भी प्राणी मात्रहै वह सर्वत्रएक याज्ञिक बना हुआ है, वह यज्ञ करने के लिए आया है। याग का अभिप्रायः यह है, मानव के लिए ऋषि-मुनियों ने पांच प्रकार के यज्ञों का चयन किया। जैसे प्रथम ब्रह्म याग कहा जाता है, द्वितीय यज्ञ का नाम देवयज्ञ है, तृतीय का नाम अतिथियज्ञ है और चतुर्थ का नाम बलिवैश्वयज्ञ और पंचम का नाम भूतयज्ञ माना गया है जिसको हम पितृयज्ञ भी कहते हैं। ये पांच प्रकार के यज्ञ हमारे यहां परम्परा से ही वैदिक साहित्य में निहित हैं।

सबसे प्रथम ब्रह्मयाग हैं पति-पत्नी एक स्थान में विराजमान हो करके प्रातःकाल ब्रह्मयज्ञ करते हैं। ब्रह्म का अभिप्रायः है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। ब्रह्म की आभा को, ब्रह्म की सृष्टि को जानना। ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्मयज्ञ है। द्वितीय याग का नाम देव पूजा कहा जाता है जिसे देवयज्ञ कहते है। हमारे यहां दो प्रकार के देवता कहलाते है, एक जड़ देवता है और दूसरे चैतन्य देवता होते है। देवपूजा का अभिप्रायः क्या है कि हम देवपूजा करे। पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना, उनको क्रिया में लाना। प्रातःकाल में मानव याग करता है, द्वापर काल में युधिष्ठर जैसे प्रातःकाल में देव यज्ञ करते रहे हैं।

भगवान् कृष्ण जब प्रातः काल होता तो यज्ञ करते रहते थे। वे

दोनों पति-पत्नी यज्ञ करते रहते थे। आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूंगा। यह यज्ञ है, इसको करना हमारा कर्त्तव्य है। यज्ञ में जाना हमारा देवत्व पूजन है यह देवपूजा कहलाती है। (यागमयी साधना, चित्तसौना, 24 मई, 1976)

भगवान् कृष्ण प्रातः सायंकाल यज्ञ करते थे। इतना सुन्दर यज्ञ होता था कि जब वे प्रातः और सायंकाल अपनी वचनावली से अमृत का पान कराते थे तो पक्षीगण भी मौन हो जाते थे। मुझे स्मरण है बेटा! एक समय वह यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ के पश्चात् उन्होंने परमाणुवाद पर विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया। जो यज्ञ में से परमाणुवाद उत्पन्न हुआ, उन परमाणुओं पर अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। नाना प्रकार के यन्त्र, नाना प्रकार की वैज्ञानिक सामग्री भी उनके द्वारा रहती थी। उसी से वह उसका अध्ययन करने लगे। मुनिवरो! देखो, वह ''यज्ञं ब्रह्म व्यापः'' क्योंकि यज्ञ जिसमें संसार का साकल्य जब ओत-प्रोत किया जाता है, तो वही साकल्य यज्ञ वेदी को सुन्दर बना देता है। भगवान् कृष्ण एक समय यज्ञ पर अध्ययन कर रहे थे, उनकी धर्म देवी रुक्मिणी भी आ गई। उन्होंने कहा प्रभु! आप यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा देवी! मैं इस यज्ञ पर विचार विनिमय कर रहा हूँ, जो मैंने प्रातः सुगन्धि की है उस सुगन्धि में कितनी तरंगों है और उनकी कितनी गति है इसका मैं अध्ययन कर रहा हूँ। उन्होंने (रुक्मिणी) कहा प्रभु! यह भी कोई विचार है? इनका

अध्ययन करने से आपका क्या बनेगा? मैं यह जानना चाहती हूँ कि मेरे इस हृदय में, मेरे इन विचारों में कितनी तरंगें होती होंगी? उन्होंने कहा देवी! तुम्हारे हृदय में यह जो तरंगें हैं, इनका भी निवारण किया जा सकता है। इनकी भी गणना की जा सकती है, यदि इन वाक्यों में अभिमान नहीं होगा। जब तक अभिमान नहीं होगा तब तक तुम यज्ञ स्वरूप को जान नहीं पाओगी। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! रुक्मिणी मौन हो गई, उनके चरणों में ओत-प्रोत होकर के उस समय उसका हृदय इतना परिवर्तन हो गया कि वे स्वयं पति के समीप विराजमान होकर के यज्ञ करती थीं और यज्ञ करते हुए रात्रि-रात्रिव्यतीत हो जाती थीं। यज्ञ के अनुसंधान के विचार विनिमय करने वाला ही महान् होता है बेटा! पति-पत्नी का सुन्दर यज्ञ होता है। गृह को सुन्दर उसी काल में बनाया जाता है जब पति-पत्नी यज्ञ के ऊपर, उसके परमाणुवाद के ऊपर सामग्री साकल्य पर नित्य प्रति विचार विनिमय करते हैं। विचार और सुगन्धि जब दोनों का मिलान होता है दोनों का समन्वय होता है, तो बेटा! वह एक महान यज्ञ होता है। उसकी महानता का वर्णन नहीं किया जाता। (सोलहवाँ पुष्प, कृष्णानगर, दिल्ली, 16 अक्टूबर, 1971)

परमात्मा ने देखो, ब्रह्मा बन करके इस संसार रूपी यज्ञ के कर्मकाण्ड को बना दिया जो आज तक चले आ रहे हैं और उस काल तक रहेंगे जब तक यह सृष्टि रहेगी। इसी प्रकार आज हमें

यज्ञ के कर्मकाण्ड में इस प्रकार संलग्न हो जाना है कि आज हम जो यज्ञ का विधान बना लेंगे वह संसार में अमर रहे। जिस प्रकार परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य रूपी प्रकाश दिया और तब से यह प्रकाश चलता आ रहा है और उस काल तक चलता रहेगा जब तक यह संसार रहेगा। इसी प्रकार आज हमें भी वह यज्ञ करना है। आज से पूर्व काल में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यज्ञ ऐसा सुन्दर करो, ऐसी आन्तरिक भावनाओं से करो कि जिससे तुम्हारा मिलान उस परमपिता से हो जाए। जिस प्रकार परमात्मा ने सृष्टि रूपी यज्ञ वेदी को उत्पन्न किया है उसी प्रकार आज तुम भी भौतिक यज्ञ को उत्पन्न करों जिससे ज्ञान और विज्ञान की प्रेरणा मिलती है। मुनिवरो! देखो, भगवान् कृष्णा ने महारानी रुक्मिणी से यज्ञ के सम्बन्ध में क्या शब्दार्थ कहे?

यज्ञ मनुष्य का क्या से क्या कर देता है। भगवान् कृष्णा से महारानी रुक्मिणी ने एक समय प्रश्न किया कि यह जो यज्ञ आप करते है वह क्यों करते है? इससे आपको क्या लाभ है? भगवान् कृष्णा ने कहा ''हे देवी! मैं जो इस यज्ञ को कर रहा हूँ मैं चाहता हूँ, कि मेरा मिलान परमात्मा से हो जाए। मेरी जो आन्तरिक भावना है, आन्तरिक जो तरगें है वह परमात्मा से प्रेरित हो। परमात्मा से सहायता लेकर संसार का कार्य त्यागपूर्वक करता चला जाऊँ। यह जो यज्ञशाला है, यह त्याग की भावना देती है। मुझे यज्ञशाला में

विराजमान हो करके कैसा त्याग मिलता है? जब होता और यज्ञमान धृत आदि अग्नि मे त्यागते है तो उन्हें ज्ञान नहीं होता कि तूने जो त्याग किया है उसका फल क्या होगा? हे देवी! आज मैं यज्ञ कर रहा हूँ परन्तु त्याग भावना से। हमने धृत, सामग्री आदि की जो अग्नि में आहुति दी, अग्नि सबका त्याग कर देती है और उन्हें अन्तरिक्ष में रमण करा देती है उसको देवता ग्रहण करते है। देवता उसको पान करके हमारे लिए सुख की वृष्टि करते है। यज्ञ हमें त्याग देता है, यज्ञ हमें अच्छी आत्मिक भावनाएं देता है। इस भौतिक यज्ञ के साथ हमें आत्मिक यज्ञ भी करना है। (सातवाँ पुष्प, सरोजनी नगर, 7 नवम्बर, 1963)

एक समय भगवान् कृष्ण ने एक वाक्य बहुत ऊर्ध्वा में कहा था, जब उनकी पत्नी ने कहा प्रभु! जब आप दर्शनों को जानते हैं तो आप सूक्ष्म कर्म क्यों करते हैं? सूक्ष्मवार्ता में उन्होंने एक वाक्य रुक्मिणी से कहा था कि हे देवी! जिस कार्य को मैं कर रहा हूँ उस कार्य को जब साधारण समाज बरतने लगता है, तो उसकी रूढ़ियाँ समाप्त हो जाती है। (इकतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 18 मार्च, 1979)

भगवान् कृष्ण बाल्यकाल से ही याग करते रहते थे। हमारे यहां यागों की परम्परा, यागों का चलन परम्परागतों से ही रहा है। भगवान् कृष्ण ने एक समय अपनी देवी रुक्मिणी से यह कहा, कि हे दिव्यासे! आओ, हम कुछ अनुसन्धान करेंगे। वह अनुसन्धान करने के

लिए तत्पर हुए। जब वह अनुसन्धान करने लगे तो नाना प्रकार के यागों का चलन उनके समीप आया। नाना प्रकार के यागों का जो कर्मकाण्ड है, उनकी जो क्रमिका है वह उन्हें स्मरण आयी। स्मरण आते हुए वह उसके ऊपर विचार-विनिमय करने लगे। वेद पाठ में 'याग त्रिवर्धना अस्वते' ऐसा कही शब्द आया तो महाराजा श्री कृष्ण ने कहा कि हे देवी! यह वेद का मन्त्र क्या कह रहा है? तो वह बोली प्रभु! ऐसा प्रतीत होता है ''यागां ब्रह्मे त्रिवर्धस्तां ब्रह्मे'',। जैसे याग में त्रिवर्धा का वर्णन आ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस त्रिवर्धा याग का यहाँ प्रकरण है। त्रिवर्धा में यह जो संसार है जैसे यह तीनों गुणों के अन्तर्गत गति कर रहा है। मूल मे तीन गुण है, तीनों के गर्भ में यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। यह तीन गुण कौन से है? रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण। इसी प्रकार याग भी त्रिवर्धा होना चाहिएं। (याग व औषधि विज्ञान, जोरबाग, नई दिल्ली 21 अक्टूबर, 1982)

भगवान् कृष्ण याग करते रहते थे। भगवान् कृष्ण का याज्ञिक जीवन एकमहत्ता में रहा है। उन्होंने कहा है कि अन्तरिक्ष में यही यज्ञ के परमाणु ओत-प्रोत हो जाते हें और अन्तरिक्ष में इन परमाणुओं से ही वायुमण्डल भी एक महत्ता की ज्योति में परिणत हो जाता है। (तैतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 20 मार्च, 1983)

मुनिवरो! भगवान् कृष्ण अपने आसन पर विराजमान हो, हर

समय मग्न रहते थे और वेद मन्त्रों के गोपनीय विषयों को विचारते रहते थे। उसके ऊपर अनुसन्धान किया करते थे और अनुसन्धान करते-करते प्रकृति पर शासन कर लेते थे। मुनिवरों! भगवान् कृष्णा प्रातःकाल में जब अन्तरिक्ष में तारा मण्डलों का प्रकाश रहता था, उस समय अपने स्थान को त्याग देते थे और गायत्री छन्दों का पाठ किया करते थे, माता गायत्री का पाठ किया करते थे। उसके पश्चात् याग करते थे और यज्ञ के ऊपर अनसुन्धान किया करते थे कि जिस सुगन्धिदायक औषधि की यज्ञशाला में, अग्नि में आहुति दी है वह सूक्ष्म रूप बन करके कहाँ चली गई, उसका परिणाम क्या होगा? अन्त में उस विज्ञान को जानते हुए कि यह जो सुगन्धिदायक औषधि मैंने अग्नि में प्रविष्ट की है सूक्ष्म रूप बन करके अन्तरिक्ष में रमण करने लगी, अन्तरिक्ष से वह सुगन्धि कहाँ जाती है? मुनिवरों! भगवान् कृष्णा का यह अनुसन्धान किया हुआ है कि वह सुगन्धि आदित्य तक जाती है और उससे मानव की जो भी इच्छायें होती हैं, जो-जो कल्पनायें होती है वह प्रत्येक आहुति के द्वारा अन्तरिक्ष में जाती है और पुनः वह सुगन्धि संसार में आ जाती है। भगवान् कृष्णा ने अनुसन्धान करते-करते यह जाना कि जो भी मैं प्रक्रिया करता हूँ इसका क्या अभिप्राय है? मैंने 'जलं पवित्रां भवनेति' मैंने जहाँ जल को स्थापित किया वहाँ सब ही देवता विराजमान है, वायु भी है, अग्नि भी है, जल भी है, और पृथ्वी भी है अब मैं इनमें से कौन-कौन

सी वस्तुओं को जान सकता हूँ।

यथार्थ आर्य

आर्य उसको नहीं कहते जो अभिमानी बन जाए, जो अपनी बुद्धि से बढ़कर किसी की बुद्धि को न माने, दूसरों की निन्दा करने वाले को आर्य नहीं कहते। आर्य उसे कहते हैं जो यथार्थता को पान करने वाला हो। जो यथार्थ को लेकर चलता है वह संसार में आर्य कहलाता है, वह महान् कहलाता है। वह संसार में ऊँचा बन सकता है गम्भीर बन जाता है अमोध हो जाता है। यह नहीं कि आज हम वेद की पोथी की पोथी को जानकर ही आर्य बनेगे, वेद के एक वेद मन्त्रको जानने वाला भी यथार्थ आर्य बन सकता है। (दसवाँ पुष्प, करोलबाग, नई दिल्ली, 26 जुलाई, 1963)

जो ऋणों से उऋण होने का प्रयत्न करता हो उसी को यहाँ आर्य कहा जाता है। आर्य उसको नहीं कहा जाता जो दूसरों की त्राटियों देखने वाला हो, जो दूसरों की निन्दा करने वाला हो, दूसरों के अवगुणों को देखने वाला हो। आर्य उसको कहा जाता है जो शुद्ध और पवित्रहोता है जिसका जीवन वास्तव में सुन्दर होता है। जो अपनी मर्यादा की रक्षा करता है। भगवान् कृष्ण यथार्थ आर्य थे जो अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले थे। आर्यत्व का यह उपदेश हमें सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता परमात्मा ने वेद रुपी ज्ञान द्वारा दिया और कहा कि यथार्थ आर्य वह है जो वेदों के अनुकूल अपना जीवन

बनाने वाला हो। (दसवाँ पुष्प, करोलबाग, नई दिल्ली, 26 जुलाई 1963)

षोडश कलाधारी

श्री कृष्णा सोलह कलाओं को जानते थे। षोडश कलाएँ क्या होती है? जो षोडश कलाओं को जानता है वह ज्ञान में पारंगत होता है मैंने तुम्हें एक समय वर्णन कराया था कि षोडश कलाएँ क्या होती हैं? बेटा! सबसे प्रथम देखो, प्राची-दिग्, दक्षिण-दिग्, प्रतीची-दिग्, उदीची-दिग् यह चार कलाएँ मानी गयी हैं। द्वितीय स्थान में पृथ्वी-कला, वायु-कला, अन्तरिक्ष-कला और समुद्र-कला चार कलाएँ यह हैं और तृतीय स्थान में सूर्य-कला, चन्द्र-कला, अग्नि-कला और विद्युत्-कला-चार कलाएँ यह थीं। उसके पश्चात् मन-कला, चक्षु-कला, श्रोत्रा-कला और घ्राण-कला जिनको जानने के लिए भगवान् कृष्णा सदैव तत्पर रहते थे। यह षोडश कलाएँ कहलाई जाती हैं जिनको भगवान् कृष्णा अच्छी प्रकार जानते थे। इसीलिए योग में उनकी इतनी गति थी और राष्ट्रीय विधान में भी उनकी प्रगति महान् विशाल रहती थी। जो षोडश कलाओं को जानने वाला महापुरुष होता है वह इस संसार में महान् कहलाया जाता है। आज हमें उन महान् विचारों को विलक्षण बनाना है जिससे हमारा जीवन उन्नत बनने के लिए तत्पर होता चला जाए।

मुनिवरो! भगवान् कृष्णा इन षोडश कलाओं को जानकार

नित्यप्रति इनकी साधना के साधक रहते थे और राष्ट्रीय विधान में भी राष्ट्रवेत्ता रहते थे। प्रातःकाल में जब रात्रि रहती थी, तारामण्डल अपना प्रकाश लिए हुए होते थे, रात्रि के गर्भ में उस समय अपने स्थान को त्याग देना और चिन्तन करना, निधिध्यासन करना, यौगिक प्रक्रियाओं पर विचार-विनियम करना, विशालता को विचारना। जैसे प्राची-दिग् है, दक्षिण-दिग् है, प्रतीची-दिग् है और उदीची-दिग् है, इन चारों दिशाओं को वह जानने का प्रयास करते रहते थे, उनमे कितना व्यापकवाद है, एक-दूसरी दिशा में कितनी सुगठितता है। जैसे पृथ्वी है, इसमें कितना, खनिज है, खाद्य है, और वायु में कितनी तरंगें हैं, कितने वेग से भ्रमण करती हैं, किस-किस समय में क्या-क्या कार्य करती हैं यह सब विचार-विनिमय करना उनका कार्य था। समुद्र को जानने का प्रयास करते रहते कि समुद्र में कितने प्रकार के प्राणी रहते है, किस प्रकार से उसका उत्थान होता है। यह सब कुछ जानने का प्रयास करते रहते थे। इन बारह कलाओं को जानने के पश्चात् वह जानते थे कि हम इन बारह कलाओं के ऊपर संयमी कैसे बन सकते हैं। उन्होंने अपने विचारों की एक लेखनी बद्ध की थी। मुझे स्मरण है उन्होंने कहा था यदि हम अपनी चारों कलाओं को अच्छी प्रकार नहीं जानेंगे, तब तक इन पर संयम कर नहीं पायेंगे। वह चारों कलाएँ कौनसी है? सबसे प्रथम मनकला, चक्षु-कला, श्रोत्रा-कला और घ्राण-कला इन चारों कलाओं का ज्ञान होने के पश्चात् हम संसार में

ब्रह्मवेत्ता, विज्ञानवेत्ता बन, भौतिक और आध्यात्मिक दोनों विज्ञान में विशालता को प्राप्त हो सकते हैं। इन सब कलाओं को जानने वाला संसार में एक महान् योगी कहलाता है। किस प्रकार का योगी? जैसे आज कोई यह उच्चारण करने लगे कि मैं चन्द्रमा में, मंगल में और बृहस्पति में जाने वाले मन्त्रों का निर्माण करना चाहता हूँ तो ऐसे महापुरुष षोडश कलाओं का जानने वाले होते हैं, जो अन्तरिक्ष में भ्रमण करते है। क्योंकि इन षोडश कलाओं में से ही परमाणुओं की उद्बुद्धता होती रहती है। परमाणुओं की उद्बुद्धता होने के नाते ही भिन्न-भिन्न प्रकार के परमाणु उत्पन्न होते रहते हैं। उन परमाणुओं को सुगठित करना यह सब महापुरुषों का कर्त्तव्य होता हैं इन परमाणुओं पर उनका आधिपत्य हो जाता है। आधिपत्य हो जाने के पश्चात् वह भौतिकवाद हो चाहे आध्यात्मिकवाद हो, उनमें अधूरापन किसी काल में भी रह ही नहीं सकता। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, दिल्ली 4 सितम्बर, 1969)

सत्यकाम और षोडश कला

मेरे प्यारे! भद्र पुरुषों! आज मुझे षोडश कलाओं के सम्बन्ध में एक गाथा स्मरण आती चली जा रही हैं जिसे मैं पुनः से प्रकट करना चाहता हूँ। मुनिवरों! तुमने श्रवण किया होगा कि हमारे यहाँ एक जाबाला नाम की माता थी। जाबाला बड़ी तपस्विनी, त्यागनी, उत्तम ब्राह्मणी थी। उसका हृदय सदैव उदारता में परिणत रहता था।

महान् आत्माओं का उसे बड़ा ध्यान रहता था उसके हृदय में सदैव महानता पवित्रता और ब्रह्म ज्ञान की ज्योति प्रदीप्त रहती थी। जाबाला का एक ही पुत्रथा जिसका नाम सत्यकाम माना जाता है। सत्यकाम जब बारह वर्ष का हुआ तो उसने एक समय उसने अपनी माता के चरणों को छू-कर कहा कि ''हे मातेश्वरी! मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं पवित्रशिक्षा को पान करने के लिए गुरु के द्वार पर जाना चाहता हूं।'' उस समय माता ने कहा ''हे पुत्रा! मैं बड़ी सौभाग्यशालिनी हूं कि आज मेरा पुत्रब्रह्म ज्ञान के लिए जा रहा है।'' सत्यकाम ने माता के चरणों को छू-कर अपने स्थान से प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए वह महर्षि गौतम के आश्रम में जा पहुँचे। महर्षि गौतम ने उनका बड़ा आदर किया।

मध्यम काल का समय था महर्षि गौतम सत्यकाम से बोले कि ''ब्रह्मचारी! तुम मेरे द्वारा क्यों आए हो'' उन्होंने कहा कि ''प्रभु मैं शिक्षा अध्ययन करने के लिए, ब्रह्म ज्ञान को पाने के लिए आया हूँ।'' आचार्य ने कहा कि ''हे ब्रह्मचारी! तुम्हारा गोत्रक्या है?'' सत्यकाम ने कहा कि ''प्रभु! मुझे तो अपने गोत्रका ज्ञान नहीं है।'' महर्षि गौतम ने कहा कि ''भई, मैं तुम्हारा वरण कैसे कर सकता हूँ?'' जाओ, अपनी माता से यह प्रश्न करो कि मेरा गोत्रक्या है? इसके पश्चात् तुम शिक्षा के अधिकारी हो सकते हो। सत्यकाम ने आचार्य के चरणों को छू-कर माता जाबाला के स्थान को प्रस्थान किया। जाबाला के समीप

पहुंच कर बोले, ''माता! आचार्य ने कहा है कि हे पुत्रा! तुम्हारा गोत्रक्या है? मैं अपना गोत्रजानने के लिए आया हूं।'' उस समय माता ने कहा ''हे बालक! मैंने बहुत महापुरुषों की सेवाएं की हैं। नाना महापुरुषों की सेवाओं से मैंने एक महान् पुत्रको जन्म दिया है। इसलिए पुत्रमुझे तुम्हारे गोत्रका ज्ञान नहीं है।

सत्यकाम ने माता को नतमस्तक हो करके प्रस्थान किया और महर्षि गौतम के आश्रम में जा पहुँचे। महर्षि गौतम ने कहा ''बोलो, ब्रह्मचारी! तुम्हारा गौत्रक्या है?'' उस समय सत्यकाम ने कहा ''हे प्रभु! मेरी माता ने कहा है कि मैंने नाना महापुरुषों की सेवाएँ की हैं मुझे तुम्हारे गोत्रका ज्ञान नहीं हैं महर्षि प्रसन्न हो करके बोले, अरे ब्रह्मचारी! तू कितना सत्यवादी है, तेरी माता कितनी सत्यवादी है। सत्य उच्चारण करने में न मान हैं, न अपमान है। अरे ब्रह्मचारी! तुम तो ब्राह्मण हो। तुम्हारा वर्ण ब्राह्मण का हो चुका है। अब महर्षि गौतम ने विचारा कि इस ब्रह्मचारी को तूने ब्राह्मण तो उच्चारण कर दिया परन्तु ब्राह्मण के कर्म इसमें हैं अथवा नहीं इस पर विचार-विनिमय होना चाहिए।

ऐसा कहा जाता है कि रात्रिका समय समाप्त हो गया, प्रातःकाल हुआ, महर्षि गौतम के द्वार सत्यकाम जी आए। ब्रह्मचारी ने नतमस्तक होकर कहा ''प्रभु मेरे लिए कोई कार्य दीजिए।'' उस समय महर्षि गौतम ने कहा ''हे ब्रह्मचारी! मेरे आश्रम से चार सौ

गऊओं को ले जाओ। जब तक यह एक सहस्त्र न हो जाये, तब तक तुम मेरे आश्रम में प्रविष्ट नहीं होना।'' सत्यकाम ने इस बात को स्वीकार कर लिया और नतमस्तक होकर कहा ''बहुत सुन्दर है।'' चार सौ गऊओं को लेकर के भयंकर वन को प्रस्थान किया। नित्यप्रति संध्या, उपासना, मार्जन, तर्पण, यज्ञ-कर्म करते हुए ब्रह्मचारी उन गऊओं की रक्षा करता रहा। जब गऊएँ एक सहस्त्र हो गई तो एक प्रातः जब वह मार्जन तर्पण करने के पश्चात् जब यज्ञशाला में साकल्य की प्रथम आहुति देना चाहते थे तो कहते हैं कि उन गऊओं में से एक विरख (वृष) आए और कहा, ''हे ब्रह्मचारी! अब हम एक सहस्त्र हो गए हैं, अब गुरु के आश्रम को प्रस्थान किया जाये। सत्यकाम बड़े प्रसन्न हो गए और कहा कि अच्छा, भगवन्! चलिए।''

दिशाओं की चार कलाएँ

जब प्रस्थान करने लगे तो सत्यकाम से उस विरख ने कहा ''हे बालक! मैं तुम्हें चार कलाओं का ज्ञान कराए देता हूँ। प्राचीदिग्, दक्षिणी दिग्, प्रतीची दिग् और उदीची दिग् यह चार कलाएँ हैं। इन चार कलाओं का ज्ञान तुम्हारे द्वारा होना चाहिए। प्राची दिग् कहते हैं पूर्व दिशा को, दक्षिणी दिग् कहते हैं दक्षिण दिशा को, प्रतीची दिग् कहते हैं पश्चिम को और उदीची दिग् कहते हैं उत्तरायण को। यह चार दिशाएँ ही चार कलायें है। इन चारो दिशाओं का ज्ञान होना

बहुत अनिवार्य कहा जाता हैं। ब्रह्मचारी ने उन वाक्यों को श्रवण कर लिया। रात्रिछा चुकी थी। आसन पर विराजमान हो, चिन्तन होने लगा कि यह जो पूर्व दिशा हैं यह क्या है, दक्षिण क्या है, पश्चिम और उत्तरायण क्या है जब विचार-विनिमय होने लगा तो विचारा कि पूर्व दिशा से हमारे लिये प्रकाश का उदय होता है, सूर्य का उदय होता हे, प्रकाश आता है, नवीन जीवन प्रसारण हो जाता है, आनन्द बिखरता है उस आनन्द को हम पान किया करते हैं, उसी आनन्द को पान करके हमारा जीवन एक महानता में परिणत हो जाता है।

दक्षिण दिशा में क्या होता हैं? दक्षिण में भी वह प्रभु रहता है। संसार की सुन्दरताएँ विराजमान रहती हैं। आज जब हम यह विचारते हैं कि मानव का जीवन भी दक्षिण दिशा के तुल्य रहता है, अन्धकार भी आता है तो पूर्व दिशा से प्रकाश भी आता रहता है। दक्षिण दिशा से मानव को उत्सव प्राप्त होता है, जीवन प्राप्त होता है। आज वास्तव में हमें दक्षिण दिशा पर मन्थन करना चाहिये।

उसके पश्चात् उन्होंने विचारा प्रतीची दिग्। वह जो पश्चिम दिशा है इससे हमारे लिए अन्न की वृष्टि होती है, पृथ्वी में ओज आता है, तेज आता है, वनस्पति के योग्य हो जाती है। पश्चिम दिशा और पूर्व दिशा दोनों के गठित होने पर सुन्दर वृष्टि होने लगती है। उस वृष्टि से महान् सुन्दर से सुन्दर वनस्पतियों का जन्म होने लगता है। आज हम उन्हीं वनस्पतियों को जानने वाले बनें। जो अन्न उत्पन्न होता है

उस अन्न को हम पान करते हैं, उस अन्न से ओज और तेज की उत्पत्ति होती है, उसी से मज्ञा आता है इसी प्रकार मानव के जीवन का कितना सम्मिलान है, कितना वह पश्चिम दिशा से सुगठित रहता है यह आज विचारा जा सकता है अनुसन्धान किया जा सकता है।

ब्रह्मचारी सत्यकाम ने जब इसके ऊपर विचार-विनिमय किया तो उनका जीवन और भी महानता में परिणत होने लगा। सत्यकाम ने उसी काल में विचार कि अब उत्तरायण आता है। उत्तरायण दिशा में दक्षिणी अग्रणी होने से शनि का प्रादुर्भाव होता है। शनि हमारे यहां कहते हैं ज्ञान को। ज्ञान की ज्योति को ''शनिश्चराय नमः अवृत'' कहते हैं जिससे महान् ज्ञान उत्पन्न होता हैं, अलंकारक कृति होती है, उसी को हम शनि स्वाहा कहते है। उत्तरायण में उसका वास रहता है। आज उत्तरायण कला को जान लेना चाहिए। उत्तरायण दिशा से जब महापुरुष उदय होते हैं तो उसी में वह अपना जीवन त्याग देते हैं। महाभारत काल में आता है कि महाराजा भीष्म जब मृत्यु शैय्या पर विराजमान थे, वाणों की शैय्या पर विराजमान थे, तो उस समय उन्होंने यह संकल्प किया कि जब उत्तरायण में सूर्य हो आ जायेगा तो उस समय मुझे अपने शरीर को त्यागना है। इसकी एक रूपरेखा यह मानी जाती है। द्वितीय इसकी रूपरेखा यह भी मानी जाती है कि उत्तरायण कहते हैं प्रकाश को, दक्षिणायन कहते हैं अन्धकार को। अन्धकार और प्रकाश दोनों आते रहते हैं। दोनों में

संघर्ष होता रहता है।

महाभूत की चार कलाएं

उसी काल में ऐसा श्रवण किया गया है कि सत्यकाम को चारों कलाओं के ऊपर चिन्तन करते-करते जब प्रातःकाल हो गया तो उन्होंने गऊओं को लेकर के अपने आसन से प्रस्थान किया। जब प्रस्थान करने लगे तो विरख ने कहा, "हे ब्रह्मचारी! चार कलाओं का ज्ञान मैंने कराया हैं, चार कलाओं का ज्ञान तुम्हें वायु देवता करायेंगे।" सत्यकाम बड़ा हर्षित हुआ। अन्धकार छा गया और गऊएँ स्थिर हो गयीं। सत्यकाम ने स्नान किया, मार्जन और तर्पण किया। इसके पश्चात् जब वह अग्नि में आहुति देने लगे तो कहते हैं कि उसी यज्ञशाला में वायु देवता का जन्म हो गया। वायु देवता को सत्यकाम ने नतमस्तक होकर नमस्कार किया। वायु ने कहा कि "अरे सत्यकाम! आज मैं तुम्हें चार कलाओं का ज्ञान कराये देता हूं।" देखो, पृथ्वी कला, अन्तरिक्ष कला, समुद्र कला और वायु कला। तुम इन चारों कलाओं को जानने वाले बनो।

सबसे प्रथम यह पृथ्वी कला है। पृथ्वी पर हम जन्म लेते हैं अपने नाना संस्कार लेकर के, इस पृथ्वी मण्डल पर नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थो को जानने के लिए आते हैं। खाद्य और खनिज पदार्थो को जानना हमारे लिए उत्तम लक्ष्य होता है। इसी को जानने के लिये जीवन भर प्रयत्न करते हैं। अब सत्यकाम ने चिन्तन

करना प्रारम्भ किया कि यह पृथ्वी माता हमें खनिज पदार्थो को देती है। कैसे-कैसे सुन्दर खनिज हैं, कैसे-कैसे सुन्दर अन्न हैं जिन को प्रत्येक प्राणी पा करके अपने जीवन को पुलकित बनाता है, अन्वेषणी बनाता है और इस संसार-सागर से पार होने का प्रयास करता है। सत्यकाम ने निर्णीत किया कि इससे नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं, अन्न उत्पन्न होता हैं, खनिज उत्पन्न होता है उसको जो प्राणी पान करता है, उसके ऊपर अनुसन्धान करता है, वह मानव इस पृथ्वी का, गौ का स्वामी बन जाता है, उसके ऊपर उसका आधिपत्य हो जाता है।

उसके पश्चात् आगे द्वितीय कला का नाम अन्तरिक्ष कला है। वह अन्तरिक्ष है जिससे नाना प्रकार के वाक्य आते हैं। आज जो हम उच्चारण कर रहे हैं यह वाक्य अन्तरिक्ष में समाहित हो जाते हैं। आज संसार में तुम इस अन्तरिक्ष को जानने वाले बनों जिसमें मानव का शब्द नित्य रहता है, किसी काल में भी नष्ट नहीं होता। नाना परमाणु इसी में समाहित हो जाते हैं। इस शरीर को त्यागने के पश्चात् यह परमाणु भी अन्तरिक्ष में ही रमण करते हैं। यदि संसार में यह अन्तरिक्ष नहीं होता तो मानव एक भी शब्द उच्चारण नहीं कर सकता था। मानव नाना प्रकार के अन्न भक्षण करता है, नाना पदार्थो को पान करता है परन्तु वह कहाँ जाता है? अन्तरिक्ष में जाता है। अन्तरिक्ष ही उसको आहार करता है। अन्तरिक्ष ही उसको निगल

जाता है। इस अन्तरिक्ष पर मानव को बारम्बार अनुसन्धान करने की आवश्यकता है। हमारे शरीर में यदि अन्तरिक्ष नहीं होगा, इस भूमण्डल में अन्तरिक्ष नहीं होगा तो मानव का जीवन किसी भी काल में ऊँचा नहीं बनेगा। प्राणी मात्रका कर्त्तव्य है कि वह आज ''आ ब्रह्मे व्यायां रूद्राणां गतिनाश्चति सुप्रजाः'' आज हम वास्तव में इनके ऊपर विचार-विनिमय कर सकते हैं। हमारे यहाँ इन्द्रियवेत्ताओं ने ऐसा कहा है कि वाक् की रचना अन्तरिक्ष से होती है। अन्तरिक्ष का वास कहाँ रहता है? अन्तरिक्ष सम्बन्धी यन्त्रमानव के शरीर में कहाँ रहता है? मानव के शरीर में जो नाभिकेन्द्र है उसमें एक सुषुम्णा नाम का यन्त्रहै वही यन्त्रअन्तरिक्ष में से शब्दों को लेता है, उसी शब्द की रचना मन के द्वारा उदर नाभि-केन्द्र में हो जाती है। नाभि-केन्द्र से जब प्राण के साथ-साथ शब्द चलता है तो वही शब्द मानव की वाणी के द्वारा आ जाता है। मानव वाणी से उसी शब्द का प्रसार कर देता है।

इसके पश्चात् समुद्र कला हैं यह एक महान् कला है। उस महान् प्रभु ने जब यह संसार रचा, पृथ्वी मण्डल की रचना की तो उस समय समुद्र एक मेखला के रूप में रचा। पृथ्वी से जो विष का जन्म होता रहता है उसे यह जल अपने में निगलता रहता है, अमृत देता रहता है, जिस अमृत से मानव का जीवन इस पृथ्वी मण्डल पर संचालित होता रहता है। हे सत्यकाम! आज तुम इस महान् समुद्र को जानने वाले बनों। हमारे यहां कल्पना की जाती है कि जब

यज्ञशाला में ब्रह्मा इसका निरीक्षण करता है कि यज्ञशाला में मेखला है अथवा नहीं है। सुन्दर जल का पात्रहै अथवा नहीं। क्यों करता है? क्योंकि यही उस यज्ञशाला में समुद्र का रूप धारण कर लेता है। देखो, यज्ञशाला में, यज्ञवेदी से अशुद्ध परमाणुओं का जन्म होता है और सुन्दर परमाणुओं का भी जन्म होता है। अशुद्ध परमाणुओं को वही जल जो मेखला रूप में है, अपने में शोषण कर लेता है और सुन्दर परमाणु द्रव्य पदार्थो को वह देवताओं को अर्पित कर देते हैं। आज हम मेखला के रूप में समुद्र को दृष्टिपात किया करते हैं। आचार्यजनों ने कहा कि आज हम वास्तव में समुद्र को जानने वाले बनें। समुद्र में नाना सृष्टि हैं, नाना प्राणी इसमें वास करते हैं। क्यों वास करते हैं? क्योंकि वह अशुद्धता को निगलता रहता हैं। मानव को क्रोध आता हैं, उसका भी समुद्र से जाकर मिलान होता है। कामवासना में मानव जब अधिक तल्लीन होता है तो वह तरंगें भी अन्तरिक्ष में रमण करती हुई समुद्र से उनका मिलान होता है, उनमें जितना विष है उसको समुद्र अपने में शोषण कर लेता है।

चतुर्थ कला का नाम वायु है। वायु क्या करता है? वायु का स्वयं अपना कोई गुण नहीं होता। यदि उसमें जल के परमाणु आ जाते हैं तो वायु शीतल हो जाती है, यदि उसमें अग्नि के परमाणु आ जाते हैं तो वही वायु उग्र रूप धाण कर लेती है। इसी प्रकार हमें उस वायु देवता को जान लेना है। नाना प्रकार की वायु बन करके मानव के

अन्तरात्मा को भी घृति बना देती है। आत्मा जब शरीर को त्याग देती है तो सबसे प्रथम यह आत्मा अपने संस्कारों को ले करके वायुमण्डल में जाती है। वायु मण्डल में वायु के नाना प्रकार के क्षेत्रहोते हैं, उन क्षेत्रों में भ्रमण करती हुई यह आत्मा संस्कारों के साथ-साथ आवागमन के आवेशों में आती रहती है। यह सब वायुमण्डल कहलाया जाता है। वायु का क्षेत्रबड़ा विशाल है। वायु के क्षेत्रों में रमण करने के लिए योगी क्या-क्या प्रयत्न करता है? क्या-क्या अनुसन्धान करता है? वायु की तरंगों में भ्रमण करता रहता है, वही प्राण से संसार को गति देता है।

अग्नि से सम्बन्धित चार कलाएँ

इसी प्रकार प्रातःकाल हो गया। सत्यकाम ने गऊओं को लेकर के प्रस्थान किया तो वायु देवता ने कहा, हे सत्यकाम! चार कलाओं का ज्ञान अग्नि देवता करायेंगे। भ्रमण करते हुए सत्यकाम उस स्थान पर जा पहुंचे जहाँ सायंकाल को गऊओं को स्थिर होना था। गऊएं स्थिर हो गई और सत्यकाम ने अपना वही नित्य कार्य किया। स्नान किया, मार्जन किया, तर्पण किया और उसके पश्चात् यज्ञशाला में जब आहुति देने लगे तो कहा जाता है कि अग्नि देवता का जन्म हो गया और अग्नि देवता ने कहा, ''अरे सत्यकाम! तुम्हारे लिए मैं चार कलाओं का ज्ञान कराने आया हूँ।'' सत्यकाम ने कहा कि ''भगवन्! मैं तो बड़ा ही उत्सुक रहता हूं।'' उस समय उन्होंने कहा कि

चन्द्रकला, सूर्य-कला, विद्युत कला और अग्नि-कला यह चार प्रकार की कला हैं। तुम इनको जानने वाले बनों, यही चार कलाएँ संसार में महान् बना देती हैं। मानव को संसार-सागर से पार करा देती है। इन चारों का ज्ञान तुम्हारे लिए बहुत अनिवार्य है।

देवता तो शान्त हो गए और सत्यकाम ने रात्रिके समय चिन्तन प्रारम्भ किया। उन्होंने सबसे प्रथम चन्द्रमा पर चिन्तन किया। यह जो चन्द्रमा है यह क्या-क्या कार्य करता है। चन्द्र-कला में नाना प्रकार की कान्ति आती है। यह कृषक की भूमि में अमृत प्रदान करता हैं, माता के गर्भ में जो जरायुज होता हैं, जो प्यारा पुत्रहोता है, उस बालक को भी अमृत प्रदान करता है। वह अपनी किरणों द्वारा अमृत को बिखेरता रहता है। चन्द्र-कला को जानना बहुत अनिवार्य हैं कहीं चन्द्रमा की कान्ति इस प्रकार की शीतल होकर जाती है जहां रत्नों जैसी सुन्दर धातुओं का जन्म हो जाता है, यह पात बनाती है और सूर्य की इन्दु नाम की जो किरण आती है उस पात को शुष्क बनाती है और उससे नाना धातुओं का जन्म होता है। सूर्य से नाना प्रकार की किरणें उत्पन्न होती हैं उन किरणों की कान्ति जब संसार में आती है तो यह किरणें मानव के लिए नेत्रों का देवता बनकर मानव का स्वामित्व करने लगता है। नेत्रअपना कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। उनका क्षेत्रएक महान् मानवों में परिणत हो जाता है। वास्तव में सूर्य से सहस्रों किरणें उत्पन्न होती है। सहस्रों भगों वाला यह इन्द्र

कहलाता है परन्तु भग नाम किरणों का है। हे सूर्य कला! हे चन्द्र कला! तुम्हारा मानव के जीवन से कितना सम्बन्ध है। मानव जीवन से जब तुम्हारी कान्ति छूती है तो वह मानव धन्य, और कृतज्ञ हो जाता है।

इस प्रकार आगे उन्होंने मन्थन करना प्रारम्भ किया। विद्युत् कला के कौशल करने वाले वैज्ञानिक इस विद्युत् कला को जान लेते हैं। विद्युत् कहाँ बिखरी रहती है? अन्तरिक्ष में क्या, जलों में क्या, अग्नि में क्या, यह पृथ्वी पर भी बिखरी रहती है। विद्युत् एकत्रित करने के लिए नाना मन्त्रों को विराजमान किया जाता है। वास्तव में संसार की यह जो एक महान् कृति है यह सब विद्युत् में ही रमण करती रहती है। यदि संसार में विद्युत् नहीं होगी तो मानव कोई वाक्य उच्चारण नहीं कर सकेगा, राष्ट्र का पालन नहीं होगा, एक मानव का दूसरे मानव से मिलान नहीं होगा, एक लोक का दूसरे लोक से मिलान होकर संसार की प्रलय हो सकती है। इसलिए विद्युत् कला को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। हे महान् वैज्ञानिकों! आज तुम विद्युत् को जानने वाले बनों जिससे मानव सम्पदा और प्रकाश में रमण करता हुआ इस संसार से पार होता चला जाए।

इसी प्रकार आगे अग्नि-कला है। अग्नि-कला पर जब मानव अनुसन्धान करता है कि यह अग्नि संसार में कितने प्रकार की बन करके प्रदीप्त रहती है। एक अग्नि वह होती है जो गार्हपथ्य-अग्नि

कहलाती हैं, द्वितीय गृहपथ्य नाम की अग्नि हैं, तृतीय अग्नि का नाम आहवनीय नाम की अग्नि है और चतुर्थ नाम की अग्नि नाचिकेत नाम से प्रसारित की गई है और पंचम अग्नि वाग्रणि, षट्ठम अग्नि का नाम वैश्वानर है। यह नाना प्रकार के अग्नि के स्वरूप माने जाते हैं। एक अग्नि वह होती है जो ब्रह्मचारी के हृदय में प्रदीप्त रहती है, जिसे वह निगलता हुआ धन्य-धन्य हो जाता है, कृतज्ञ हो जाता है। ब्रह्मचारी अग्निहोत्रकरता है, ब्रह्मचर्य की रक्षा करता हुआ, ब्रह्म में विचरण करता है, ब्रह्म में समावेश हो जाता है। उसकी महानता उसे तरिंगत कर देती है। आगे जितना व्यवहार है पति-पत्नी में, पिता-पुत्रमें, पुत्री-पिता में, माता-पिता में, राजा और प्रजा में, एक-दूसरे लोक-लोकान्तरों में यह सब अग्नि-कला के कारण ही होता है। यदि तेज नहीं होगा तो संसार में ताप भी नहीं होगा, ताप नहीं होगा तो अन्न और किसी प्रकार की उत्पत्ति नहीं होगी। सबसे प्रथम यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाला ब्राह्मण अग्नि को प्रदीप्त करता है, उसके पश्चात् शाकल्य की आहुति देता है। यदि अग्नि न होगी तो शाकल्प भी नहीं होगा। इसलिए आज हमें विचार-विनिमय करना है और अग्नि-कला को जाना है, इस अग्नि-कला को जानते हुए हमें संसार-सागर से पार होना है।

शरीर से सम्बन्धित चार कलाएँ

चिन्तन करते हुए सत्यकाम को प्रातःकाल हो गया। गऊओं को

लेकर गुरु के आश्रम को प्रस्थान करने लगे तो अग्नि देवता ने कहा, हे सत्यकाम! तुम्हें अब चार कलाओं का ज्ञान आदित्य देवता करायेंगे, जिससे तुम कला-कौशल में परिपक्व होते चले जाओगे। उस समय ब्रह्मचारी ने गऊओं को रोककर भ्रमण किया। आनन्दपूर्वक चिन्तन चल रहा था। भ्रमण करते हुए वहीं सायंकाल हो गया। गऊएँ स्थिर हो गई। सत्यकाम ने नित्य कार्य प्रारम्भ किया। जब यज्ञशाला में प्रथम आहुति प्रविष्ट की तो कहते हैं कि आदित्य देवता का जन्म हो गया और आदित्य ने कहा कि अरे ब्रह्मचारी! मैं तुम्हें चार कलाओं का ज्ञान कराने आया हूं। उन्होंने कहा कि कराइये, भगवन्! उन्होंने कहा कि मन-कला, चक्षु-कला, श्रोत-कला, घ्राण-कला, इन चार कलाओं को तुम जानने वाले बनो।

सबसे प्रथम मन-कला है, आज हमें मन को जानना है। मन की परिक्रियायें हैं, मन का जो समावेश है, मन की जो धाराएँ है उनको जानने के लिए मानव को वास्तव में संकलन और संकल्पवादी बनना होगा। संसार में यह मन ही मानव को विभाजन पर ले जाता है। नाना प्रकार की मेरी माताएँ विराजमान हैं, उनमें माता भी हैं, भौजाई भी हैं, पुत्री भी है और पत्नी भी हैं और भी नाना प्रकार की माताएँ हैं। जब मानव गृह आश्रम में प्रविष्ट होता हैं तो परिचय देता है कि यह मेरी पत्नी हैं, यह मेरी भौजाई हैं, यह मेरी माता हैं, यह महा-माता हैं, यह नाना सम्बन्धी मेरा परिवार है। यह ज्ञान कैसे होता हैं?

यह उस मन-कला के आश्रित हो करके होता है। जितनी भी मानव के शरीर में विभाजन क्रिया होती है सबसे प्रथम में यह मन-कला है जो मानव को बहुत ऊँचा बना देती है। यह मानव को परमात्मा तक ले जाती है, परमात्मा के आँगन में इसका समावेश हो जाता है। इसकी प्रक्रियाएं, परिकौशलताएँ इसमें रमण करने लगती हैं। मन ही के कारण मानव एक-दूसरे का अपमान करता है और मन ही के कारण मानव लज्जित हो जाता है। इस मन को जानकर नाना प्रकार के उन क्षेत्रों में चला जाता है जहां मानव की अपकीर्ति होती हैं, अपने मानवत्व को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इसी प्रकार आज हम प्रभु का चिंतन करते हुए मानवता को मननशीलता बनाना चाहते हैं। यदि प्रत्येक मानव मननशील नहीं बनेगा तो यह धर्म का क्षेत्रभी नष्ट हो जाएगा। धर्म किसको कहते है? मानवता को ही धर्म कहते हैं। मानवता किसको कहते है? जिसका जीवन धर्म से पिरोया हुआ होता है।

द्वितीय कला का नाम चक्षु-कला है। चक्षुओं से ही मानव दृष्टिपात् करता है। इन्हीं चक्षुओं से माता को, भौजाई को, नाना सम्बन्धी कुटुम्ब को दृष्टिपात् करता है और राज्य प्रजा को नाना प्रकार से इन चक्षुओं से दृष्टिपात् करता है। जब हमारे यहाँ धर्म और अधर्म पर टिप्पणियाँ चला करती है, तो ऋषि-मुनि कहा करते हैं कि धर्म क्या है अधर्म क्या है? ऋषि कहते हैं "धर्मज्ञं ब्रह्मा, धर्मवान् घृणी,

धर्मज्ञं, सर्वाणिकृति दृष्टता'' कि धर्म वह पदार्थ है, जैसे नेत्रों की ज्योति किसी सौन्दर्य पदार्थ को दृष्टिपात् करने के लिए चलती है और यदि जैसी चली थी उसी प्रकार की है तो धर्म है। यदि वही नेत्रों की ज्योति सौन्दर्य को दृष्टिपात करके दूषित हो गई है तो वह अधर्म माना जाता है। इसलिए यह धर्म-अधर्म का निर्णय भी हमारी इस चक्षु-कला से होता है। यह दो चक्षुओं की ज्योति हैं, इसे हमें नियन्त्रण में करना है। इसको वास्तव में ज्ञान के क्षेत्र में बाध्य कर देना है, इससे मानव यह विचार विनिमय कर सकता है कि वास्तव में हमारे नेत्रों की ज्योति हमें पाप के क्षेत्र में भी ले सकती है। इसलिए हमें नेत्रों की ज्योति को जानना है।

इसके पश्चात् घ्राण कला है। घ्राण कला उसे कहते है जो गन्ध-सुगन्ध दोनों को ग्रहण करती है। उसी से मानव इस पृथ्वी-कला को जान लेता है। आज जितने भी वायु के परमाणु हैं, जल के परमाणु हैं, पृथ्वी के परमाणु है, वास्तव में यह घ्राण कला इनका प्रतिनिधित्व किया करती हैं।

इसी प्रकार उन्होंने आगे कहा है कि हम श्रोत्रकला को जानने वाले बनें, क्योंकि हम यथार्थ और भद्र शब्दों को श्रवण करते हैं, अशुद्ध वाक्यों को भी ग्रहण करते हैं। जब अशुद्ध वाक्यों को ग्रहण करते हैं तो हमारे श्रोत्रअशुद्धता को प्राप्त हो जाते हैं, और जब इन्हीं से शुद्ध, पवित्रवाक्यों का ग्रहण करते हैं तो यह हमारी कला बन

करके रहती है। इन्हीं श्रोत्रों से हम मान-अपमान के क्षेत्रमें चले जाते हैं। हम किसी पर आक्रमण करने से पूर्व अपने जीवन पर अनुसन्धान कर लें कि हमारी मानवीयता कितनी सुगठित हैं, सुदृढ़ है। हमें विचार करके इस संसार सागर में चलना है। इस संसार-सागर से पार होने के लिए हमें इन षोडश कलाओं को जानने के लिए सर्वत्रप्रयत्न करना है।

प्राची-दिग्, दक्षिणी-दिग्, प्रतीची-दिग् और उदीची-दिग् और पृथ्वी-कला, समुद्र-कला, अन्तरिक्ष-कला, वायु-कला, अग्नि-कला, चन्द्र-कला, सूर्य-कला, विद्युत्-कला, मन-कला, घ्राण-कला, चक्षु-कला और श्रोत्रा-कला, यह षोडश कलाएँ संसार में मानी जाती हैं। जो मानव इन्हें जान लेता है उसके समीप अज्ञान नहीं आता। वह विज्ञान के क्षेत्रमें अग्रगण्य बन जाता है, महान् बन जाता है। इसको जानने के लिए वास्तव में मानव को परिश्रम की आवश्यकता है। भगवान् कृष्ण का जीवन मुझे स्मरण है, वह सदैव इन षोडश कलाओं में रमण करते रहते थे, वह इन्हीं सोलह कलाओं को जानने वाले थे। भगवान् राम बारह कलाओं को जानते थे। इन कलाओं के ऊपर अपने जीवन का समावेश कर लेना ही इन षोडश कलाओं को जानना है। इसके बिना मानव का जीवन किसी भी काल में पवित्रनहीं होता। मानव जब अपने को इन षोडश कलाओं में रमण कर देता है, अनुसन्धान करता है तो उसी काल से उसका जीवन सुन्दरता में

परिणात होता चला जाता है।

सत्यकाम को जब देवताओं ने ज्ञान करा दिया तो उसका चिन्तन करते हुए वहीं प्रातःकाल हो गया। गऊओं को लेकर उन्होंने गुरु के आश्रम को प्रस्थान किया। गुरु के आश्रम में जा पहुंचे। महर्षि गौतम ने हर्षध्वनि के साथ ब्रह्मचारी का स्वागत किया और कहा "हे ब्रह्मचारी! तुम वास्तव में महान् ब्राह्मण हो। आओ, मैं तुम्हें ज्ञान करा दूं।" उस समय सत्यकाम ने कहा कि प्रभु! आप जो ज्ञान मुझे देना चाहते हैं वह ठीक है, परन्तु देवताओं ने मुझ पर इतनी ज्ञान-वृष्टि की है कि उसको आज मैं अपने हृदय में समाहित नहीं कर सकता। इसलिए प्रभु! मैं आपके चरणों में आया हूं कि मेरा कल्याण हो। परन्तु मेरा तो कल्याण हो ही गया, क्योंकि जिस शिष्य को देवताओं ने ज्ञान करा दिया हो वह शिष्य कितना सौभाग्यशाली है। सत्यकाम गुरु के चरणों को छू-कर उनके आदेशों को पान करने लगा।

आज वही ब्रह्मचारी संसार में ज्ञानी हो सकता है, पवित्रबन सकता है, जो गुरु के आदेशों का आचरण करता है। जो उनकी आज्ञाओं का पालन करता हुआ आगे चलता है तो वह ब्रह्मचारी वास्तव में ब्रह्मनिष्ठ हो जाता है, ब्रह्म का मनन करने वाला हो जाता है। वह ब्रह्मचारी महान् बन करके इस संसार सागर से पार हो जाता है। वही ब्रह्मचारी मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है, पवित्रबन जाता है। इसलिए उस प्रभु का चिन्तन करते हुए, उस प्रभु की महानता का

वर्णन करते हुए इन षोडश कलाओं को जिन्हें प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में रचा हैं, देवताओं ने जाना है, देवपुरुषों ने इनको अपने जीवन में धारण किया हैं, जिसके कारण उनका जीवन महान् कहलाया गया है।

हम षोडश कलाओं को जानने वाले बनें। इन सोलह कलाओं को जान करके मानव संसार में अवतारी कहलाता है। वास्तव में वह कलाओं के ऊपर मन्थन करने वाला, अन्वेषण करने वाला, चिन्तन करने वाला संसार में एक महान् पुरुष बन जाता है। हे मेरी प्यारी माता, जब तू जाबाला माता बन करके सत्यकाम को जन्म देती है तो तेरा जीवन कितना अग्रगण्य बन जाता है, तेरा नामोच्चारण महानता की वेदी पर विराजमान हो जाता है। (दसवाँ पुष्प, उज्जैन, 4 अप्रैल, 1964)

हमारे यहाँ वेदों में एक अलØ◌ार आता है और वह यह है कि देव और दैत्यों ने समुद्र का मन्थन किया और मन्थन के पश्चात् चौदह रत्न निकले। सृष्टि प्रारम्भ होते ही समुद्रों का मन्थन किया गया। जब हिरण्याक्ष दैत्य आए और उन्होंने पृथ्वी को अपने में धारण कर लिया तो यहाँ देवता आ पहुँचे और उन्होंने दैत्यों से संग्राम किया। हिरण्याक्ष को नष्ट कर कुछ दैत्यों को अन्तरिक्ष में पहुंचा दिया, कुछ को मृत्युलोक में पहुँचा दिया और कुछ को लोक-लोकान्तरों में पहुंचा दिया। यही देखो, समुद्र मन्थन हे। बेटा! मानव जब अपने संकल्पों

को प्रदीप्त करता है और उससे रत्नों की खोज करता है तो वह भी समुद्र मन्थन है। मानव के द्वारा कौन से रत्न है जिनकी खोज करनी चाहिए? मुनिवरो देखो! महाराज कृष्णा षोडश कलाओं को जानने वाले थे। मानव के हृदय में पाँच प्राण होते है, पांच कर्म इन्द्रियाँ, पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ और एक मन। यह सब सोलह कला होती हैं। योगेश्वर कृष्णा ने इन सबके विषय को जाना और मन को स्थिर करके उन रत्नों की खोज की जो परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में, समुद्र मंथन करके महान् विकास कर दिये थे। (तृतीय पुष्प, सरोजनीनगर, दिल्ली, 9 मार्च, 1962)

पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलाओं से प्रकाश दे रहा है। यह जो प्रकाश है यह सम्पन्न है, यह अमृत को बिखेर रहा है, इसी प्रकार मानव को अपनी सम्पूर्ण कलाओं को जानना है। मानव के द्वारा षोडष कलाओं को जानना हमारे यहां प्रकाशमय जीवन माना गया हैं षोडश कलाओं में ध्रुवा, ऊर्ध्वा, प्रसारणा, आकुंचन इत्यादि पाँच विषय प्रकृति के हैं, इन षोडश कलाओं में कुछ लौकिक कलाएँ हैं और कुछ आध्यात्मिक कलाएं हैं। प्राण और मन के अन्तर्गत यह षोडश कलाएँ आती है। इन षोडश कलाओं को जानना हमारा इस संसार सागर से पार हो जाना है। इनमें से कुछ वैज्ञानिक कलाएँ, परमाणु कलाएँ है, कुछ कलाएँ मानव को आध्यात्मिक क्षेत्रमें ले जाती है, उसे मृत्यु से विजयी करा देती है। (सत्ताईसवाँ पुष्प,

अमृतसर, 6 मई, 1976)

भगवान् कृष्ण जहाँ वह राष्ट्र के विषय में जानते थे, जहाँ वह दर्शनों के गम्भीर रहस्यों में गमन करते थे, वहीं वह विज्ञान की प्रतिभा को भी जानते थे। मुझे ऐसा स्मरण आता रहता है कि जब वह तपस्या में प्रवेश करते तो अपने जीवन का पचीकरण बना लेते थे। पचीकरण का अभिप्राय यह है कि हमारे मानव के शरीर में, हस्तों में, पचीकरण से, एक ही आभा दृश्य होती है उसी का निर्णय करते रहते हें। पृथ्वी, अग्नि, आकाश जल और गति अस्तोः वायु, यह अपने में गति करते रहते हैं अग्नि और पृथ्वी तत्व दोनों का मिलान करने से मानव के शरीर में जो पार्थिव तत्व हैं जिसे हम चित्त का मण्डल भी कहते हैं, अग्नि उसको तेजोमयी बनाती रहती है। दोनों के मिलान करने से मानव के शरीर में अग्नि और पार्थिव तत्त्वों का जब समन्वय होता है तो मन की स्थिति स्थिर होने लगती है। एक समय वह भयंकर वन में समुद्र के तट पर तपस्या करने के लिए गए, अपने में पचीकरण को लाने का प्रयास किया, जिसे हमारे यहाँ मुद्रिका कहते हैं। (तैतालिसवां पुष्प, बरनावा, 14 मार्च, 1983)

हठयोग का निषेध

राजाओं को मार्ग देने वाले वे ऋषि मुनि होते हैं, जो तपस्वी, होते हैं जो अपने मन और प्राण का समन्वय करना जानते है, ओ३म को अपनी आत्मा में स्थित करना जानते हैं। वहीं तो समाज को एक

मार्ग दे सकते है, विचित्रता प्रदान कर सकते हैं। परन्तु देखों, आज मानव प्रसन्न हो रहा है कि हमारे यहाँ एक महापुरुष तप रहा है। उसे मानो 12 वर्ष हो गये है, वह विश्राम भी नहीं कर रहा है, वह खड़ा ही रहता है, परन्तु देखो उसमें अवगुण कितने हैं उसको कोई नहीं दृष्टिपात् कर रहा है, अपनी अच्छाईयों के परमाणुओं को नष्ट कर रहा है, और वह समाज को और दूषित कर रहा है। भगवान् कृष्ण ने ऐसे तप का निषेध किया है, हम परम्परागतों से निषेध करते चले आए हैं, क्योंकि देखो, हमारे यहाँ तो यह है कि अध्ययन करना चाहिए, आत्म कल्याग के लिए, मानव का दर्शन होना चाहिए। जहाँ मानव का दर्शन होता है, वही मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाता है। क्योंकि ज्ञानी अपने में पवित्रकहलाता है। (इक्यावनवाँ पुष्प, बरनावा, 16 मार्च, 1986)

व्यक्तित्व

मुझे स्मरण है भगवान् कृष्ण की जीवन, उनका जन्म राजा कंस के कारागार में हुआ जहाँ राजा कंस के हृदय से एक वेदना जागृत हुई और वसुदेव ने कहा हे देवी! यदि हम इस कारागार में अपने सुन्दर पुत्रको जन्म दे सकते है तो बिना समय के उसकी मृत्यु कोई नहीं कर सकता। मेरे प्यारे! उन्होंने पुत्रको जन्म दिया। जब जन्म हुआ तो कारागार में जो कंस के द्वारपाल थे वे भी निद्रा में तल्लीन हो गए और रात्रिमें ही बालक माता यशोदा के गृह में पहुँच गया। तो

यह क्या है? यह माता-पिताओं का एक ऊँचा तप होता हैं रचाने वाला प्रभु है, परन्तु उसे जैसे द्रव्य प्राप्त होते हैं वैसी वह रचना किया करता है।

नाना प्रकार के भवनों में मानव का निर्माण नहीं होता। मानव का निर्माण होता है तो माता की भावनाओ से होता है, मानव का निर्माण होता है तो भयंकर वनों से होता है। भगवान् कृष्ण का निर्माण हुआ तो गुरुओं के आश्रम और भयंकर वनों में। अरे मानव को कहाँ जीवन मिलता है? जहाँ प्रकृति अपने श्रृंगार से सुशोभित है, जहाँ प्रकृति का श्रृंगार ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्य से परिपक्व कर देता है, जहाँ उसके जीवन की निधि प्राप्त होती है और जहाँ बेटा मानव से प्रकृति रुष्ट हो जाती है, प्रकृति निःश्रृंगार हो जाती है और मानव का बनाया हुआ श्रृंगार आ जाता है वहाँ मानव के निर्माण नहीं होते। (चौबीसवाँ पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 28 अक्टुबर, 1973)

नाग मंथन

जब पातालपुरी में एक रक्तमयी क्रान्ति उत्पन्न हुई तो उस रक्तमयी क्रान्ति में उनका जो राज्य और समाज था वह सब अस्तव्यस्त हो गया। समाज के प्राणी प्रत्येक राष्ट्रों में जा पहुँचे। मेरे पुत्रो! एक नाग जाति, एक नाग संप्रदाय का भारत की भूमि पर वास हुआ, उन्होंने यहाँ वास किया वे यहीं 'परिणात्थयानि वृष्यं बृही क्राष्यताः'', हम में वे सम्मिलित हो गये और उनके मिलान से उनकी

वृत्तिका हम मे परिणत हो गयी। द्वापर के काल में यहाँ नाग जाति बहुत समय तक वास करती रही। किन्तु द्वापर के काल में ही महाभारत काल से पूर्व जब यहाँ पुनः रक्तमयी क्रान्ति आई तो कुछ नाग संप्रदाय के प्राणी पुनः इस भारयस्तम (भारतवर्ष) में वास कर गये और एक कालीदह, एक स्थान में उन्हें नियुक्त किया और उसी में वे वास करते रहते थे। भगवान् कृष्णा ने उनका विलय, अपने में ही कर लिया वह यहां के समाज में अपनेपन को दृष्टिपात् करने लगे। नाग संप्रदाय का निवास कालीदह एक स्थान में था, जो पर्वतों की आभा में रमण करता रहता, उसी में वे वास करते थे। भगवान् कृष्णा विद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात, जब युवा हुए तो उस नाग संप्रदाय को उन्होंने अपने में परिणत किया। यहाँ प्राणी किसी भी राष्ट्र से आ जायें चाहे वे पातालपुरी से आ जायें, चाहे मंगल मण्डल से आ जायें उन सबका यहां विलय होता रहा है। (अट्ठावनवाँ पुष्प, दिल्ली गेट, 25 जनवरी, 1989)

आधुनिक काल में नाग संप्रदाय को एक सर्प स्वीकार करते है और वे कहते हैं कि भगवान् कृष्णा ने कालीदह में जा करके नाग का मंथन किया, उसको नाथा गया। जबकि हमारे यहाँ नाथने का अभिप्राय है कि उन्हें आश्रय देना। उनको अपने विचार देने का नाम उनका नाथन करना है। ये नाग कहाँ से आये थे? महाभारत काल में जिसे पातालपुरी कहते थे आधुनिक काल में उसे अमरीका नाम से

वर्णन किया जाता है। महर्षि कपिल मुनि महाराज अपने विद्यालय को जिस पातालपुरी में स्थित करते थे। वहीं से वे यहां आये थे, भगवान् कृष्ण ने कालीदह में जाकर के समुद्र के तट पर उन्हें अपनाने का प्रयास किया। महाभारत के काल मे पांडु को जब राजा बनाया तो उन्होंने भी भीष्म की आज्ञा का पालन करते हुए पातालपुरी में एक क्रान्ति उत्पन्न की, जो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराई। जब क्रान्ति आई तो वहाँ संप्रदायों का एक नृत्य बन गया, वहाँ महाभारत के काल में भी, वाममार्ग के काल में भी संप्रदायों का निर्माण हुआ और यह संप्रदायों का राष्ट्र बन गया। नाग संप्रदाय वहीं से भारत भूमि पर आया। भगवान् कृष्ण ने उसका अपने में नाथन किया, अपने में मिलान करने का प्रयास किया और वे सब मानव इसी देश और संप्रदाय में परिणत हो गये।

आधुनिक काल में ऐसा स्वीकार करते हैं कि भगवान् कृष्ण ने चार या पांच वर्ष की अवस्था में कालीदह में जाकर नाग के रक्त को बहाया। आज नाग को सर्प स्वीकार करते हैं जो रेंगने वाला प्राणी है। वे ऐसा कहते रहते हैं कि नाग और उसकी पत्नियां नागनी ने उनसे प्रार्थना कर कहा कि तुम तो प्रभु हो, भगवान् हो और ऐसा कहने पर भगवान् कृष्ण उसे यहाँ से दूरी कर देते हैं और वह जल में विष उगलते रहते हैं। यह तो एक आलøारिक वार्ता है। नाथने का व्यवहारिक दृष्टि से यह अभिप्राय बना कि भगवान् कृष्ण ने

उनका अपने में मिलान किया। यौगिकवाद में जब योगी जाता है तो उसके पांच अवगुण जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इनमें से यदि कोई भी साधक को आ जाता है तो उसमें सर्प का प्रभाव आ जाता है वह विषधर बन करके उसके अमृत को विष बनाने के तुल्य अपना क्रिया कलाप करने लगता है। ऐसा यौगिक सूत्रों में आया है कि भगवान् कृष्ण जहाँ अध्ययन में इतने पारायण थे वहाँ योग में भी उनकी बड़ी प्रवृत्ति थी और वे जब योगाभ्यास करने लगे तो यह जो पांचों फनों वाला शेषनाग बन गया था काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार उसके फन कहलाते हैं, भगवान कृष्ण अपने योगाभ्यास के द्वारा, अपनी प्रवृत्ति और विवेक के द्वारा इसके फनों के ऊपर नृत्य करने लगे और लक्ष्मी उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके वृत करने लगी। मानो नाग मंथन हो गया। उन्होंने जब नाग का मंथन किया तो मंथन करने के पश्चात् उसको अपने में रत करा करके वह उनकी एक यौगिक प्रक्रिया बन गयी।

इसीलिए यौगिक प्रक्रिया में यह पाँच फनों वाला शेषनाग है और सामाजिक पद्धति में यह नाग सम्प्रदाय पातालपुरी से आया उसको भगवान् कृष्ण ने अपने में मिलान किया। भगवान् कृष्ण ने राष्ट्र की पद्धति और ज्ञान की पद्धति अपना करके नाग-संप्रदाय को अपने में मिलान करने का प्रयास किया। राष्ट्र ऊँचा तब बनेगा जब राष्ट्र में भिन्न-भिन्न प्रकार की रूढियाँ नहीं रहेंगी। इन रूढ़ियों के विनाश में

राजा को लग जाना चाहिए। रूढ़िवादियों के आचार्यों का षास्त्रार्थ हो, विचार हो और ब्रह्मवेत्ता राजा जो ब्रह्म का विचारक हो वह संप्रदायों को नष्ट करने, तथा समाज के एकोकीकरण में लग जाये तो यह समाज में रक्तमयी क्रान्ति का भय नहीं रहेगा। (अट्ठावनवाँ पुष्प, माछरा, मेरठ, 31 जनवरी, 1989)

जहाँ यह हमारी वाणी जा रही है याज्ञां ब्रहे, वहाँ भगवान् कृष्ण ने भी विशाल-विशाल यागों का आयोजन किया है। मैं उस याग की चर्चा करूँ, जो भगवान् कृष्ण ने बड़ा विचित्रयाग किया। जिस याग की इस वर्तमान युग में भी, वर्तमान काल में भी आवश्यकता रहती है। द्वापर के काल में पातालपुरी में एक क्रान्ति आई उस क्रान्ति में नर संहार होने लगा तो नाग नाम की कुछ जातियां पातालपुरी को त्याग करके यहाँ इस भारत भूमि पर आ गयी। यहाँ के मानव ने उस नाग जाति से कुछ घृणा की तो भगवान् कृष्ण ने इसी स्थल (मथुरा) में एक नाग याग किया था। नाग याग का अभिप्रायः यह कि नाग जाति के प्राणी जो पातालपुरी से आये उन सबका एकोकीकरण कर दिया। राष्ट्रीय दृष्टि से राष्ट्रीय प्रतिभा से उस नाग को जातीयता में न रहकर ''नागं ब्रह्मेः वस्तुतः सुप्रजाः'' वे नाग बने हुए, वे नाग नहीं थे प्राणी थे, परन्तु नागों को एकोकीकरण करके अपने में सम्मिलित कर लिया। राष्ट्र पवित्रबन गया। यह कहा जाता है कि उन्हांने नाग का मंथन किया। नाग के मंथन का अभिप्राय यही माना

जाता है कि उनका शुद्धिकरण, उन्हें हिंसा से अहिंसा में लाने को वे तत्पर हुए और अहिंसामयी बन करके उनके विचारों का मंथन हो गया।

आधुनिक काल में कालीः क्रम में, कृष्णा को मानने वाले आधुनिक प्राणी कहते हैं कि यहाँ काली एक नाग था। अरे! नाग को तो कोई भी प्राणी नष्ट कर सकता है परन्तु नाथने का अभिप्रायः क्या हुआ? नाथने का अभिप्रायः यह कि उन्हें अपने में सम्मिलित, विचारों में विचरित करते हुए वह एकोकी राष्ट्रीयकरण बन गया था। भगवान् कृष्णा ने एक राष्ट्रीय याग किया जिसमें नाग जाति के प्राणी सम्मिलित हुए उनका राष्ट्रीयकरण हुआ। उस राष्ट्रीय याग को आधुनिक काल का मानव कहता है कि भगवान कृष्णा बाल्यकाल में कालीदह में चले गये, नाग के ऊपर नृत्य किया। नृत्य का अभिप्राय यही है कि अपने विचारों को देना और उनका एकोकीकरण करना। नाग-जाति के लाखों प्राणी उन्होंने एकोकीकरण में परिणत कर दिये। आधुनिक काल में इस भारतभूमि में कही कहीं नाग जाति के, नाग कहलाने वाले प्राणी आज भी विद्यमान हैं। नागों में याग होने लगे थे, उनमें घृणा नहीं रही थी। घृणा के स्तर पर ही यह मानव समाज समाप्त हो जाता है। भगवान् कृष्णा ने घृणा का अस्तित्व समाप्त कर दिया। जहाँ जिसकी अनाधिकार पूजा होती थी उस पूजा को उन्होंने अधिकार में लाने के लिए प्रयास किया। पच्चीस वर्ष तक भगवान्

कृष्णा सन्दीपन ऋषि के पास अध्ययन करते रहे। पच्चीस वर्ष पश्चात् उनका संस्कार हुआ और उसके पश्चात् वह संसार के कार्यों में रत हो गये। भगवान् कृष्णा का जीवन जो मुझे स्मरण है, बड़ा पवित्रता में परिणत रहा है, महान् रहा है। भगवान् कृष्णा पत्रऔर पुष्पों का पान करते थे। उनके जीवन में कोई अश्लीलता नहीं थी। (अट्ठावनवाँ पुष्प, मथुरा, 4 मई, 1989)

जब बभ्रुवाहन पातालपुरी का राजा बना तो पातालपुरी में मानवता का प्रसार हुआ। हमारे यहाँ भगवान् कृष्णा की पताका अपने में बड़ी विशालता से थी, पाण्डवों की पताका भी बड़ी विशालता से थी, परन्तु वहाँ जब एक क्रान्ति आई थी, बभ्रुवाहन से पूर्वकाल में एक क्रान्ति आई, जहाँ देखों, अमृतं ब्रह्माः, वह अत्सुति तत्वम बृही वृणाहा' महर्षि कपिल मुनि महाराज पातालपुरी के रहने वाले थे, वहीं उनका विद्यालय था। जब वहाँ क्रान्ति प्रारम्भ हुई, तो उस क्रान्ति से नाग जाति यहाँ इस भारत भूमि पर आई। नाग जाति को भगवान् कृष्णा ने अपने में अपनाने का प्रयास किया। समाज में जब अज्ञान आया तो नाग रेंगने वाला प्राणी है उसको समाज ने नाग स्वीकार करके और उसके ऊपर नाचने के लिये उन्होंने कृष्णा को कलंकित किया। महापुरुषों को समाज ने कलंकित किया है। महापुरूषों को रूढ़िवाद से ही कलंकित किया जाता है। नाग जाति यहाँ जातियता के आधार पर मिश्रित हो गई और मिश्रित हो करके

आज भी आधुनिक जगत् में कहीं-कहीं नाग जातियाँ प्राप्त होती रहती हैं। बहुत से राष्ट्रों से इस प्रकार का अवधान हुआ। परन्तु देखो, वहीं पातालपुरी जब रूढ़िवाद के आंगन में प्रविष्ट हुई तो वहाँ ईसा के मानने वाले हुए। ईसा के मानने वालों में नाना प्रकार का रूढ़िवाद आया और प्राणी-प्राणी को नष्ट करने लगा, रक्त से रक्तों की कृतियाँ उपलब्ध हो गई, क्योंकि मानव रूढ़ियों में एक दूसरे की रूढ़ियों को नष्ट करने लगा। महाभारत के पश्चात् नाना प्रकार की रूढ़ियों का प्रादुर्भाव हुआ। देखो, यहाँ मुहम्मद के मानने वालों में एक सम्प्रदाय है कुरु, मानो कुरु का जन्म कहाँ से होता है? यह कुरुवंशियों से होता है, क्योंकि यहाँ महाभारत में कुरुवंशी और पाण्डव दो पक्ष बने थे। तो जितने भी कुरु हैं, ये सर्वत्रदुर्योधन के मानने वाले थे, ये कौरवों को ही मानने वाले थे तो कुरुवंशी कहलाये गये और इसी प्रकार देखो पश्चात् अमृती (अमेरिका) जिसको कहते हैं, पातालपुरी यहाँ सब पाण्डवों के अवृत्तियों में रहने वाले थे परन्तु यह भी संग्राम के व्रत्ती बने। (महाराजा रघु का याग, बरनावा, 14 मार्च, 1992)

भगवान् कृष्ण का जीवन एक व्यापकता में रमण करता रहा है जिस समाज ने जिन राजाओं ने यहां द्वितीय राष्ट्रों से आकर के उनको आश्रय दिया। आश्रय दे करके उनके जीवन को बलवती बनाया। (यज्ञ एवं औषधि विज्ञान, जोरबाग, नई दिल्ली, 19 दिसम्बर, 1982)

दूषित राष्ट्रवाद

एक समय भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों समुद्र के तट पर अपनी द्वारिकापुरी में विराजमान थे। उस समय मेरे प्यारे अर्जुन जी बोले महाराज मुझे तो समुद्र तरंगों से ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र दूषित हो गया हो। भगवान् कृष्ण बोले इसका मूल कारण तुम जानते हो? उन्होंने कहा हम नहीं जानते। हे अर्जुन! तुम्हें यह प्रतीत है कि राष्ट्रवाद कितना दूषित हो रहा है? उन्होंने कहा हां भगवन् यह तो प्रतीत है। उन्होंने कहा जिस काल में राष्ट्रवाद की परम्परा अभक्ष्य हो जाती है उस समय प्रायः वातावरण अशुद्ध हो जाता है तुम्हें यह प्रतीत है जिस समय विश्व संग्राम होते है, रक्तमयी क्रान्तियाँ आती है, उस समय प्रकृति के लक्षण परिवर्तित हो जाते है। उन्होंने कहा भगवन्! मैं तो इसको नहीं जानता। उन्होंने कहा कि उस समय प्रकृति का वातावरण अशुद्ध हो जाता है।

मुनिवरो! संसार में रक्तमयी क्रान्ति का मूल कारण क्या बनता है? मूल कारण यह है कि जब प्रत्येक दिशा में शुभ कर्म नहीं होते, याग नहीं होते, उस काल में वातारण अशुद्ध हो जाता हैं जिस समय समाज में बुद्धिमानों के द्वारा, ऊँचे ब्राह्मण तपस्वियों के द्वारा जब राजा का चुनाव नहीं होता, मूर्खो के द्वारा, अपठित प्राणियों के द्वारा जब राष्ट्र का चुनाव होता है, राष्ट्र का निर्माण होता है, तो यह मत जानों कि वह अपठित समाज ने जिस राष्ट्र (प्रतिनिधि) को चुना है

वह राष्ट्र को या समाज को उज्ज्वल बना सकता है। वह अपठित समाज का चुना हुआ राजा स्वार्थवादी होगा, उसके द्वारा विडम्बना होगी, उसकी अन्तरात्मा में पद की लोलुपता होगी, द्रव्य को एकत्रित करने की, संग्रह करने की प्रवृत्ति उसमें बनी रहेगी। प्रजा के वैभव को संग्रह करने वाला जो राष्ट्र बनेगा वह प्रजा को सुखी कदापि नहीं कर सकेगा। जब एक वेद पाठी ब्राह्मण जो ऊँचा हो उसकी तुलना में, एक अपठित समाज जिसको यह भी प्रतीत नहीं कि जल को कैसे पान किया जाता है, श्वास की गति कैसी होनी चाहिए, जब दोनों का एक ही स्थान (मूल्य) हो जाता है तो उस राष्ट्र में रक्तमयी क्रान्ति आ जाती है। बेटा, यह भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को निर्णय कराया था।

मुनिवरों! जिस राजा के राष्ट्र में, जिस समाज में रूढ़ियाँ होगी और धर्म को नहीं विचारा जाएगा, धर्म की रक्षा करने के लिए राष्ट्र नहीं होगा, धर्म की ओर विचारा ही नहीं जायेगा कि धर्म क्या है? जिस राजा के राष्ट्र में ब्राह्मण समाज, ऊँचे ऋषि, तपस्वी भयंकर कजली वनों से आकर के ऋषि मुनियों के द्वारा विचार करके, समाज के ऊपर, राष्ट्र के ऊपर नियम निर्धारित नहीं करते है तो उस राजा के राष्ट्र में प्रायः धर्म के ऊपर रक्तमयी क्रान्ति आती ही रहती है। धर्म के ऊपर राष्ट्र का विभाजन भी किया जाता है और वह जो विभाजनवाद धर्म पर है, रूढ़ियों पर है, मुनिवरों! वह धर्म नहीं,

उसको अधर्म कहना चाहिए। दोनों का तारतम्य करके जो मिलाने वाला हो, उसमें धर्म की प्रतीत होती हो तो उसी का नाम धर्म कहा जाता है, जो आत्म कल्याण के लिए हो, प्रत्येक इन्द्रियों से सुगठित हो। रूढ़ियों से भी राष्ट्र भ्रष्ट हो जाते हैं, रूढ़ियों से भी समाज पतित हो जाते हैं। इसलिए मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हमें रूढ़ियों को नहीं अपनाना चाहिए हमें धर्म को अपनाना चाहिए। विचारना यह कि धर्म क्या है? मुनिवरों, जिसको हमारा अन्तरात्मा स्वीकार करने वाला हो। इसलिए विज्ञान के आधार पर वैज्ञानिक होना मानव को बहुत अनिवार्य है। कोई भी मानव जब किसी मार्ग को अपनाता हुआ उस मार्ग में वह रमण करता है, प्रभु को पाना चाहता है, प्रभु का साक्षात् करना चाहता है तो वह प्रकृति के मार्ग से ही हो करके जाता है, क्योंकि प्रकृति के विज्ञान को जानता हुआ वह परमात्मा की प्रतिभा को साक्षात् कर लेता है। हे वत्स, आज हमें विचारना है कि अगर हम परमपिता परमात्मा को पाना चाहते है तो ऋषि कहते है कि याग होने चाहिए। प्रत्येक गृह में जब याग होते हैं, देव पूजा होती है, देवताओं के ऋण से जब उऋण होते है तो समाज में धर्म होता है, कर्त्तव्यवाद होता है, मानवता होती है, शान्ति होती है, आत्म-विश्वास होता है। जब तक ये रहते है तब तक यह समाज सतयुग की बेला में रमण करता रहता है।

भगवान् कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! ''अस्वातं ब्रह्मे'' यह जो समुद्र

है यह दूषित उस काल में होता है जब हम देवताओ के ऋण से उऋण नहीं होते। क्योंकि देवताओं के ऋण से उऋण होना बहुत अनिवार्य है। जब मानव दुर्गन्धि ही दुर्गन्धि करता है सुगन्धि नहीं करता, कहीं दूषित विचारों से दुर्गन्ध करता है, कही पदार्थो को अशुद्ध बना करके दुर्गन्ध को स्थापित कर देता हैं। वह जब सुगन्ध नहीं देता तब सुगन्धि समाप्त हो जाती है। दुर्गन्ध ही दुर्गन्ध हो जाती है तो प्रायः समुद्रों में अशुद्धवाद आ जाता है। समुद्रों का जो 'जलं प्रवे' अर्थात् प्रवाह है उसमें दूषितवाद की तरंगें ओत-प्रोत हो जाती है। भगवान् कृष्णा ने कहा हे अर्जुन! आज तो तुम्हें यह तरंगें दूषित होती दृष्टिपात आ रही है इसका अभिप्राय है कि संग्राम होना है और जो यह समाज है वह नष्ट होना है। (सप्तम पुष्प, विजय नगर, नई दिल्ली, 22 अगस्त, 1962)

पूर्व जन्म

हम भगवान् कृष्णा के जीवन को विचार-विनिमय करते चले जायें। भगवान् कृष्णा ने एक समय अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! मैं बहुत से जन्मों को जानता हूं परन्तु तू नहीं जानता। मैं जन्म-जन्मान्तरों से बहुत से जन्मों को जानता हूँ क्योंकि मेरा जो जीवन है यह यौगिकता से परिणत रहता है, वह एक सुन्दरता से सुसंगठित रहता है। इसलिए हे अर्जुन! आज तुम मुझे जानने का प्रयास करो। यह ज्ञान तो आज मैं तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ यह ज्ञान और विज्ञान

मैंने अक्षवा और सूर्य को भी अर्पित किया है। (बारहवाँ पुष्प 3 सितम्बर, 1969)

मेरे प्यारे ऋषिवर! ऐसा कहा जाता है कि यही भगवान् कृष्ण का आत्मा ही मनु महाराज का आत्मा था। उस काल में कृष्ण का आत्मा मनुजी के शरीर में प्रतिष्ठ था। भगवान् मनु की पद्धतियों में प्रायः आता रहता है कि उनके जीवन में एक अग्नि की प्रतिभा ओत-प्रोत रही। भगवान् मनु ने सबसे प्रथम राष्ट्रीय विधान बनाते हुए कहा कि धर्म और मानवता की रक्षा करना राष्ट्र का परम उद्देश्य है क्योंकि जिस राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की रक्षा नहीं होती है उस राष्ट्र और पद्धति को कदापि भी नहीं चुनना चाहिए। इसी आत्मा का सर्वप्रथम जन्म महाराजा मनु का हुआ, उसके पश्चात् उन्होंने महाराजा सूर्य और अक्षवा को ज्ञान दिया क्योंकि भगवान् मनु के पुत्रका नाम सूर्य था, सूर्य के पुत्रका नाम अक्षवा था। उनको उन्होंने यह ज्ञान की विचार धारायें और राष्ट्रीय पद्धति का वर्णन कराया और उन्हें ब्रह्म ज्ञान देकर के अपने परमधाम को प्राप्त हो गये थे। इसी प्रकार भगवान् मनु के पश्चात् और भी इनके नाना जन्म हुए। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, 3 सितम्बर, 1969)

सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में रमण करने वाली आत्माओं को देवता कहते है। देवता वह होते हैं जो हमें कुछ देते हैं। वे आत्माएँ इस संसार को देखा करती हैं। जब यहाँ किसी पदार्थ की सूक्ष्मता हो

जाती है तब ही आ कूदते हैं और हमारे कल्याण के लिए सोचते है। हमारे कल्याण के लिए हमें कुछ देते हैं हमें ज्ञान देते हैं। हमें उस महिमा का प्रदर्शन करा जाते है जिससे हमें शान्त की गई वस्तु प्रकट हो जाती है और प्रकट हो करके हमारा जीवन अलौकिक बन जाता है। इसको महानन्दजी देवयान कहते हैं।

भगवान् कृष्ण इस कृष्ण जीवन से पूर्व 'मध्यूनपान' ऋषि महाराज थे। 'मध्यूनपान' ऋषि महाराज जब देवयान में विचरण करते थे तो संसार को देखा करते थे कि यहाँ क्या हो रहा है? यह कौन-सी प्रगति को जा रहा है। जब यहाँ वैज्ञानिक मन्त्रों का आविष्कार किया जा रहा था और राजा कंस के अत्याचारों से महापाप छा रहा था उस काल में मध्यूनपान ऋषि ने माता देवकी के यहाँ आ करके, नौ माह की उस महान् कष्ट यात्रा में माता के गर्भ स्थल में धारण होकर माता यशोदा के गृह में पहुंचे। उन्होंने आ करके संसार को ऊँचा बनाया और अर्जुन से कहा कि मैं सब प्रकृति को जानता हूँ परन्तु मैं उस कर्म को नहीं करूँगा जिस कर्म के करने से यह संसार तुच्छ बन जाता है, मुझे तो वह कर्म करना है जिससे यह संसार ऊँचा बने।

महाराजा कृष्ण के समय कितना दुराचार आ चुका था, कितना विज्ञान आ चुका था परन्तु वह दुराचार भगवान् कृष्ण के जीवन को न छू सका। देवता उसी को कहते हैं जिसके जीवन को यह

रजोगुण-तमोगुण से भरा हुआ संसार न छू सके। उनको जानों कि वह देवयान से आये है और संसार में कुछ कर्म करके जाएगे तो देवयान में ही जाएगे। देवयान उसको कहते हैं जहाँ देवात्माएँ रमण करती है। (चतुर्थ पुष्प, मालवीय नगर, नई दिल्ली, 28 जुलाई, 1963)

जनता में जनार्दन को दृष्टिपात करने वाले

हमारे यहाँ ऋषियों ने दो प्रकार के महापुरुषों की चर्चाएँ की है। एक तो वह महापुरुष होते हैं जो जनता में ही जनार्दन को दृष्टिपात् करते रहते हैं। द्वितीय वह पुरुष होते हैं जो ब्रह्म में समाविष्ट हो जाते हैं और उसके पश्चात् मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु जो अपनी आत्मा में हवि देते हैं, और आत्मा में ही द्रव्य पदार्थो को ओतप्रोत करते हुए ब्रह्म को सदैव दृष्टिपात् करते हुए ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। वह ब्रह्म में लीन नहीं ब्रह्म में समाधिष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार जो जनता में जनार्दन वाले पुरुष होते हैं वह दृष्टा होते हैं। उनको हमारे यहां महर्षि कपिल जी ने ''इष्टं ब्रह्मे अप्राप्त रुद्रा कृति'' कहा है। महर्षि कपिल जी ने जनता में जर्नादन वाले महापुरुषों के लिए एक ही वाक्य कहा है कि वह जो महापुरुष होते है वह इष्टी कहलाते है क्योंकि उनका जो इष्ट है वह परमपिता-परमात्मा को कण-कण में स्वीकार करना और प्रत्येक प्राणी के हृदय में उनको विचरना और उन्हीं में संलग्न रहना, और जो त्रुटियां होती है उनको निकालने का

प्रयत्न करना और अपने ऊपर उनको न आने देना वे जनता में जनार्दन महापुरुष होते है। क्योंकि जनता जनार्दन उनके लिए ब्रह्म के रूप में प्रतीत होती रहती है, उसी में उनका आत्मा इतना उन्नत हो जाता है कि वह जो उच्चारण करते है, वह राष्ट्र से लेकर के साधारण प्रजा के लिए या तो वह मानना अनिवार्य हो जाता है अन्यथा उनके भौतिक पिण्ड को नष्ट भ्रष्ट कर दिया जाता है। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 6 मार्च, 1969)

महाभारत के नियन्ता

हम उन महान आचार्यों व योगियों के कितने बड़े आभारी हैं जिन्होंने बेटा! षोडश कलाओं को जाना और समय के अनुसार नीति को बरतते हुए संसार का पुनः उत्थान किया। आज मानव को विचारना चाहिए कि महाभारत का संग्राम केवल महाराजा कृष्ण का ही कर्त्तव्य था, जैसी राजनीति देखी, जैसा समय देखा, उसके अनुकूल व्यवहार किया। यह केवल उन्हीं की योग्यता थी। महाभारत काल में यहाँ भौतिकता बहुत बढ़ गयी थी नाना प्रकार के यन्त्र बन गए थे। महाराजा अम्बरीश के पास एक ऐसा यन्त्र था जिसके एक बार प्रयोग से ही नौ अक्षौहिणी सेना समाप्त करके वह यन्त्र उनके पास वापिस आ जाता था। ऐसे-ऐसे यन्त्र थे जिनके प्रयोग से पृथ्वी में विशाल खड्डे हो जाते थे, बड़े-बड़े जलाशयों को सुखाकर भूमि में बदल देते थे। जहाँ भौतिक विज्ञान से ऐसे-ऐसे मन्त्रों का निर्माण

करके एक-दूसरे को नष्ट करने की योजनाएं बनाई जा रही थीं, वही महाराजा कृष्णा ऐसे महान् योगी थे जिन्होंने महाभारत जैसे विनाशकारी युद्ध को कराया। और मुनिवरो! देखो, कितना विशाल संग्राम! आज मानव चकित होता चला जा रहा है। इस संग्राम में सब ही बुद्धिमान व वैज्ञानिक समाप्त हो गए थे। परन्तु क्या करें, जैसा मानव का समय होता है उसी के अनुकूल वातावरण बन जाता है यह मानव के आँगन में आने वाला विषय नहीं, यह तो केवल परमात्मा की महानता है, जिसके आदेश से यह कार्य चल रहा है। मानव तो प्रयत्न कर सकता है और वह भी सीमित, असीमित नहीं। परमात्मा इतना अनन्त है कि वह सब ही कुछ समय के अनुकूल करा देता है।

मुनिवरो! देखो, उस महान् योगी ने अपने जीवन में एक ऐसे महान् यन्त्र को खोजा जिसको अब तक केवल दो ने ही जाना है, त्रेता काल में महाराजा लक्ष्मण ने और द्वापरकाल में महाराजा कृष्णा ने। महाभारत के संग्राम का जितना आंगन (मैदान) था उसके चारों ओर एक यान्त्रिक रेखा का महाराजा कृष्णा द्वारा प्रयोग किया गया था। जिसके कारण संग्राम के मन्त्रों का दूषित प्रभाव उस रेखा से बाहर न जा सका अर्थात् संग्राम भूमि से बाहर अन्य प्राणियों पर उन मन्त्रों का कोई दूषित प्रभाव नहीं हुआ था। उसको ''स्वान्माम्'' की रेखा कहते हैं। वह क्या है? वह महान् यौगिकता और महान्

वैज्ञानिकता है जिसमें षोडश कलाओं को जाना जाता है। (तृतीय पुष्प, लोधी कालोनी, नई दिल्ली, 16 जुलाई, 1968)

क्रियात्मक जीवन और दीर्घ आयु

आग्नेय ज्योति को प्राप्त करने वाला मानव ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है। भगवान् कृष्णा की भांति वह ब्रह्मवर्चोसि बन जाता है। मेरे पुत्रों मुझे तो परमपिता परमात्मा की अनुपम कृपा से भगवान् कृष्णा के जीवन का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। भगवान् कृष्णा सदैव अपने जीवन को क्रियात्मक बनाते रहते थे क्योंकि उनका विज्ञान, उनका योग, उनका अनुष्ठान भी महान् था। उनकी आयु भी विचित्र थी। भगवान् कृष्णा जब मृत्यु को प्राप्त हुए तब तीन सौ बासठ वर्ष की उनकी आयु थी। इतनी आयु में उन्होंने सर्वत्र क्रियाएँ की। (तैतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 15 मार्च, 1983)

अवतारी नहीं योगेश्वर

मुनिवरों, आजका मानव महानन्द जी के कथनानुसार, परमात्मा को कोई तो 'राम' शब्द से पुकारता है, कोई 'कृष्णा' शब्द से पुकारता है। यह तो यथार्थ है कि परमात्मा के अनन्त नाम हैं। उसको किसी नाम से पुकारे, है तो वह परमात्मा ही। परमात्मा को जिन रूपों से पुकारा जाता है उन्हीं रूपों से प्रकट हो जाते हैं।

मुनिवरों! जब मानव रूढ़िवादी बन जाता है और रूढ़िवादी बन करके उस महान् योगेश्वर कृष्णा को भगवान् मान लिया जाता है तो

उस महान आत्मा पर लांछन लगाकर अपने स्वार्थ को पूरा करना चाहता है। यह हमारी मूढ़ता नहीं तो और क्या है? यह हमारी अज्ञानता नहीं तो और क्या है? जिन्होंने अपने दर्शनों को नहीं जाना, जिन्होंने अपने वेदों को नहीं जाना और परमात्मा की वाणी (वेद) पर विचार नहीं किया यह उनकी अज्ञानता नहीं तो और क्या है? (तृतीय पुष्प, लोधी कॉलोनी, नई दिल्ली, 16 जुलाई, 1963)

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव कुछ अवतारवाद के सम्बन्ध में अपने विचार ले करके चले। वास्तव में हमारे जो भी मौलिक विचार है इन विचारों से ऐसा प्रतीत होता है जैसे अवतारवाद भी कुछ वस्तुतः है। (छठा पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 28 जुलाई, 1966)

अवतार यह नहीं होता कि परमात्मा मनुष्य रूप धारण करके आ जाये बल्कि अवतार उसे कहते है जो परमात्मा के निकट जाने वाला आत्मा हो, लोक-कल्याण के लिए जन्म लेता हो, उसे अवतरण कहते हैं। यही अर्थ स्वीकार करना चाहिए। (छठा पुष्प 25 जुलाई, 1966)

आज हम उन महान आत्माओं का कहाँ तक गुणगान करें। जैसे परमात्मा अनन्त है, ऐसे ही महान व्यक्ति अनन्त गुण के होते हैं। मुनिवरो! आज हमें विचारना चाहिए जैसा मानव, जैसा योगी हो उसको वैसा उच्चारण करने में मानव को कोई दोष नहीं, कोई आपत्ति नहीं। अहा! परमात्मा को भिन्न रूपों में अवश्य पुकारना चाहिए परन्तु

देखो, परमात्मा इतना न्यायशील है, महान् सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है, परन्तु यदि हम उसको यह कहें कि परमात्मा योगी बनकर आ गया, तो ठीक नहीं होगा। अरे, परमात्मा तो योगियों का भी योगी है, आज वह संसार में सीमित होकर क्यों आयेगा? जो महान् का भी महान् है वह संसार में अल्प बन करके क्यों आयेगा? (तृतीय पुष्प, लोधी कालोनी, नई दिल्ली, 16 जुलाई 1962)

आज तक किसी आत्मा ने युक्ति-युक्त विधि से वैदिक प्रमाण के आधार पर यह निर्णय नहीं दिया कि वृक्षों में मनुष्यों की आत्मा पहुंच जाती है अर्थात् आत्मा वृक्ष योनी ग्रहण कर लेती है।

पूज्य महानन्द जीः यह आप क्या उच्चारण कर रहे हैं? पूज्यपाद गुरुदेव! भगवान् कृष्ण ने ठोकरों से एक वृक्ष को गिराया। उस वृक्ष से दो बालक उत्पन्न हुए।

पूज्यपाद गुरुदेवः कैसे हुए? हमने जाना नहीं।

पूज्य महानन्द जीः वह इस प्रकार कि एक समय मार्ग (वन) में महाराजा कृष्ण ग्वाल बाल बने हुए थे। उन्होंने ठोकरों से एक वृक्ष को गिराया। उस समय वहाँ कुबेर के दो पुत्र उस वृक्ष से उत्पन्न हुए।

महानन्द जी! क्या करें? मानव ने इस रहस्य को भी नहीं जाना यह तो सम्भव हो सकता है या माना जा सकता है कि महाराज कृष्ण के पदों से महान् वृक्ष गिर जाए। परन्तु परमात्मा के नियम और सिद्धान्त के विरुद्ध वृक्ष से मानव योनि उत्पन्न हो गई, यह कैसे

माना जा सकता है?

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव! जब कृष्णा को भगवान् मानते हैं तो भगवान् जो चाहें कर देवें।

पूज्यपाद गुरुदेवः हां महानन्द जी! तुम्हें भी भगवान् कहने लगें, तो तुम भी ऐसे ही कार्य करोगे।

पूज्य महानन्द जी नहीं भगवन्! हम क्यों करते?

पूज्यपाद गुरुदेवः जब तुम नहीं करोगे तो बेटा, महाराजा कृष्णा ने कैसे किए? भगवान् कृष्णा के भगवान् होने का तुम्हारे पास क्या प्रमाण हैं?

पूज्य महानन्द जी गुरुदेव, यह प्रमाण है कि उनको भगवान् कृष्णा माना जाता है। उनको पूर्ण ब्रह्म माना जाता है।

पूज्यपाद गुरुदेवः अरे! किसने माना है?

पूज्य महानन्द जीः गुरुजी, हम मान रहे हैं और कौन मानता?

पूज्यपाद गुरुदेवः अरे वही मनमानी वार्ता, तुम्ही मान रहे हो या किसी ऋषि-मण्डल ने भी माना है? सबसे पूर्व इसमें यह आदेश है कि यदि आज महाराजा कृष्णा को भगवान् के रूप में मान लेते हैं या पूर्ण ब्रह्म मान लेते हैं तो बेटा! उनकी महत्ता में भी विच्छेद आ जाता है, क्योंकि परमात्मा का नियम यह नहीं कहता है, अर्थात् यदि परमात्मा ही स्वयं अपने ही नियमों को तोड़ने लगे तो उनकी महत्ता ही नष्ट हो जाती है। दूसरे सर्वशक्तिमान् परमात्मा को जन्म धारण

करने की क्या आवश्यकता है? परमात्मा तो निराकार रहते हुए भी जिस वस्तु की रचना कर देते हैं, उसका नाश भी वे निराकार होते हुए ही कर सकते हैं, क्योंकि परमात्मा तो निराकार होते हुए भी सर्वशक्तिमान् है। यदि महाराजा कृष्णा वृक्षों से मनुष्य उत्पन्न करने वाले होते तो इस परमात्मा की सृष्टि में आज माता-पिता की अर्थात् देवकन्याओं और मानवों की तो आवश्यकता ही नहीं रहती। मानवोत्पत्ति के नियम बनाने की ही फिर क्या आवश्यकता थी? वे तुम्हारे कहे अनुसार तो जैसे वृक्षों पर फल लगते हैं, वैसे ही मनुष्य भी लग जाया करते।

मुनिवरों! यह ऐसा नहीं है। वास्तव में मानव ने इस रहस्य को जाना नहीं। सबसे पूर्व उत्तर यह है कि महाराज कृष्णा योगेश्वर थे, महान् एवम् विचित्र थे। अपने समय में बहुत बड़े बुद्धिमान थे, अपने समय में वेदों के प्रकाण्ड पण्डित थे। महाराजा कृष्णा का ऐसा प्रबल आत्मा था कि दूसरों का आत्मा उनके आत्मिकबल से प्रभावित होकर उनके ही आदेशों पर चलने लगता था। महाराजा अर्जुन के मोह में फंस जाने पर योगीराज कृष्णा ने अपनी योग-शक्ति के द्वारा पहले उनके मोह के नाश के लिए विराट रूप दिखा कर केवल एक ही आदेश दिया था। महानन्द जी! इस पर तुम तो यह कहोगे कि विराट रूप तो एकमात्र परमात्मा का ही होता है। महाराजा कृष्णा ने कैसे दिखा दिया? नहीं, नहीं योगियों का भी विराट रूप होता। योगी

इस पंचभौतिक मानव शरीर में रहते हुए विराट रूप दिखा सकते हैं। इससे दर्शक (शिष्य) चकित हो जाता है, उसकी चचंल मानसिक वृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती है। दर्शक (शिष्य) का अज्ञान समाप्त हो जाता है। महाराजा कृष्ण ने अर्जुन से यही कहा था कि हे अर्जुन तू अपने को मुझे अर्पण कर दे। जैसे कोई जिज्ञासु किन्हीं महान् गुरु के समक्ष अपने अज्ञान का नाश कराने जाता है, उस समय गुरु उसके अज्ञान के नाश के लिए जिज्ञासु से कहता है कि हे शिष्य! तू अपने को मुझे अर्पण कर दे, मुझको अर्पण करने से तुझे ज्ञान हो जाएगा, तेरा अज्ञान नष्ट हो जाएगा।

एक महान ऋषि थे। एक राजा उनके समीप जाया करते थे, उनकी बहुत सेवा किया करते थे परन्तु उस राजा की प्रजा नाना चिंताओं से मग्न थी। इसलिए उनकी प्रजा बड़ी दुःखी थी। इसी से राजा भी बड़ा दुःखी था। ऐसी दशा में राजा ने मन में सोचा कि भई! तेरे बस का राज्य करना अब नहीं है, अब क्या करना चाहिए? मुनिवरो! चिन्तित राजा ऋषि के पास पहुंचा। राजा ने ऋषि जी से निवेदन किया कि देखो, ''महाराज! अब राज्य मेरे बस में नहीं आ रहा है, इसलिए मैं सन्यास लेना चाहता हूं।'' उस समय ऋषि ने कहा ''आप अपना राज्य अपने पुत्र को दे दो।'' राजा ने कहा, ''महाराज! पुत्र तो अभी सूक्ष्म है।'' तब ऋषि ने कहा ''यदि राज्य पुत्र को नहीं देते तो मातेश्वरी को दे दो।'' राजा ने कहा कि

''मातेश्वरी से भी कार्य नहीं चलेगा।'' तब ऋषि ने कहा, ''हे राजन! उस राज्य को मुझे दे दो।'' उस समय राजा ने उत्तर में कहा कि अच्छा भगवन्, आप ले लीजिए। मुनिवरो! जब राजा ने राज्य को संकल्प पूर्वक दान कर दिया। तब ऋषि ने पूछा कि हे राजन्! अब तुम कहाँ जाओगे? उस समय राजा ने कहा कि राज्यकोष में से कुछ धन लेकर दूसरे राज्यों में जाकर कुछ व्यापार करके अपना निर्वाह करूँगा, अपने उदर की पूर्ति करूँगा। ऋषि ने कहा, ''हे राजन्! कोष तो राज्य का है और राज्य मेरा है, तुम्हारा नहीं।'' राजा ने कहा ''महाराज यह भी सत्य हैं, मैं वेसे ही चला जाऊँगा किसी राज्य में जाकर किसी का सेवक ही बन जाऊँगा। तब ऋषि ने कहा, अरे जब तुम्हें सेवक ही बनना है तो तुम मेरे ही सेवक क्यों न बनो, मेरे सेवक बनकर राज्य करो। जनता को कहो कि यह राज्य मेरा नहीं मेरे गुरु का है। गुरु का भय करो, निष्काम वृत्ति से जीवन के भोगों को भोगते हुए राज्य का कार्य करते रहो। निष्काम वृत्ति से तुम्हारा जीवन इन चिन्ताओं से पृथक् हो जायेगा, जीवन स्वच्छ बन जायेगा। राजा ने ऐसा ही किया, ऐसा करने से प्रजा में शान्ति हो गई।

इसी प्रकार से महाराजा कृष्णा ने अर्जुन से कहा था कि हे अर्जुन! तू अपने जीवन की योजना मेरे अर्पण कर दे, तब तुझे कोई चिन्ता नही रहेंगी। मुनिवरो! इसलिए महाराज कृष्णा ने अर्जुन से जो

कुछ कहा है यथार्थ कहा है। पहले जिज्ञासु को गुरु के समीप जाकर अपनापन त्यागना पड़ता है। गुरु को भी प्यारे जिज्ञासु को अपनाना है। गुरु की कृपा से जब जिज्ञासु का अज्ञान नष्ट हो जाता है, तब वह जिज्ञासु परमात्मा के अधीन हो जाता है। आज मानव को बहुत ऊँजा विचार करना चाहिए। वास्तव में आज महाराजा कृष्णा के जीवन को वास्तविक रूप में जाना ही नहीं, योगेश्वर कृष्णा की यौगिकता एवं उनके चरित्र को नाना प्रकार से लांछित कर दिया है, अनेक प्रकार की भ्रांतियां लोगों ने फैला दी हैं।

महाराज कृष्णा ने वृक्षों से मनुष्यों को उत्पन्न कर दिया, यह तो कदापि नही हो सकता। यह किसी से सुना सुनाया वाक्य है। यदि हम महाराज कृष्णा के समय को नहीं देखते तो हम सम्भवतः इसको मान लेते। इस कपोल कल्पित वार्ता पर कैसे विश्वास किया जाए? यह तो हो सकता है कि वे पुत्र, वृक्ष पर विराजमान हो, महाराजा कृष्णा ने उन्हें उतार लिया हो। यदि यह माना जाए कि वह वृक्ष में मानव जाति के व्यक्ति उत्पन्न हुए थे तो बेटा। तुम्हारा यह वाक्य अकथनीय बन जाएगा। आज यह तुम्हारा कोई बुद्धि वाला गम्भीर प्रश्न नहीं है। (प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, 17 जुलाई, 1962)

मेरे प्यारे लोमश मुनि ने बहुत कुछ कहा कि हमारे हृदय का गौरव तो यही है कि ऐसी महान् आत्माओं को परमात्मा न मानकर इसको शक्ति तथा महान् मानकर इसकी पूजा करें तो हमारे जीवन

का बहुत ऊँचा रहस्य बन जायेगा। काव्य लिखने वालों ने महाराजा राम व कृष्णा के सम्बन्ध में ऐसी रचना की कि उन्हें भगवान के तुल्य माना परन्तु तार्किक समाज ने उसका कोई मूल्य नही माना। जिस महान् आत्माओं ने उनके जीवन के रहस्य को जाना और उनके जीवन को देखा वह इन वार्ताओं को जानते हैं। आज मानव कह रहा है कि यदि वह (राम, कृष्णा) उत्पन्न न होते तो इस कार्य को कौन करता? परमात्मा यदि न आता तो उस अमुक व्यक्ति को कौन नष्ट करता? अरे मानव! यह तो तेरा एक संकल्प है। जो माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, पंचभौतिक शरीर से उत्पन्न हुआ है उसका आज नहीं तो कल अवश्य विनाश हो जायेगा। उसका शरीर छूटना अनिवार्य है। आज परमात्मा के लिए यह कह दिया जाये कि वह जन्म लेकर किसी के शरीर को नष्ट करने आया है तो वह वार्ता कदापि भी मान्य नहीं होगी। जिसने माता के शरीर से जन्म लिया है, माता के गर्भाशय में जिसकी पालना हुई है, उसका इस शरीर से छूट जाना अनिवार्य है। आज मानव यह कहे कि यह आत्मा तो अनादि है, आत्मा तो नष्ट नहीं होता। ब्रह्म विचार भी कह रहा है, आत्मा-परमात्मा के महान् तत्व भी कह रहे हैं कि यह शरीर तो नाशवान् है और इसमें रहने वाला आत्मा अनादि है। उसका न कभी अन्त है न उत्पत्ति है। (सातवाँ पुष्प, विनयनगर, नई दिल्ली 22 अगस्त, 1962)

महाराजा कृष्णा महान् परम योगी थे, जिन्होंने प्रभु की महत्ता को

जाना, हमें उनके दर्शन करने का सौभाग्य मिला। आज के मानव को महाराजा कृष्णा के जीवन पर विचार लेना चाहिए कि वह कितने परम योगी थे और उनका जीवन कितना महत्वदायक था। परन्तु आधुनिक काल के व्यक्तियों ने, मेरी प्यारी माताओं ने उस महान कृष्णा को भगवान् कहकर के संसार में उनका कोई मूल्य न छोड़ा।

महाराजा कृष्णा को भगवान् कहे तो कौन-सी दृष्टि से भगवान् कहे? कौन-सा कथन ऐसा है जिससे आज महाराजा कृष्णा को भगवान् की उपाधि प्राप्त करा देवे? हम ऐसे कह सकते हैं जैसे हम अपने गुरु को भगवान कह दिया करते है। इसमें कोई ऐसा वाक्य नहीं, अवश्य कह लेना चाहिए परन्तु आज हम उन महान आत्माओं को इतनी महानता देते हैं कि उनकी वास्तविकता को खो बैठते है। जब उन व्यक्तियों की वास्तविकता चली जाती है, तो संसार में अन्धकार आ जाता है, वास्तविकता को अवश्य विचारना चाहिए। आज मानव कहता चला जा रहा है कि महाराजा कृष्णा 'भगवान्' थे, परन्तु क्या मान बैठे है कि महाराजा कृष्णा की सोलह हजार रानियाँ थी। उस विद्याता का मूल्य खो बैठे। उस विधाता का, उस योगी की वास्तविकता खो करके संसार में अपने स्वार्थ को पूरा करने लगे, आज कैसा समाज बन गया? आज के संसार को देखकर बड़ा खेद आ रहा है।

महाराजा कृष्णा को परमपिता परमात्मा के रूप मे मान बैठे,

उसी काल में उनकी महत्ता समाप्त हो गई। आज हमें उनका महत्व समाप्त नहीं करना है। आज हम उस महान् व्यक्ति को महान् ही माने जो उसकी वास्तविकता है। क्या हम उनको अवतार मान बैठे? अपना भगवान् मान बैठे, जिन्होंने परमात्मा के ऊँचे स्वरूप को, उस महान विश्वकर्मा नित्यता को अच्छी प्रकार जाना नहीं, हम यह नहीं कहते कि कुछ नहीं जाना, बहुत कुछ जाना, और इस अन्धकार भरे संसार को प्रकाश देकर चले गए, यह अवश्य कहेंगे परन्तु यह नहीं कह सकते कि वह परमात्मा का अवतार बनकर आ गये। इसको कोई भी महान् आत्मा, कोई भी महान् योगी कदापि भी स्वीकार नहीं करेगा। आज हम उन महान् आत्माओं को महानता देवें, तो कैसी महानता देवें? कि उनके जीवन पर अपनी दृष्टि पहुँचावे, उनके जीवन का जितना अमूल्य रहस्य है वह हमारे अन्तःकरण में समा जाए, तो आज हम भी सोलह कलाओं को जानने वाले महान् और पवित्र बन जाएगें, एक दूसरे के लिए सेवा के लिए नियुक्त हो जाएगें।

आज संसार यह कहता है कि महाराजा कृष्ण को भगवान् माने तो अवश्य मानना चाहिए। परन्तु यह नहीं माना जाएगा कि परमात्मा मान लिया जाए, आज यदि उन्हीं को भगवान् कहते हैं जिन्होंने पितामह भीष्म को छल और नीति से शान्त किया, इसके पश्चात् और भी द्रोणाचार्य आदियों को भी छल से शान्त किया और इस महाभारत के संग्राम को कराया। अरे, क्या इसी को भगवान् का युद्ध

कराया हुआ कहोगे? क्या यह ही परमात्मा का कराया हुआ युद्ध है? मेरे विधाता महानन्द जी कहा करते हैं कि और किसने कराया, परन्तु हम कहते है, कि यह नीति थी। महाराजा कृष्णा उस अंधकार के काल में उस वैज्ञानिक संग्राम को कराने में इतने पूर्ण थे कि वह जैसा समय होता वैसी ही धर्मनीति के अनुकूल कार्य करते, ऐसो को ही संसार में महान् कहा करते हैं, उनको महानता अवश्य देनी चाहिए।

आज का मानव कहता है कि वास्तविकता तो हमारे समक्ष नहीं है कैसे माने? परन्तु वह तुम्हारे समक्ष है। लेकिन तुम अन्धकार में जा करके, रूढ़ियों में जा करके उस सूक्ष्मता को नहीं त्यागते जो त्यागने योग्य है। आधुनिक-काल की लेखनी कुछ कह रही है और पूर्व काल का वाक्य कुछ और कह रहा है। यह आज तुम्हारे आँगन में नहीं आ रहा है। इसका मूल कारण है कि तुम रूढ़िवाद से मान रहे हो कि किसी महान् ने ऐसी लेखनी दी है, वह लेखनी मिथ्या नहीं है उसकी रूपरेखा तुम अच्छी प्रकार नहीं जान रहे हो इसलिए उन महान आत्माओं को महानता त्याग करने वालो को आज तुमने बहुत तुच्छ बना दिया है। भगवान् कृष्णा ने अपने जीवन में बहुत कुछ जाना।

महाराजा कृष्णा ने महाभारत का संग्राम कराया, यदि उस काल में वह न होते तो न प्रतीत यह संसार कैसा होता। क्योंकि जब यह

संग्राम हुआ तो उस समय यहाँ ऐसे यन्त्र स्थिर हो गए थे, जिनके वायुमण्डल में प्रहार करने से यह सर्वज्ञ संसार समाप्त हो जाता। परन्तु महाराजा कृष्णा ने उस वैज्ञानिक रेखा को जाना जिससे उन महान् परमाणुओं का प्रभाव उस रेखा से बाहर न जा सके, वह रेखा परमाणुओं को शान्त करती रही, उस रेखा को उस परम योगी ने जाना। आज हमें महानता देनी है तो इन वाक्यों में देनी चाहिए और उनके जीवन पर इस प्रकार दृष्टि पहुँचानी चाहिए। महानता देनी है तो उनके पराक्रम को महानता दें, आज यह क्या महानता? कि महाराजा कृष्णा के सोलह हजार रानियाँ थी, महाराजा कृष्णा शिशुपाल से संग्राम करके महारानी रुक्मिणी को ले आए थे और उनके इस कर्त्तव्य से उनके परिवार का कोई सहमत नहीं था। यह तो कृष्णा को ऐसी महानता दे दी जैसे आधुनिक काल में इस महान् ऋषि भूमि पर, इस पवित्र भूमि पर यवनों का राज्य रहा और यवनों ने इसी प्रकार मनमाने कार्य किये, मेरी प्यारी माताओं को नाना प्रकार के कष्ट दिये और संसार को गड्ढे में पहुंचाया। (पाँचवां पुष्प, विनय नगर, नई दिल्ली, 19 अगस्त, 1962)

आधुनिक रुढ़िवादी

मेरे प्यारे महानन्द जी ने कहा, कि आज का मानव लोमश मुनि का विरोधी बन रहा है कि 'लोमश' ने महाराजा कृष्णा और राम को भगवान् नहीं माना। जबकि काव्य वालों ने ऐसा माना है। इसलिए

लोमश का वाक्य भी न मानने वाला बन जाएगा। मुनिवरों। आज इसे मानना हमें अनिवार्य हो जाता है क्योंकि वहाँ उन्होंने ''राम'' का विरोध नहीं किया है। ''राम'' का जो विरोध करता है वह वास्तव में अपकीर्ति को प्राप्त होता है। राम कहते है, परमात्मा को। जो प्रत्येक योगी के हृदय में रमण करने वाला है, जिसने संसार का निर्माण किया है, प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या के हृदय में जिसका रमण है, उसको 'राम' शब्दों से पुकारा जाता है। 'रम्' धातु से राम शब्द बनता है। मानव ने 'राम' के रहस्य को जाना नहीं। इन विचारों पर क्यों नहीं जा रहे हो। अरे! तुमने जीवन में अपनी बुद्धि से भी कार्य किया था या नहीं? केवल विरोध के लिए नियुक्त हो रहे हो, कि जो राम को भगवान् नहीं कहेगें तो उनको हम नष्ट कर देंगे, उसे षत्रु बना करके उसकी निन्दा करके अपकीर्ति को प्राप्त करा देंगे। अरे मानव! तुमने उसे अपकीर्ति को तो नहीं पहुँचाया, परन्तु तुमने किसी काल में उस राम को नहीं जाना जो तुम्हारे हृदय में बैठा है। तुम्हारे हृदय में जो बैठा हुआ 'कृष्ण अंकुर है उसको नहीं माना, जो अन्धकार का स्वामी है। इसलिए परमात्मा को हम 'कृष्ण' रूप में पुकारा करते है क्योंकि वह अन्धकार का स्वामी है और अन्तःकरण में विराजमान है। (सातवाँ पुष्प, विनय नगर, नई दिल्ली, 22 अगस्त, 1962)

आज मानव मान अपमान में चला जा रहा है और वह मानता

चला जा रहा है कि आज हम महाराजा कृष्ण को भगवान् माने और जो न माने तो उससे रुष्ट हो जाओं, उसे नष्ट करते रहो। यह मानव को कदापि भी विचार न लाना चाहिए। मेरे प्यारे लोमश ने ऐसा कहा है कि महाराजा कृष्ण को यदि भगवान् माना जाता है तो वह उनके गौरव को, उनकी महानता को कलंकित करना है। यह वाक्य यथार्थ है। परन्तु यदि किसी को षास्त्रार्थ करना है तो वह अपनी आत्मा को इतना बलिष्ठ बनाये कि हमारे सूक्ष्म शरीर की आत्मा में आकर षास्त्रार्थ करने के लिए नियुक्त हो जाये। आज मानव को यह नहीं मान लेना चाहिए कि महाराजा कृष्ण को किसी ने आज भगवान् नहीं माना तो इससे हमारे धर्म की हानि हो गई, हम नास्तिक बन गये हैं। आज तो तुम केवल 'भगवान् कृष्ण' उच्चारण ही कर रहे हो और तुम्हारे अन्तःकरण में कुछ और भरा हुआ है परन्तु जिन महान् व्यक्तियों ने उस महाराजा कृष्ण के रहस्य को जाना है, उनके हृदयों से पूछो वह क्या कह रहे हैं? मेरे प्यारे लोमश का हृदय क्या कह रहा है? उनका हृदय उनके जीवन के कण-कण से परिपक्व हो रहा है और पवित्र बन रहा है। आज तुम तो केवल मुख से उच्चारण कर रहे हो।

मुनिवरों! आज मानव को विचारना चाहिए कि विरोधी बनना है, तो किसके विरोधी बने? अरे, हम तो जब जानें यदि तुम्हे विरोध करना है, तो मान-अपमान को शान्त कर दो। इसी में हमारी महानता

है। आज तुम्हें घृणा करनी है तो उन व्यक्तियों से नहीं, जिन्होंने महाराजा राम व कृष्ण को भगवान् नहीं माना। अरे, घृणा करनी है तो अपने काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि से करो। इससे हमारे जीवन का पुनः उत्थान हो जायेगा। आज हमें अपने जीवन को ऊँचे शिखर पर पहुँचाना है और मानव बनना है। मानव बनने के लिए बहुत ज्ञान की आवश्यकता है, वैदिक रहस्य की आवश्यकता है। मुनिवरो! अहा! सुषुप्ति अवस्था में इस शरीर में कौन जागता है जिससे मानव का श्वांस चलता है? मुनिवरो वह प्राण हमारे यहाँ कृष्ण के नाम से पुकारा गया है क्योंकि वह अन्धकार का स्वामी हैं शरीर में अन्धकार छाया हुआ है और वह प्राण तीव्र गति से चल रहे है, शरीर की रक्षा कर रहे है। आज मानव ने उन प्राणों को जाना नहीं, रम् धातु से राम व कृष्ण को नहीं जाना। परन्तु क्या जाना है कि जो महाराजा राम व कृष्ण को भगवान न मानेगा उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देंगे। अरे यह भी जानों कि हमारे अन्तःकरण में जो भी महान् षत्रु बने बैठे है उनको नष्ट करें। ऐसा करने से तुम्हें वह ज्ञान हो जाएगा। महाराजा राम महाराजा कृष्ण के जीवन पर दृष्टि पहुँचाना उनकी वास्तविक पूजा है। उनके जीवन पर दृष्टि पहुँचा करके अपने जीवन को उन्हीं के तुल्य बनायें यही उनका मानना है। उनको भगवान् भी मान लिया जाए, परन्तु उनके जीवन पर दृष्टि तो पहुँचाओ। दृष्टि तो पहुँचानी नहीं तो उनको भगवान मानने से क्या

लाभ है। (सातवाँ पुष्प, विनय नगर, नई दिल्ली, 22 अगस्त, 1962)

वास्तव में आज लोगों ने महाराजा कृष्ण के जीवन को वास्तविक रूप में जाना ही नहीं, योगेश्वर कृष्ण की यौगिकता एवं उनके चरित्र को नाना प्रकार से लान्छित कर दिया है, और उनके बारे में, अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ लोगों ने फैला दी है। (तृतीय पुष्प, लोधी कलोनी, नई दिल्ली, 17 जुलाई, 1962)

भगवान् कृष्ण के जीवन में कितनी महान कठिनाइयाँ आई, आज का मानव उनके विषय में क्या-क्या उच्चारण करता है? परन्तु उन्होंने अपने जीवन में कोई पाप कर्म नहीं किया। वह महान थे। जो महापुरुष होते है, यथार्थ क्रान्तिवादी होते हैं। वे यथार्थ क्रान्ति ला करके समाज को ऊँचा बना देते हैं। (ग्यारहवाँ पुष्प, जारेबाग, नई दिल्ली, 31 जुलाई, 1962)

मुझे भगवान कृष्ण का जीवन स्मरण आने लगा, उनका जीवन कितना पवित्र था कितना महान् था। मैं तो परमपिता परमात्मा से कहा करता हूँ हे परमात्मा! संसार का यदि तुझे उत्थान करना है, प्राणी मात्र का उत्थान करना है तो भगवान् कृष्ण जैसों को जन्म दे जिससे यह संसार पुनः से वैज्ञानिक, ज्ञानी और ब्रह्म ज्ञानी बन करके अपने मानवत्व को जानने वाला बन जाये। राष्ट्र की भावनायें प्रत्येक मानव के हृदय मे हो। जब प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव-कन्या के हृदय में धर्म और राष्ट्र की चर्चायें होगी तो धर्म और राष्ट्र दोनों ऊँचे बनेंगे।

मैं उस परमपिता परमात्मा से याचना किया करता हूँ कि भगवान् कृष्णा को जन्म दे। आज भगवान् कृष्णा की आवश्यकता है। जिससे नाना प्रकार की दुष्टता समाप्त हो जाए। और सदाचार की तरंगे उत्पन्न हो जाए। (सातवाँ पुष्प, जम्मू, 30 सितम्बर, 1964)

भगवान् कृष्णा ने यह कहा कि राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए। धर्म और मानवता की रक्षा होना दोनों एक ही तुल्य होती है, क्योकि कि राष्ट्र हिंसक नहीं होना चाहिए। दुग्ध देने वाला जो पशु है वह राजा के राष्ट्र में अधिकतर होना चाहिए। जब ऐसे पशु अधिक होगे, तो राजा का राष्ट्र उन्नत होगा और उस राष्ट्र में बुद्धिमत्ता होगी। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन नई दिल्ली, 3 सितम्बर 1969)

अलौकिक पुरुष

भगवान् कृष्णा राष्ट्रीय विचारों में पारंगत थे, विज्ञान में पारंगत थे और कर्मकाण्ड में उनकी रुचि थी। वेद के पण्डित होने के नाते, वेद का ज्ञान होने के नाते वह महान आध्यात्मिक वेत्ता कहलाए जाते थे। वह गोपनीय विषय पर विचार-विनिमय करते रहते थे। आज का वह पुनीत सुन्दर दिवस है जब भगवान् कृष्णा का इस पृथ्वी मण्डल पर आगमन हुआ था। मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते है कि वह या तो मुक्त आत्मा थी अथवा उनकी मुक्ति में कुछ सूक्ष्मता रह गई थी। वास्तव में ये मोक्ष आत्माएं होती है जो संसार में आती हैं और

परोपकार करके चली जाती है। वह समाज के लिए कोई भी कर्म करते है परन्तु वह उनमें व्याप्त नहीं होते क्योंकि उनका विचार, उनकी प्रतिभा साधारण कर्म से उपराम होती है इसलिए मानव को उनका जीवन आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। उनके जीवन में यही विशेषता होती है कि वह साधारण से अलौकिक पुरुष कहलाते है क्योंकि वह दृष्टिपात करते हुए भी दृष्टिपात नहीं किया करते हैं, वह भोगों को भोगते हुए भी भोग नहीं किया करते हैं। क्योंकि महापुरुषों की यह एक विशेषता होती हैं समाज के हित में जो कार्य होते है उनको व्याप्ते नहीं है क्योंकि उनका जो जीवन है, उनकी जो अलौकिक विचारधारा है वह कोई विचार धारा नहीं होती। उनका जो पूर्व संस्कार, संकल्प होता है वह उस संकल्प को करने आते है। और उसी संकल्प के आधार पर उनके जीवन में अलौकिकता होती है। इसीलिए उन्हें भगवान् इत्यादि उपाधियां प्राप्त हो जाती है। भगवान् में क्या विशेषता है? भगवान् भी तो इस संसार में कार्य कर रहा है परन्तु प्रकृति उसको व्याप्त नहीं सकती। व्याप्य और व्यापक का सम्बन्ध होता है। इसीप्रकार महापुरुषों का और साधारण पुरुषों में भी व्याप्य और व्यापक रूपों से सुगठित सम्बन्ध होता है।

आज हम भगवान् कृष्ण के जीवन से शिक्षा पाने का प्रयास करें। महानन्द जी ने वर्णन कराया जहाँ उन्होंने गऊओं की, पशुओं की रक्षा की है वही आज का मानव उनको भक्षण कर रहा है।

उनका भक्षण नहीं करना चाहिए। महापुरुषों से हमें यही शिक्षा प्राप्त होती है। उनका एक ही मन्तव्य रहता है कि धर्म और मानवता की रक्षा होनी चाहिए, यौगिकता की रक्षा होनी चाहिए। सभी महापुरुषों का एक ही मन्तव्य रहता है इनके विचारों में सुगठितवाद रहता है। सुगठितवाद को सदैव विचार-विनिमय करना, प्रत्येक मानव और देवकन्या का कर्त्तव्य रहता है।

हम भगवान् कृष्णा के जीवन पर विचार विनिमय करें उनके जीवन से शिक्षा का अध्ययन करें। भगवान् कृष्णा ने कहा था, कि मोह-ममता में इतना तल्लीन नहीं होना चाहिए, कर्त्तव्यवाद प्रथम है और मोह ममता उनके पश्चात् रहती है। कर्त्तव्यवाद से अपना जीवन उन्नत बनाने के लिए मानव को सदैव तत्पर रहना चाहिए। सबसे प्रथम मानव का कर्त्तव्य होता है उसकी ऊँची प्रतिभा होती है उस प्रतिभा को विचार विनिमय करना है। हमें महानता को अपनाने का प्रयास करना चाहिए, जिसको अपनाने से हमारा जीवन, हमारी मानवता ऊँची बनती है। हम वास्तव में महापुरुषों के ऊपर विचार विनिमय कर सकें। बेटा! भगवान राम बारह कलाओं के जानने वाले थे और भगवान् कृष्णा षोडश कलाओं को जानने वाले थे। भगवान् राम प्रथम चार कलाओं को नहीं जानते थे। और भगवान् कृष्णा षोडश कलाओं को जानते थे। आज हमें महापुरुषों के उन वाक्यों को विचार विनिमय करना है जिन वाक्यों से हमारा जीवन, हमारा

राष्ट्रवाद, हमारी मानवता ऊँची बने। जितना भी समाज में, मानव में उत्तम विचार होंगे उतना ही पवित्र वातावरण होगा जितना वातावरण पवित्र होगा उतना ही प्रकृतिवाद सुन्दर होगा और जितना प्रकृतिवाद सुन्दर होगा, परमाणुवाद सुन्दर होगा उतनी ही प्रकृति से हमें हानि नहीं हो सकेगी। इसलिए बेटा, महापुरुषों की आवश्यकता होती है। महापुरुषों के जन्म दिवस को मानने की इसीलिए उत्कृष्ट इच्छा होती है क्योंकि उनका कार्य हमारे समक्ष आता रहे उनके जीवन और उनकी प्रतिभा से हम शिक्षा का अध्ययन करते रहे हैं, पान करते रहें।

बेटा! देखो जो विरेचन प्रकृति के, दैत्य प्रकृति के होते हैं वह शरीर के पालन-पोषण में लगे रहते हैं, शरी को ही आत्मा स्वीकार करते है और जो देवता होते हैं वह इस शरीर को आत्मा नहीं स्वीकार करते वह केवल आत्मा को जानते हुए देवता पद को प्राप्त होते चले जाते हैं। (दसवाँ पुष्प, उज्जैन, 10 मई, 1968)

इन्द्रप्रस्थ

रघुकुल प्रणाली में इसी इन्द्र्प्रस्थ में महाराजा दलीप जी ने राज्य किया था, इसी इन्द्रप्रस्थ में महाराजा युधिष्ठिर की पताका फहराई। इसी इन्द्रप्रस्थ में न जाने क्या-क्या हुआ, यवनों का राष्ट्र भी रहा। अरे, इस इन्द्रप्रस्थ में जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया तो यहाँ दुर्योधन आ गये और विचारा कि यह पाण्डवों का यज्ञ

भ्रष्ट हो जाए। परन्तु देखो! जहाँ कोई प्राणी किसी को नष्ट करना चाहता है तो उसके नष्ट करने से वह नष्ट नहीं होता, परन्तु जब नष्ट होता है तो अपने कर्मो से ही नष्ट होता है वह अपने प्रारब्ध से ही नष्ट होता है, किसी के नष्ट करने से कोई मानव नष्ट नहीं हुआ करता, यह विचार लो।

महाराजा दुर्योधन ने तो हस्तिनापुर के आंगन में विराजमान होकर यहाँ तक कहा था कि ''मैं, पांडवों को इतनी भूमि भी नहीं देना चाहता जितना, श्वास का एक परमाणु पृथ्वी पर गिर जाता है।'' परन्तु वह कहाँ चले गये? उनका संसार में हमें चिन्ह भी प्राप्त नहीं होगा। अरे, आज के मानव! तू भी तो इन्द्रप्रस्थ की भूमि पर विराजमान होकर कुछ विचार कि इन्द्रप्रस्थ की भूमि किसी की नहीं हुई, इन्द्रप्रस्थ ही नहीं, यह पृथ्वी मण्डल ही किसी का नहीं होता। इसमें जो भी आता है, कर्म करता और चला जाता है। ऊँचे कर्म कर लो, ऊँचा प्रारब्ध कर लो, साम्यवाद को विचार लो प्रजातन्त्र को विचार लो उसके अनूकुल कर्म कर लो अन्यथा न करो। परन्तु मानव का यह शरीर सदैव इस प्रकार का नहीं रह पाता। (ग्यारहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 30 जुलाई, 1998)

२ गीता का उपदेश

अर्जुन का युद्ध से पूर्व संशय

द्वापर के काल में महाभारत का संग्राम प्रारम्भ हो रहा था। दोनों पक्ष की सेना विराजमान थी। भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों भी विराजमान थे। अर्जुन ने कृष्ण से कहा कि ''प्रभु! मैं दोनों पक्षों की सेनाओं को दृष्टिपात् कर रहा हूँ, कैसी विशाल सेनाएँ हैं। ये हमारे कुल का कल्याण चाहने वाली सेना हैं और हमारे कल्याण के लिये नाना राजा, महाराजा एकत्रित हो रहे हैं। दोनों सेनाओं के मध्य भगवान् कृष्ण और अर्जुन विराजमान हैं और जब दोनों सेनाओं की दृष्टिपात् करने लगे तो, अर्जुन ने दृष्टिपात् किया। कि यहाँ तो अपना ही वंशलज विराजमान है, अपने ही सम्बन्धी विराजमान हैं और एक-दूसरे प्राणी को हनन करने के लिये तत्पर हैं। बाबा भीष्म, जो राष्ट्रपिता कहलाते हैं जो आदित्य ब्रह्मचारी हैं अपने आसन पर विराजमान हैं। उस काल में अर्जुन का हृदय विदीर्ण हो गया, कम्पायमान हो गया और वह भगवान् कृष्ण से कहता है कि महाराज! हे जनार्दन! मैं यह क्या दृष्टिपात् कर रहा हूँ? मैं यहां अपने कुटुम्ब को दृष्टिपात् कर रहा हूँ, यह हमारे कल्याण के लिये विराजमान हैं अथवा अकल्याण के लिये? जब इन वाक्यों को भगवान् कृष्ण ने श्रवण किया तो वह अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! यह तुम क्या वाक्य उच्चारण कर रहे हो? यह वाक्य तुम्हारे

मुखारबिन्दु से शोभा नहीं देते क्योंकि यह अज्ञान है, यह अज्ञानमयी जीवन है। अर्जुन ने भगवान् कृष्णा से कहा कि मैं संग्राम नहीं चाहता। मैं लोक के लिये अपने कुटुम्ब को समाप्त नहीं करना चाहता हूँ। भगवान् कृष्णा ने विचारा कि अब क्या करना चाहिये इसको तो अज्ञान छा गया है, ममता आ गई है। यह ममता ही मानव का हृसकर देती है, मानव के जीवन का विनाश कर देती है, कर्त्तव्य की अव्हेलना कर देती है। यहाँ कर्त्तव्य होना बहुत अनिवार्य है। उन्होंने अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! यह युद्ध करना तो तुम्हारा कर्त्तव्य हैं। उनमें जो आत्मा प्रवेश कर रही है, गति कर रही है उस आत्मा का विनाश नहीं होता। यह आत्मा सदैव एक रस-रहने वाली चेतना है। यह शरीर तो विनाशता को प्राप्त हो जाता है। आज तुम आत्मा के लिये मोह करते हो या शरीर के लिए। दार्शनिक मानव कहता है दर्शनं गृहा कृताः विश्वस्त प्रह्न कृतवस्तः'। हे अर्जुन! दर्शनकार कह रहा है कि ''जो वस्तु परमाणुओं से निर्मित होती है उस वस्तु का विनाश अनिवार्य है।'' और जब विनाश अनिवार्य है तो उसके लिए शोक करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है और जिस वस्तु का विनाश नहीं होता, जो सदैव एक रस रहने वाली है उसके लिए शोक करना तुम्हारे लिए व्यर्थ है। (देवपूजा, अमृतसर, 16 मई, 1975)

कृष्णा का उपदेश

संग्राम में जब अर्जुन ने शस्त्र त्याग दिये थे तो महाराजा कृष्णा ने

अर्जुन से कहा था ''अरे, अर्जुन! तुम किस काल की वार्ता उच्चारण कर रहे हो, यह तुम्हारे योग्य नहीं है, यह काल तो तुम्हारे संग्राम करने का है। यह आत्मा तो समाप्त नहीं होती। तू कौन सी अज्ञानता में आ रहा है? जब यह आत्मा समाप्त ही नहीं होती तो, तू किसको नष्ट करेगा, सब आत्माएँ विभु हैं, यह न जन्म लेती है न मृत्यु को प्राप्त होती है। यह आदेश पा करके अर्जुन ने प्रश्न किया, ''भगवन्! मैं यह जानना चाहता हूँ कि जब यह आत्मा समाप्त ही नहीं होती तो इसे अज्ञानता के कर्म में क्यों लगा रहे हो? उस समय योगेश्वर कृष्ण ने कहा, 'अरे अर्जुन! मानव का जैसा कर्म होता है, वैसा उसे भोगना पड़ता है। समय के अनुकूल कर्म करना भी अनिवार्य है। अपने कर्त्तव्य को पहचान।'' तो देखो! आज मानव का कर्त्तव्य है कि समय के अनुकूल कार्य करें। शुभ वातावरण आए, शुभ वातावरण को भोगे। यदि समय अशुभ आ जाए तो वहाँ भी शुद्ध भोगने की चेष्टा होनी चाहिए जैसा हमारा धर्म कहता है। उसके अनुकूल अपने जीवन को अवश्य ऊँचा बना लेना चाहिए।

मानव जैसा कर्म करता है वैसा उसे भोगना अनिवार्य है। अन्तःकरण में उसके संस्कार नियुक्त रहते है परन्तु प्रतीत नहीं कि मानव का अन्तःकरण किस काल में जाग जाये। आज मानव को, विचारना चाहिए कि हमने जो कर्म किया है वह हमें भोगना अनिवार्य हैं इसलिए हमें शुभ कर्म करना चाहिए। (तीसरा पुष्प, सरोजनी

नगर, नई दिल्ली, 9 मार्च, 1962)

भगवान् कृष्णा जिस समय कुरुक्षेत्र में युद्ध से पूर्व कौरव पाण्डव की सेनाओं के मध्य विराजमान थे, अर्जुन सखा उनके सहित थे। महाराजा अर्जुन, दोनों पक्षों को दृष्टिपात् करके शोकातुर हो गए, शोक में तल्लीन हो गए तो उस समय भगवान् कृष्णा ने कहा कि हे अर्जुन! यह मोह तुम्हें इस प्रकार क्यों आया है? देखो कर्त्तव्यवाद को जो मानव मोह के वशीभूत होकर त्याग देता है उस मानव का यह लोक और परलोक दोनों नहीं रहा करते, इसलिए आज तुम शोकातुर न हो। आज तुम अपने कर्त्तव्य और क्षत्रियपन को न त्यागो। तब अर्जुन ने कहा कि महाराज! आपने जो यह कहा कि ''सूर्या अंग्रते अब्रभाकृतिः'' कि सूर्य और अथर्वा को मैंने ज्ञान दिया, तो प्रभु! सूर्य तो परम्परागतों से है और अथर्वा को हुए बहुत समय हुआ और आपका जन्म तो हमें अभी प्रतीत होता है। उस समय भगवान् कृष्णा ने एक ही वाक्य कहा था कि हे अर्जुन! मै। उन जन्मों को जानता हूँ परन्तु तू नहीं जानता। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाउन, नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

भगवान् कृष्णा ने कहा कि ''हे अर्जुन! तू नहीं जानता और मैं जन्मान्तरों के बहुत से जन्मों को जानता हूँ क्योंकि मेरा जो जन्म है यह यौगिकता से परिणत रहता है। वह एक सुन्दरता से सुगठित रहता है। इसलिए हे अर्जुन! आज तुम मुझे जानने का प्रयास करो।

यह ज्ञान जो मैं आज तुम्हें अर्पित करा रहा हूँ यह ज्ञान और विज्ञान मैंने अथर्वा को और सूर्य को भी दिया था। पूर्व में भी कराता चला आया हूँ और इसके पश्चात् भी कराया है। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

मैं बहुत से जन्मों को जानता हूँ परन्तु तू नहीं जानता है। वैवस्वत जो भगवान् मनु जी हुए हैं वह भगवान् मनु द्वितीय काल में हुए परन्तु उससे पूर्व काल में वह स्वायम्भव मनु महाराज के नाम से हुए। सर्वसृष्टि में चौदह मन्वन्तर होते हैं और चौदह मनु होते हैं। एक-एक मनु एक-एक अक्रत समय में आता रहता है। देखो, चार अरब बत्तीस करोड़ कुछ वर्ष की सृष्टि की अवस्था होती है। परन्तु उन अवस्थाओं में चौदह मनु होते हैं, ब्रह्म की सहस्त्र आयु होती है और चौदह मन्वन्तर होते है और प्रत्येक मन्वन्तर में एक मनु होता है। सृष्टि के प्रारम्भ में जो प्रथम मनु था, वह मनु भगवान् कृष्ण के 'रूपां वृत्ति आस्ति आत्मा ब्रह्मे कृति, वही आत्मा थी जिन्होंने सूर्य और अथर्वा को ज्ञान दिया क्योंकि सूर्य और अथर्वा सर्वप्रथम मन्वन्तर में हुए। इसी प्रकार द्वितीय मनु यह सातवां मन्वन्तर चल रहा है यह भी कुछ काल में समाप्त हो जाएगा और आठवां प्रारम्भ हो जाएगा। एक मन्वन्तर की आयु वृति मानी गई है जैसे ब्रह्मा का एक अहोरात्र होता है। अहोरात्र भी बड़ा विलक्षण माना गया। ब्रह्म की एक रात्रि एक कल्प के समान होती है, और एक कल्प के समान ब्रह्म का एक

दिवस होता है इसी प्रकार ब्रह्म की सौ वर्ष की आयु होने के पश्चात् यह सृष्टि का प्रारम्भ समाप्त हो जाता है। (बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, 3 सितम्बर, 1969)

भगवान् कृष्ण का जीवन किस प्रकार था। जिस समय उन्होंने महाराजा सूर्य और अथर्वा को ज्ञान दिया उस समय भगवान् कृष्ण कौन थे? यह विचारना है महाराज सूर्य को वैदिक ज्ञान और विज्ञान का प्रसारण कराने वाला कौन था? ऐसा कहा जाता है कि यही भगवान् कृष्ण का आत्मा ही मनु जी का आत्मा था। उस काल में मानो कृष्ण का आत्मा ही मनु जी के शरीर में प्रविष्ठ हो रहा था। भगवान् मनु की पद्धतियों में प्रायः आता रहता है कि उनके जीवन में एक अग्नि की प्रतिभा ओत-प्रोत रही। भगवान् मनु ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय विधान बनाया और उन्होंने कहा कि धर्म और मानवता की रक्षा करना राष्ट्र का परम उद्देश्य है। जिस राजा के राष्ट्र में धर्म और मानवता की रक्षा नहीं होती उस राष्ट्र की पद्धति को कदापि भी नहीं चुनना चाहिए। इस आत्मा का प्रथम जन्म भगवान् मनु का हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने महाराजा सूर्य और अथर्वा को ज्ञान दिया क्योंकि भगवान् मनु के पुत्र का नाम सूर्य था। वह सूर्य नाम का महान राजा था। उसके पश्चात् उनके पुत्र का नाम अथर्वा था। उन्हीं को उन्होंने वह ज्ञान की विचार धारा और राष्ट्रीय पद्धति का वर्णन कराया और ब्रह्म ज्ञान दे करके वह अपने परमधाम को प्राप्त हो गए थे।

(बारहवाँ पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1969)

महाराजा अर्जुन से कई स्थान में कहा है कि हे अर्जुन! अपने जन्म जन्मान्तरों की बहुत-सी वार्ताओं को मैं जानता हूँ और तू नहीं जानता। महाराज कृष्ण ने केवल एक ही गान गया कि देखो, मैं जानता हूँ और तू नहीं जानता, यह आत्मा अमर, अजर, अविनाशी है और विभु (स्थिर, सर्वत्र गतिशील) है। देखो, यह परमात्मा महान् है। यह न कदापि जन्मता है और न कदापि नष्ट होता है, तू इसे मेरे अर्पण कर। मुनिवरों देखो, यहाँ गुरु और शिष्य का भाव आ जाता है। जब गुरु को शिष्य का अज्ञान समाप्त करना होता है, अज्ञान नष्ट करना होता है तो ज्ञानी गुरु अज्ञानी शिष्य से कहता है कि हे अज्ञानी! तेरे में जो अज्ञानता है वह मुझे दे, उसे तू मुझे अर्पण कर दे और हर प्रकार से तू मुझे ही मान और जब तू मुझे मान जाएगा, और अच्छी प्रकार जान जाएगा। जब तू ज्ञानी (गुरु) को अच्छी प्रकार जानेगा तो उस समय ज्ञानियों के भी ज्ञानी (गुरु) उस पूर्ण ज्ञानी परमात्मा को पा करके महान ज्ञानी बन जाएगा। (प्रथम पुष्प, लोधी रोड, नई दिल्ली, 1 अप्रैल, 1962)

कर्त्तव्य पालन का उपदेश

महाभारत के काल में 'अब्रतं ब्रह्मः बाचश्यब्रह्मा' भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों का सम्वाद कुरुक्षेत्र में सेनाओं के मध्य में प्रारम्भ हुआ। जब सेना के मध्य में दोनों के विचारों का संग्राम हो गया,

विचारों में मतभेद हुआ, नाना प्रकार के विचार एक दूसरे के विपरीत बने। परन्तु विपरीतता में यह हुआ, कि भगवान् कृष्ण ने कर्त्तव्यवाद के ऊपर अर्जुन से कहा कि हे अर्जुन! तू तो अपने कर्त्तव्य का पालन कर, क्योंकि कर्त्तव्य ही संसार में एक महान् है, कर्त्तव्य ही मानव को ऊँचा बनाता है। उन्होंने कर्त्तव्य की विवेचना करते हुए कहा कि हे अर्जुन! ब्रह्म को अपना साक्षी करते हुए, ऐसा हो जाना चाहिए कि उसमें कर्म करते हुए आसक्ति नहीं होनी चाहिए। एक मानव आसक्ति वाला होता है, एक उससे रहित होता है; आसक्ति रहित होना कर्त्तव्यवाद का पालन करता है। जैसे एक मानव न्यायालय में न्यायाधीश है। उसके समक्ष न्याय के लिए उसका पुत्र और एक समाज का प्राणी है, परन्तु न्यायालय में न्यायकर्त्ता न्याय करना चाहता है तो यदि न्याय को निष्पक्ष हो करके करता है तो वह कर्त्तव्य का पालन करता है। कर्त्तव्य का पालन न करके दोनों ही एक ही प्रकार से दोषारोपण होने वाले प्राणी हैं, इसीलिए भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा, हे अर्जुन! तुम कर्त्तव्य का पालन करो क्योंकि संसार में कर्त्तव्य ही मानव को ऊँचा बनाता है। जब मानव को विवेक होता है, और विवेक में यह जान लेता है कि जितना भी यह स्थूल जगत् है, यह स्थूल जगत् आज नहीं तो कल इसकी विकृतता होनी है, और यह स्थूल नहीं रहेगा सूक्ष्म बन जायेगा और मुझे सूक्ष्म को स्थूल बनना है। इस प्रकार की जब जागरूकता मानव के

अन्तर्हृदय में विद्यमान हो जाती है, वही अन्तर्हृदय उसका पवित्र बन करके उसे ऊर्ध्वा में ले जाता है। वह ऊर्ध्वा की वेदी पर ले जा करके अन्त में जब गुरु शिष्य का घनिष्ठभाव बन जाता है, तो आचार्य यह कहता है, पूज्यपाद कहता है, कि हे शिष्य! तू आ, मुझे अच्छी प्रकार से जान, तू अच्छी प्रकार से मुझे दृष्टिपात् कर, तेरा कल्याण होगा। जब तू संसार को, प्रभु को या और भी कृतियां को बाह्य-जगत् में अपने से दूर दृष्टिपात् करेगा, तो तेरा कल्याण नहीं होगा। तेरा कल्याण उस काल में होगा। जब तू अपने को कर्त्तव्यवादी बना करके, कर्त्तव्यनिष्ठ बना करके, और कर्त्तव्यनिष्ठ बनता हुआ अपने में आसक्त न होता हुआ क्रिया-कलाप करता चला जाता है, तो वह मानव महान बनता है, वह परमार्जित बनता है। तब अर्जुन ने कहा, कि प्रभु! यह मैं कैसे जानूँगा, इसको मैं कैसे अनुभव में लाऊँ? उन्होंने कहा कि तुम संसार को अपने में दृष्टिपात करो, जिससे तेरा मानवीय जीवन उस आभा में न रहे; परन्तु जब तू अपने कर्त्तव्यवाद का पालन करेगा, ममता को त्यागेगा, तो उस समय तेरी प्रतिभा ऊँची बन करके रहेगी।

भगवान् कृष्ण और अर्जुन में विचार विनिमय होता रहा। आत्मा के सम्बन्ध में और यौगिक विचारधारा के सम्बन्ध में, अन्त में, अपने में सूत्रित हो करके, उनसे (भगवान् कृष्ण) यह प्रश्न किया कि 'ब्रह्मरूपं ब्रह्म बचस्प्रही व्रतं देवो'' हे भगवन्! मैं तो यह जानना

चाहता हूँ, जैसा आप मुझे उच्चारण कर रहे हैं वैसा मुझे दृष्टिपात् कराइये। आप मेरे सखा हैं, आप मेरे पूज्य हैं, आप मुझे उस रूप को दृष्टिपात् कराइये जिससे मेरा कल्याण हों और मैं विश्वसनीय बन जाऊँ। तब भगवान् कृष्ण ने अपने वास्तविक स्वरूप को दृष्टिपात् कराया। उन्होंने कहा जब मानव व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश होता है तो समष्टि में सौम्यता आ जाती है और उस सौम्यता को तू दृष्टिपात् कर। उस समय उन्होंने अपने ब्रह्ममयी स्वरूप का वर्णन कराया और वर्णन कराकर इसके (अर्जुन) अन्तरात्मा में अपने को प्रवेश किया, तो उन्हें नाना प्रकार की प्राण सखा में, प्राण के ही रूपों में ले गए। जैसे 'प्राणसूत्रं ब्रह्म' जब प्राण की प्रतिक्रिया में योगी अपने शिष्य को ले जाता है, तो वह नाना प्रकार की नस-नाड़ियाँ हैं, उनमें जो विचरण करने वाला प्राण है, उस प्राण तत्त्व को आभा में लाना प्रारम्भ करता है। जब आभा में लाता है, तो वही प्राण कहीं रेचक में परिणत हो जाता है, वही प्राण कहीं कुम्भक में आता हुआ अपने में शून्यता को प्राप्त करा देता है। वही प्राण जब किसी एक अंग में लाना होता है तो प्राण के प्रवेश से वहाँँँ का अंग बलिष्ट बन जाता है। इसी प्रकार भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को इसी आभा में नियुक्त हो करके ''प्राणत्व ब्रह्मः'' प्राणसूत्र की विवेचना उन्होंने की। उस प्राण को अपने में पिरो करके यह कहा कि हे अर्जुन! तू मुझे दृष्टिपात् कर, तू मेरे में अर्पित हो, और मेरे में अर्पित हो करके तू मुझे

अन्तर्हृदय से दृष्टिपात् कर। संसार में गुरु शिष्य का कोई भी सम्वाद हो, वह उसी प्रकार उसे जागरुक करते रहे हैं। आधुनिक काल का ही यह जगत् नहीं हैं, परम्परागतों से ही अतीत के काल में भी, प्रायः ऐसा होता रहा है कि मानव, मानव में, अपनी प्रेरणा दे करकें, उसे प्रेरित करके, उसे प्रभावित करके, उसे सुमति में लाता रहा है। उसे उसी स्वरूप में परिणत करता रहा है। मैंने बहुत पुरातनकाल में वर्णन करते हुए कहा था कि मानव को अपनी मानवीयता पर इतना गौरव और इतना विचित्र सूक्ष्म ज्ञान होना चाहिए कि वह अपनी प्रतिभा को जानने वाला बने। (तिरेपनवाँ पुष्प, माडल टाऊन, नई दिल्ली, 18 अक्टूबर, 1985)

संसार में शान्ति का प्रदर्शन करना चाहिए परन्तु शान्ति कई प्रकार से की जाती है। शान्ति डन्डे से भी की जाती है। शान्ति इसी को नहीं कहते कि मौन होकर बैठ जाओं। शान्ति इसको कहते है, कि जो हमारी शान्ति में बाधक बने उसकी धूर्तता को शान्त करके हमारे हृदय में शान्ति उत्पन्न करे। मुनिवरों! यह शान्ति का प्रदर्शन कई प्रकार का कहा जाता है जैसे स्वायम्भव मनु महाराज ने कहा है और जैसा महाराजा कृष्णा ने महाभारत युद्ध के आरम्भ में अर्जुन से कहा है कि 'हे अर्जुन! शान्ति का प्रतीक अपने कर्त्तव्यों का पालन करना है, अपनी मर्यादा का पालन करना है। यदि मर्यादा नहीं है, शान्त बने बैठे रहोगे तो शान्ति का कुछ नहीं बनेगा। शान्ति के साथ-

साथ मर्यादा भी होनी चाहिए। जब तक मर्यादा नहीं आयेगी तब तक शान्ति किसी राष्ट्र में नहीं होगी इस संसार को देखते हुए लाखों वर्ष हो गये हैं देखते चले आ रहे हैं और विचारते चले आ रहे है। इसीलिए शान्ति के साथ-साथ मर्यादा भी होनी चाहिए। जब तक शान्ति के साथ मर्यादा नहीं होगी तब तक मानव का कार्य किसी प्रकार नहीं चलेगा। (आठवाँ पुष्प, महरौली, नई दिल्ली, 6 नवम्बर, 1962)

वेद का आदेश है कि हे मानव! तू नम्रता के साथ सबका आदर कर। परन्तु इसके साथ वेद ने यह भी आदेश दिया है कि जब तक मनुष्य समय के अनुकूल व्यवहार नहीं करेगा तब तक मानव का कोई महत्व नहीं है। हमारे यहाँ दो प्रकार की अवस्थाएँ या विषय है दो प्रकार की नीतियाँ है एक आध्यात्मिक धर्म नीति है दूसरी तो दूसरी राजनीति। मुनिवरों! हमको तो धर्म के आध्यात्मिक विषय पर जाना चाहिए, क्योंकि यदि हम आस्तिकता को, सतोगुणों को प्रसारित करना चाहते हैं तो हमें सबकी आत्माओं के स्वभाव को ध्यान में रखकर सभी के साथ अर्थात् तमोगुणी के साथ भी, नम्रता और आदर के साथ व्यवहार करना आवश्यक है। तभी अपनी आत्माओं को उच्च बना सकेगे, तभी हम आध्यात्मिक वैज्ञानिक बन सकेंगे, अन्यथा हम आध्यात्मिक विज्ञान को कदापि किसी प्रकार भी नहीं पा सकेंगे।

महाराजा कृष्णा ने महाभारत युद्ध के आरम्भ में अर्जुन को कहा था कि हे अर्जुन! आज कठिन समय उपस्थित है। इस समय तेरा परमकर्त्तव्य है कि तू संग्राम करके षत्रुओं का नाश कर, समय के अनुकूल तेरा यही धर्म है। मुनिवरों! धर्म में पूरी-पूरी आस्था रखते हुए कभी भी मनुष्य को अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए। यह कितना सुन्दर एवं प्रबल मानव के लिए परमात्मा का आदेश है। परमात्मा का मानवों को वेद में उपदेश है कि हे मानवों! तुम एक दूसरे से प्रीति करो। परस्पर प्रेम-पूर्वक व्यवहार करो। भौतिक-विज्ञान और आध्यात्मिक- विज्ञान को जानकर अपने जीवन को उच्च बनाकर प्रकाश वाले कर्म करो। मुनिवरो! आज का मानव तो विचार रहा है कि अभी तो प्रकाश हो रहा है, परमात्मा ने कर्म के लिए बहुत समय दिया है। परन्तु हे मानव! ऐसा मत सोच, पता नहीं मानव का यह जीवन कब समाप्त हो जाए, इस शरीर को त्याग कर आत्मा कब कूचकर दे। इसलिए हे मानव! कल पर काम को मत छोड़। यह मत सोच कल कर लेगे। आह! इस कल से कल में मानव जीवन समाप्त हो जायेगा। हे मानव! फिर किसके प्रकाश में कार्य करेगा? मुनिवरो! आज मानव को विचारना चाहिए कि परमात्मा ने हमें प्रकाश के पाने का अवसर दिया है। उस प्रकाश में हमें, क्या कर्म करने चाहिए? यदि हम कर्त्तव्य कर्म नहीं करेंगे तो हमारा जीवन व्यर्थ हो जायेगा। भगवान् की ओर से जीव के लिए कितना मधुर आदेश है। इस

सुन्दर संसार में हम धर्म की तथा राजनीति की मर्यादा बाँध करके परलोक सिधारे। (द्वितीय पुष्प, लोधी कालोनी, नई दिल्ली, 3 अप्रैल, 1962)

जब इन वाक्यों का भगवान् कृष्ण ने उच्चारण किया तो अर्जुन ने कहा हे प्रभु! जब यह स्वाभाविक होने वाला कर्म है तो मुझे अकीर्ति वाले कर्म में क्यों परिणत कर रहे हो? उन्होंने कहा हे अर्जुन! यह तुम्हारा अज्ञान है। तुम अपनी अन्तरात्मा में ध्यानावस्थित हो जाओ। जब अर्जुन अपनी अन्तरात्मा को दृष्टिपात् करने लगे तो उन्हें आत्मिक शान्ति उत्पन्न हुई। ममता के स्थान पर सांत्वना की स्थापना होने लगी। भगवान् कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! संग्राम करना तेरा कर्त्तव्य है, और अकर्त्तव्यवादी प्राणी संसार में अपकीर्ति को प्राप्त होता है। प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को इस संसार में अपने-अपने कर्त्तव्य मार्ग को ग्रहण कर लेना चाहिये। संसार में कर्त्तव्य करने वाला महान् कहलाया गया है। प्रातःकाल में सूर्य उदय होता है, अपना प्रकाश लेकर आता है, संसार को तपायमान करता रहता है। प्रातःकाल से सांयकाल तक तपता रहता है। सांयकाल को अस्त हो जाता है, अन्धकार छा जाता है, शुक्ल पक्ष छा जाता है। कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष होते हैं। इसलिए हे अर्जुन! जब शुक्ल पक्ष आ जाये तो मानव को अभिमान में परिणत नहीं होना चाहिये और जब अन्धकार कृष्ण-पक्ष आ जाये, तो मानव को अपनी मानवीयता को, ह्रासता में

परिणात नहीं होने देना चाहिये। इसलिये हे अर्जुन! आज अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए मानवीयता में रमण करते चले जाओं।

(देवपूजा अमृतसर, 16 मई, 1975)

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को एक वाक्य कहा था कि हे अर्जुन! यह संसार एक समय मेरे शरण आ ही जायेगा। एक समय वह भी आता है जब प्राणी मात्र प्रभु के द्वार पर चला जाता है और उसे जाना होगा। क्योंकि जो सूक्ष्म समय का आनन्द भोग रहे हो, अन्तः में उन्हें कष्ट होगा इसीलिए मानव को चैतन्य हो जाना चाहिए। यहाँ द्रव्य एकत्रित कर उसका प्रसारण करो, उसको महान कार्यो में लगाते चले जाओ, उसका दुरुपयोग न करो, समाज में, राष्ट्र में कोई ऐसा कार्य नहीं होना चाहिए जिससे मानव का चरित्र भ्रष्ट हो जाये। (प्रथम पुष्प, जोरबाग नई दिल्ली, 31 जुलाई, 1968)

विराट रूप

इतना उपदेश देने के पश्चात् भगवान् कृष्ण ने कहा हे अर्जुन! तुम मेरी अन्तरात्मा में प्रवेश कर जाओ। जब अर्जुन ने उनकी अन्तरात्मा में प्रवेश किया तो उन्होंने, अर्जुन को ऐसा विराट रूप दिग्दर्शन कराया कि जिसमें अग्नि प्रदीप्त हो रही है, समुद्र अपनी आभा में स्थिर हो रहा है, वायु गति कर रहा है, जल तेज प्रवाह से गति कर रहा है, प्रकृति का चक्र चल रहा है, यह प्रकृति चक्र भौतिक पिण्डों में गति कर रहा है। यह सर्वत्रता में विनाश को प्राप्त

होता दृष्टिपात् हो रहा है। भगवान् कृष्णा ने लगभग एक घड़ी तक इस विराट रूप का दिग्दर्शन कराया तो उनकी (अर्जुन) अन्तरात्मा विशाल बन गयी। अर्जुन ने कहा, प्रभु! मेरा अज्ञान समाप्त हो गया है, अब मैं कर्त्तव्य का पालन करूँगा। आप मुझे जो दृष्टिपात् करा रहे हैं, मेरी आत्मा में जो प्रकाश दे रहे हैं। मैं, उससे भयभीत होना नहीं चाहता हूँ, मैं उस पामरता को प्राप्त करना नहीं चाहता हूँ। भगवान् कृष्णा द्वारा अर्जुन को यह विराट रूप योगाभ्यास से दृष्टिपात् कराया जा रहा था। योग नाम एक-दूसरे से मिलान का है, जब पच-महाभूतों के पिंड का निर्माण होता है, उनका योग होता है। इसी योग के आधार पर योगी प्राणायाम करते हैं और प्राणायाम करते हुए प्राण की गाति को रेचक और कुम्भक में परिणात कर देते हैं। वह दस प्राणों की आभा को जब मन रूपी सूत्र में पिरो देते हैं और मन रूपी सूत्र को जब परमात्मा अथवा ज्ञान में पिरोया जाता है तो उस समय एकमाला बन करके अन्तरात्मा को प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है।

आज हम यह विचारते चले जाएँ कि भगवान् कृष्णा अर्जुन की अज्ञानता को नष्ट करने के लिए, उसे प्रकाश में लाने के लिए अपनी सत्ता को प्रकाश में लाये। उस समय अर्जुन का यह अज्ञान समाप्त हो गया। यह विराट रूप क्या है? एक-दूसरे की आत्मा का दिग्दर्शन कराने का नाम विराट रूप माना गया है। आत्मा एक चेतना है। वह चेतना में पंचमहाभूतों के आधार पर स्थिर रहने वाला है। जब आत्मा

अपने स्वरूप में रमण करता है तो यह पचमहाभूत पृथक् दृष्टिपात् आते हैं और अपनी आत्म-चेतना उसे पृथक् दृष्टिपात् आने लगती है। मेरे प्यारे! यह मन और प्राण ही इस प्रकृतिवाद में दृष्टिपात् आ रहा है, यह ही प्रकृति के चक्र को चला रहा है। प्राण से संसार का विभाजन होता है। मन से क्रिया का भेद होता है, ज्ञान की प्रतिभा उत्पन्न होती है। मन एक वस्तु को विभाग में लाता है। एक विभक्त करने वाला और एक विभाजन होने वाली दो शक्तियाँ संसार में अपना कार्य कर रही हैं।

मेरे प्यारे! ढाई घड़ी के उपदेश में भगवान् कृष्ण ने यह ब्रह्म का दिग्दर्शन कराया। एक घड़ी तक आत्मा को ब्रह्म का चिन्तन करने के लिए आशवस्त किया और कहा, हे अर्जुन! तुम आत्मा को जानो, आत्मा को भोजन देने का प्रयास करो। आत्मा को भोजन देने वाला प्राणी संसार सागर से पार हो जाता है। संसार की आभाओं में वह आभायित होता रहता है। इसके पश्चात् भगवान् कृष्ण कह रहे हैं हे सखा! यदि उससे भी अज्ञान समाप्त नहीं होता तो तुम मेरे में अपनी आत्मा को प्रवेश कराओ। वह आत्मा में ध्यानावस्थित हो गए और उस प्रभु का चिन्तन करने लगे। जब प्रभु के आँगन में भौतिक पिंड की गति प्रारम्भ हुई तो चक्र चलता दृष्टिपात् हुआ। प्रकृति का चक्र चल रहा है जिसमें कोई मृत्यु को प्राप्त हो रहा है कोई जीवन को प्राप्त हो रहा है। मृत्यु है, जीवन है, मरण है और यह प्रकृति के चक्र

में दृष्टिपात् हो रहा है। उन्हें दृष्टिपात् आ रहा था कि दोनों सेना मृत्युकाल के आंगन में विराजमान है। भगवान् कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! बिना समय के मानव की मृत्यु नहीं होती। वास्तव में मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, मृत्यु केवल अज्ञानता में दृष्टिपात् आती है। आज तुम अपने जीवन के अन्धकार को शांत करो, प्रकाश में आओ। आत्मा का आत्मा से मिलान हुआ, आत्मा से आत्मा को जागरूकता आई। वह भी पुरुष था, जिसको ममता नहीं आई और वह भी पुरुष था, जिसको ममता आ गयी।

भगवान् कृष्ण बोले हे अर्जुन। तुम्हें यह प्रतीत है कि 'ब्रह्मे कृतः उत्तमं ब्रह्म लोकः प्रह्वा क्रतं सप्तमं लोकाः' कि मैं भी तुम्हारे समीप विराजमान हूँ और तुम भी मेरे सखा हो। मेरे समीप तुम्हारा जीवन प्रतिभा में परिणत हो रहा है, तुम्हें ज्ञान की उस आभा मे जाना है जिस आभा में योगी जाता है, उसे मृत्यु से भी भय नहीं होता। यह जिनके तुम कल्याण के लिए कहते हो इनका समय निकट आ रहा है, यह मृत्यु के मुखारबिन्दु में विराजमान है तुम इन्हें नष्ट न करोगे, अपने कर्त्तव्य का पालन न करोगे तो उसके पश्चात् भी इन्हें अपने शरीरों को त्यागना है। हे अर्जुन! मुझे संसार की ममता नहीं आती, कारण क्या है? कि आत्मा का भोजन जिस मानव को प्राप्त हो जाता है वह इस संसार में उपरामता को प्राप्त हो जाता है। आत्मा का भोजन रूप, रस, गंध कहलाया गया है। इस रूप, रस, गंध को एक

स्वरूप में ला करके, एक प्रतिभा बना करके, वास्तविक स्वरूप को अपनी अन्तरात्मा को प्राप्त करा करके, कर्त्तव्यवादी बन करके अपनी आभा में रमण करता रहता है। जब यह उपदेश दिया, विराट रूप का वर्णन कराया, प्रकृति-चक्र का ज्ञान कराया तो मेरे प्यारे! अर्जुन का अज्ञान नष्ट हो गया।

भगवान् कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! वह भी तो महापुरुष हैं, जो अपनी ममता को त्याग करके ज्ञान सागर में चले जाते हैं, परमात्मा के क्षेत्र में चले जाते हैं, परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। वह भी मानव हैं जो स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों को जानते हुए परमात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। वह त्याग और तपस्या से शरीर को त्यागते चले जाते हैं, स्थूल शरीर को त्यागते हैं। उनका आत्मा बिना माता-पिता के भी इस शरीर को ग्रहण करता रहता हैं, पुनः जब उनका आत्मा सूक्ष्म शरीर में चला जाता है, प्राण और मन के द्वारा आत्मा में इतनी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि कारण और कार्य दोनों को अपने वशीभूत करता हुआ अपनी संकल्प शक्ति से वायुमण्डल में जो पच महाभौतिक तरंगें भ्रमण कर रही हैं उन पच-महाभौतिक तरंगों को वह अपने हृदय में धारण करके, वह आत्मा स्थूल, सूक्ष्म दोनों शरीरो को अपनी संकल्प शक्ति से प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् वह लिंगमय ज्योति में चला जाता है। लिंगमय शरीर में जाने से यह उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। जो संसार का निर्माता है,

जो इस संसार को धारण करने वाला है। जो इस संसार की आभा से युक्त होने वाला है, उसको प्राप्त होता रहता है। जब अर्जुन ने भगवान् कृष्ण के इन वाक्यों को श्रवण किया, तो उनका अज्ञान नष्ट हो गया। भगवान् कृष्ण ने उन्हें ब्रह्म का उपदेश दिया, आत्मा-परमात्मा के स्वरूप का वर्णन कराया। अज्ञान को नष्ट कराने वाले महापुरुष होते हैं। महापुरुषों की गोद में जाना मानव को अनिवार्य है और महापुरुष यह भी जानता है कि यह अधिकारी है अथवा अनाधिकारी है। अधिकारी, अनाधिकारी को जानने वाला, मथन करने वाला ब्रह्मवेत्ता कहलाता है। (देवपूजा, अमृतसर, 16 मई, 1975)

भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों का संवाद आधुनिक काल में यह मानव के मनों में रत हो गया है। उसने यह अपनाया है कि दोनों का संवाद कुरुक्षेत्र में हुआ था। जब दोनों का संवाद होता रहा तो उस संवाद ने अर्जुन के अज्ञान को समाप्त किया। परन्तु जहाँ ज्ञान और अज्ञान का सम्बन्ध है, वहाँ यह विचार आता है कि कुरुक्षेत्र में जब भगवान् कृष्ण ने अर्जुन की ममता का मानो 'अहं भाव' को समाप्त करने का प्रयास किया, और जब मैं यह विचारने लगता हूँ कि वास्तव में यह वाक्य यथार्थ है अथवा नहीं, तो यही वाक्य आता है कि अज्ञान को समाप्त करने के लिए मानव सर्वत्र प्रयास करता है। गुरु और शिष्य दोनों का समन्वय होता है। गुरु और शिष्य दोनों के कर्त्तव्य में विकृतता आ जाती है उस समय आचार्य, गुरु कहता है

कि तू सर्वत्रता को मेरे अर्पण क्यों नहीं कर रहा है? इसे अर्पण कर, जिससे तेरे में ज्ञान की उपलब्धि हो इसलिए अज्ञान को तू मुझे प्रदान कर। जब वह आभास करता है तब भी उसके आंगन में नहीं आता। जब आंगन में नहीं आता तो कुछ ऋषि इस प्रकार के कठोर तपस्वी होते हैं जो अपना किया हुआ, अपना जो मानवीय विचार होता है, मन्थन किया हुआ अनुसंधान किया हुआ तरंगवाद होता है उसे दूसरे मानव पर तरंगित करके उससे जो चाहता है उससे उच्चारण करा देता है अथवा वही क्रिया-कलाप उससे करा लेता है। हमारे जीवन में नाना प्रकार की विद्यायें समावेश हो रही है उसमें विज्ञान दृष्टिपात् नहीं आ रहा है।

भगवान् कृष्ण के जीवन में मानो जब अर्जुन को अन्धकार आया, अज्ञान आ गया तो उस समय उन्होंने अपनी मनोनीत, मन और प्राण को एक सूत्र में ला करके और उनके अज्ञान को समाप्त किया। भगवान् कृष्ण ने कहा, हे अर्जुन! यहां तो सर्वत्र प्राण के सूत्र में पिरोया हुआ जगत् का प्रत्येक प्राणी है मानो जितना भी प्राणी है चाहे वह जड़ हो या जगत् का प्राणी क्यों न हो परन्तु वह एक चेतना से प्राणमयी आभा से पिरोया हुआ दृष्टिपात् आता है। जब उन्हें यह प्रत्यक्ष कराया कि प्राण एक सूत्र है, जिस सूत्र में इस ब्रह्माण्ड का प्रत्येक प्राणी पिरोया हुआ है। तो अर्जुन को यह ज्ञान हो गया कि वास्तव में यह प्राण ही प्राण है, यह मन ही मन है। जहाँ पृथ्वी में

पहुंचे वहाँ उन्हें यह क्रिया दृष्टिपात् आने लगी। परिणाम यह हुआ कि अर्जुन ने उसी समय नतमस्तक हो करके कहा प्रभु! मैं संग्राम करने के लिए तत्पर हूँ। उन्होंने कहा हे अर्जुन! यह जो संसार है यह पीपल के वृक्ष की नाई कहलाता है। जैसे पीपल के वृक्ष के पत्ते ही इसके 'पत्रं वेदत्तमम्' माने गये हैं, और उसकी जो शाखाएँ हैं वे नदियां मानी जाती हैं और उसका जो तना है वह पृथ्वी मंडल माना जाता है, और उसकी जो जड़ है वह ॠचन्तत कहलाया जाता है वह समुद्र के तुल्य कहलाया गया है। इसी प्रकार जब तुम इस प्रकार के भावों को ले करके गीताजलि को अर्पण करने लगोगे। अपने जीवन के गान गाने लगोगे। जैसे प्राण और मन गान गा करके वह गीताजलि गान गा रहा है, प्राणमयी तो शब्द होता होता है, उस शब्दों में ही विचित्र आभाएँ होती हैं। उन्हीं शब्दों की धाराओं से यह सर्वत्र जगत् शब्दायमान हो रहा है। चाहे वह शब्द परमाणुवाद में हो, चाहे वह शब्द सूर्य और पृथ्वी के उद्गीत गाने से हो, चाहे आचार्य यज्ञशाला में विद्यमान हो करके उद्गान गा रहा हो वह प्राण का ही शब्द है। जिससे यह सर्वत्र जगत् शब्दायमान हो रहा है आज तुम अज्ञानता में आ गए हो। यह तुम्हें शोभनीय नहीं है। परन्तु उन्होंने योग मुद्रा में प्रवेश करके उनके अन्तरात्मा में जो अज्ञान था उसे समाप्त किया। यह वाक्य गुरुदेव ने वर्णन कराया था। उसे 'विराट नवीन स्वरूप' कहा जाता है।

विराट स्वरूप किसे कहते हैं? जो मानव इस ब्रह्माण्ड का यथार्थ वर्णन करा देते हैं उसको यथार्थ यौगिकता में ला देता है। जैसे ब्रह्माण्ड है, ब्रह्माण्ड को जो पिण्ड में घटित कर देता है। जिससे पिंड में जो ब्रह्माण्ड की आभा दृष्टिपात् आती रहती है तो यह गागर में सागर की कल्पना है, और वही ब्रह्माण्ड को पिण्ड में और पिण्ड को ब्रह्माण्ड में परिणत कर देता है। वही विराट स्वरूप को जानने लगता है, वही विराट स्वरूप माना गया है। जो यह जान लेता है कि मेरे चक्षुओं पर जो देवता विराजमान है वह अश्विनी कुमार है, घ्राण पर जो दो देवता हैं, जिनमें एक पर कश्यप है तो दूसरे मित्राणि कहलाया जाता है। तो प्रत्येक इन्द्रियों पर वह देवता विद्यमान है। किसी पर सूर्य तो किसी पर चन्द्रमा है। किसी पर पृथ्वी है, किसी पर अग्नि है, तो किसी पर वायु है, किसी पर अन्तरिक्ष की तरंगें अपना कार्य कर रही हैं। मानो ब्रह्माण्ड को पिण्ड में और पिंड को ब्रह्माण्ड में जो दृष्टिपात् कराना जानता हो वह विराटमय ब्रह्म के स्वरूप को जानता है।

प्रत्येक मानव ब्रह्म के सम्बन्ध में नाना प्रकार की मनोनीत हृदय की धारायों में से जिस मार्ग को अपना लेते हैं वही ब्रह्म से पूर्ण दृष्टिपात् आने लगता है। जिसकी आभा को मानव अपनाना चाहता है। परन्तु मार्ग केवल एकाकी ही माना जाता है जो सर्वत्र मार्गो में परिणत माना गया है। (पैतिसवाँ पुष्प, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, 7

नवम्बर, 1977)

निष्पक्षता

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कहा था कि हे अर्जुन! संसार में मानव को निष्पक्ष रहना चाहिए और निष्पक्षता उसी को कहा जाता है जो 'सर्व भूतेषु' सबमें एक ही आत्मा का दर्शन करता है, सब में एक चेतना का दर्शन करता है। सबमें चेतना का दर्शन जब तक नहीं होगा, तब तक निष्पक्ष कहना तुम्हारे लिए व्यर्थ बन जायेगा। वास्तव में दृष्टिपात् किया जाए तो इन विचारों में भगवान् मनु थे जिन्होंने मछली से लेकर प्रत्येक प्राणी की रक्षा के लिए राजा को उद्घोष किया था और राजा को यह कहा था कि प्रत्येक प्राणी की रक्षा होनी चाहिए। आज प्रत्येक मानव यह कहता है, राष्ट्रवेत्ता यह कहते हैं कि हम निरपेक्षिता में रहना चाहते हैं, हम निष्पक्षता में विश्वास करते है। अरे मानव! तूझे निष्पक्षता को जानना होगा तभी तो विश्वास करेगा और जब जानता ही नहीं, तो विश्वास ही क्या होगा है? विचारना यह है कि निष्पक्षता को कौन जानता है, कौन विचारता है? केवल इसलिए कि उनकी स्वार्थपूर्ति हो जाए इन शब्दों को उच्चारण कर ले और उनका स्वार्थपूर्ण हो जाए तो इसका नाम आज राष्ट्रवाद कहलाता है। आधुनिक काल का यह जो वायुमण्डल है विज्ञान के द्वारा, विचारों के द्वारा, अकर्मण्यता के द्वारा दूषित हो रहा है इसका एक ही क्रियाकलाप है कि राजा याग करने लगे, प्रजा याग करने

लगे। विचारों की सुगन्धि वायुमण्डल में प्रसारित होगी, तो वही राष्ट्र को, समाज को ऊंचा बना सकती है। परन्तु जब तक नाना प्रकार की रूढ़ियां पनपती रहेंगी, जब तक सत्य को सत्य नहीं कहा जाएगा, मिथ्या को मिथ्या नहीं कहा जाएगा, तब तक मानव का कल्याण होने वाला नहीं है, राष्ट्र और समाज का कल्याण होने वाला नहीं है। सत्य में ब्रह्म है और जड़वत् में सर्वत्र प्रकृति का ब्रह्माण्ड है और वह ब्रह्म से पिरोया हुआ है, इसीलिए वह सत्यमयी बन जाता है। निष्पक्ष उसे कहा जाता है जो अपनी आत्मा को जान ले और उसे सर्व भूतेषु स्वीकार करे क्योंकि यह पचमहाभूत ही सर्वत्र क्रियाकलाप कर रहे हैं। अरे, उन मानव को तुम निष्पक्ष कहते हो जो गऊ और प्राणियों का भक्षण कर जाते हो अरे उनमें भी तो आत्मा विद्यमान है और जब उनमें भी आत्मा विद्यमान है, तो तुम निष्पक्षता की वार्ता कैसे प्रकट कर सकते हो? भगवान कृष्ण का वह उपदेश मुझे स्मरण आता रहता है। (चित्त की वृत्तियों का निरोधक, लाक्षागृह बरनावा, 8 मार्च, 1987)

भगवान् कृष्ण और अर्जुन दोनों का संवाद प्रारम्भ हो रहा था। उसमें मैंने विराट स्वरूप का कुछ सूक्ष्म वर्णन किया। आत्मा का जो शब्द है, आत्मा का जो प्रकाश है उससे दूसरों को प्रकाशित होने का नाम विराट् स्वरूप है। क्योंकि ऋषियों का ऐसा वचन है कि ब्रह्माण्ड में जो गति हो रही है वह शरीर में भी गति हो रही है। शरीर में

अग्नि है, पंच महाभूत हैं और पंचमहाभूतों से यह ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। यह ब्रह्माण्ड अपनी-अपनी आभाओं में आभाषित हो रहा है। इस ब्रह्माण्ड को परमात्मा स्थिर किए रहता है और यह मानव का जो शरीर है, वह सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है, इसको आत्मा स्थिर किए रहता है। जैसे आत्मा इन पंच महाभूतों को स्थिर करता है, इनको दृष्टिपात् करने का नाम ही विराट स्वरूप माना गया है। जब अर्जुन को अज्ञान छा गया तो तब गुरु शिष्य के सम्वाद में भगवान् कृष्ण ने यह कहा, कि मैं अग्नि हूँ, मैं ही मरुत हूँ। नाना प्रकार से ''मैं'' का प्रतिपादन भगवान् कृष्ण ने किया। इसका मूल कारण था गुरु द्वारा शिष्य की अज्ञानता समाप्त करना। क्योंकि ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना से जब मानव ब्रह्माण्ड को, पिण्ड में दृष्टिपात् करता है तो उसकी निष्ठा हो जाती है, जब सर्वत्रता में दृष्टिपात् करता है तो उसका अज्ञान समाप्त होता है। जैसे माता अपने पुत्र को जब लोरियां देती है तो माता उसे अपना हृदय स्वीकार करती है और उसे लोरियों का पान कराती है। पुत्र के मुखारविन्दु में लोरियां देते हुए जिस प्रकार उसे लज्ञा नहीं होती, शंका नहीं होती, विडम्बना नहीं होती इसी प्रकार गुरु और शिष्य का सम्वाद भी इसी प्रकार का है। गुरु अपनी निधि को, अपनी आभा को शिष्य को प्रकट करा देता है। सर्वत्र उन्होंने अर्जुन के अज्ञान को नष्ट करने के लिए ''मैं'' कहा। इसमें मानव को संकोच नहीं होना चाहिए। क्योंकि वह तो एक धारा

है, उस धारा को अपनाते हुए मानव के जीवन में एक महत्ता की प्रतीति होने लगती है। (सत्ताईसवाँ पुष्प, अमृतसर, 17 मई, 1975)

भगवान् कृष्ण के जीवन में बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों सुसज्जित थे और दोनों को अनुशासन के नाते विराटस्वरूप की प्रक्रिया को भी वह जानते थे। क्योंकि परमात्मा का यही तो विराट स्वरूप होता है कि आन्तरिक जगत् को बाह्य जगत् से और दोनों का एक दूसरे में समन्वय करना। जैसे प्राण और अपान दोनों का समन्वय करने से अपान से प्रकृति से अस्वानम को जाना जाता है। आयु तीन प्रकार से नष्ट होती है। यह जो संसार का चिन्तन है, मायावाद का चिन्तन है, इसमें मानव संलग्न हो जाता है। जब मानव को मानव से घृणा हो जाती है अपने स्वार्थ के लिए अपनी कृतिका के लिए प्राणी से प्राणी को द्वेष की प्रतिभा बन जाती है तो मानव अपनी आयु को सूक्ष्म बना लेता है। (यज्ञ एवं औषधि विज्ञान, जोरबाग, नई दिल्ली, 16 दिसम्बर, 1983)

भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को वृहद-रूप का (विराट रूप) वर्णन कराया था। इन्हीं रूपों में बेटा वृहद हो, जब छः दिशा प्रतीत होने लगी तो बेटा। उसी में अग्नि व्याप्त हो रही है, उसी में अमृतगण विद्यमान हैं, उसी में संवत्सर विद्यमान हो रहा है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसमें दृष्टिपात् हो जाता है। यही मानव का विराट स्वरूप है। (सैतिसवाँ पुष्प, अमृतसर, 22 अप्रैल, 1979)

गीता उपदेश में ''मैं'' का अर्थ

एक समय भगवान् कृष्णा ने अर्जुन को एक वाक्य कहा कि हे अर्जुन! आज तुम किस भ्रम में हो। अरे! कोई-कोई तो इस संसार में ज्ञानी होता है और ज्ञानियों में भी कोई-कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो मेरे परमधाम को जानता है। यहाँ मेरे से अभिप्राय गुरु-शिष्य से हैं। जैसा मैंने कई काल में वर्णन कराया है कि गुरु-शिष्य के संवाद में, ''मैं'' का प्रयोग किया जाता है। भगवान् कृष्णा ने अर्जुन से कहा 'इसलिए हे! अर्जुन आज तुम्हें इनका मोह नहीं होना चाहिए। यह संसार तो इसी प्रकार गतिशील है इसी प्रकार चलता रहता है। (दसवाँ पुष्प, रामकृष्णापुरम, नई दिल्ली, 24 अप्रैल, 1965)

अनादि है शब्द

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय एक वाक्य कहा था कि यह वाणी जो अन्तरिक्ष में रमण करने वाली है, इसके सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत है। कोई तो शब्द को अनादि कह रहा है, कोई कहता है कि यह अनादि नहीं है। कुछ बुद्धिमान दार्शनिक युक्ति दे रहे है कि यह जो शब्द है, अन्तरिक्ष में रमण करने वाला है, मेधावी बुद्धि से उत्पन्न होता है। कोई यह कह रहा है कि शब्द अनादि नहीं, कुछ काल के लिए रमण करता है परन्तु उसके पश्चात् यह समाप्त हो जाता है। संसार में अनादि तो तीन ही पदार्थ है आत्मा, परमात्मा और प्रकृति। शब्द अनादि नहीं ये संक्षिप्त हो जाते हैं और लुप्त हो

जाते है। अन्तरिक्ष के साथ-साथ यह शान्त हो जाते है।

मुनिवरो! यह भी माना जाता है कि जितना यह संसार हमें दृष्टि-गोचर हो रहा है यह सब प्रकृति से उत्पन्न होता है। संक्षिप्त रूपों से यह प्रकृति में लय हो जाता है। जैसे प्रकृति में वृक्षों का अंकुर है वैसे जीवात्मा के द्वारा अन्तःकरण में कर्म रूपी थैली है जिसमें पाप-पुण्य दोनों कर्म विराजमान रहते हैं इसी प्रकार मुनिवरो! यह शब्द भी अनादि तो नहीं माना जाता परन्तु यह शब्द सूक्ष्म हो करके इस प्रकृति की गोद में चले जाते है। इसी प्रकार यह शब्द भी तभी तक अनादि है जब तक अन्तरिक्ष हैं कुछ वाक्य समाप्त होते रहते है कुछ का रूपान्तर होता रहता है, ऐसा भी इस सम्बन्ध में हमारे आचार्यो ने कहा है। परन्तु शब्द यदि अनादि न होता तो इसकी महानता इतनी न कही जाती जो मेधावी बुद्धि से प्राप्त होता है। जब इसकी इतनी महानता है तो इसको कह सकते है कि यह अनादि माना जाना चाहिए। वास्तव में इसका रुपान्तर इस प्रकार हो जाता है जैसे मेधावी बुद्धि सब ग्रन्थियों को पार करके परमात्मा के आनन्द को रमण करती है और उस वाक्य की ज्योति को उस विज्ञान को खोजती है कि यह वाक्य कहाँ से आ रहा है? कहाँ जा रहा है? हमारे शरीर में कोई थैली ऐसी नहीं, कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ इतने शब्दार्थ, इतना वेदों का ज्ञान हो या इतना प्रकाश हो। परन्तु यह भी तो कही से आता है। कहाँ से आता है? अन्तरिक्ष से आता

है। इससे सिद्ध होता है, कि यह शब्द अनादि है।

गीता के उपदेश पुनः प्राप्त हो सकते है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने आधुनिक काल की चर्चा करते हुए यह कहा है कि महाभारत काल में भगवान् कृष्ण ने महाराज अर्जुन को महान् गीता का उपदेश दिया, आज के वैज्ञानिक उसको मन्त्रों द्वारा ग्रहण करना चाहते हैं। इस विज्ञान को जानने के लिए मनुष्य सफल भी हो सकता है, असफल भी हो सकता है। हम तो यह उच्चारण कर रहे हैं कि भगवान् कृष्ण ने गीता का जो उपदेश दिया था वह अन्तरिक्ष में रमण कर रहा है। मेधावी बुद्धि से इसका सम्बन्ध है और मेधावी बुद्धि इस पर अनुसंधान करती है। तो विचार आता है कि गीता का उपदेश अवश्य अनादि हो सकते है। वह अभी तक हो सकता है। कुछ वाक्यों की शब्दों की, रूपरेखा भिन्न हो जाती है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इस सन्दर्भ में यह कहा है कि यह शब्द अनादि है, यह प्रकृति में बीज रूप में रहता है जैसे सूक्ष्म से बीज के अंकुर में वट वृक्ष है। (अष्ठम् पुष्प, लक्ष्मीबाईनगर, नई दिल्ली, 28 दिसम्बर, 1963)

निष्काम कर्म योगी

परमात्मा ने जब मानव को शरीर दिया, आत्मा ने जब शरीर को ग्रहण किया तो परमात्मा ने दो शक्तियां ज्ञान और प्रयत्न दी। अब ज्ञान और प्रयत्न दोनों शरीर में आ गये। आत्मा तो निश्चित उसमें

विराजमान है, वह तो अपनी रश्मियाँ दे रहा है, ज्ञान और प्रयत्न के रूप में। और ज्ञान का माध्यम मन है, उसने सबका विभाजन करना प्रारम्भ कर दिया। जब प्राण का विभाजन हो गया तो इनको कार्य देने का प्रश्न आया। जब कर्त्तव्य देने का प्रश्न आया तो उन्होंने कामनाओं को उत्पन्न किया। ज्ञान और प्रयत्न के द्वारा जब कामनाओं का जन्म हुआ और कामनाओं का जन्म होकर उनको अब भोगा जाता है क्योंकि जो कामना बनी है वह भोगी जायेगी। अतिकामनाओं को उत्पन्न होना, तृष्णा कहा जाता है? जब तृष्णा की उत्पत्ति हुई, तो मानव का जो शरीर है उसमें अधिक से अधिक आवश्यकतायें आती चली गई। जब उन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती तो उसी से क्रोध उत्पन्न होता है, उसी से अभिमान आता है। यह ज्ञान और प्रयत्न का एक बड़ा परिवार बन गया। ज्ञान और विवेक के द्वारा इस परिवार को संयम में करना है, इसके लिए परमपिता परमात्मा ने इसको विचारने के लिए वेद दिया है। अब जो आत्मा, जो मानव केवल इसी दशा में अपने को स्थिर कर लेता है कि ज्ञान और प्रयत्न दोनों तेरे शरीर में है, इसमें तुझे ऐसे रहना है जैसे जल में कमल रहता है। वह उसी काल में रह सकता है जब दसों प्राणों का ज्ञान हो और मन का, जो विभाजन करता है उसका ज्ञान है उसका विभाजन न होने दो। जब विभाजन नहीं होने दोगे और दसों प्राणों को एकाग्र करने का प्रयत्न करोगे तो शनैः-शनैः तुम जड़ भरत की

भाति रहोंगे, भगवान् कृष्णा की भाति रहोंगे। जिन्हें कर्म नहीं व्यापते थे।

भगवान् कृष्णा ने अर्जुन से कहा था कि हे अर्जुन! मै। समय-समय पर जन्म लेता हूँ, परन्तु यह जो संसार के कर्म हैं यह मुझे नहीं व्यापते। वह ऐसी विभूति थे, कि संसार में आकर के संसार के कर्म उस महान् विभूति को नहीं व्यापे। क्यों नहीं व्यापे? वह इसलिए नहीं व्यापे क्योंकि उनका जो मन है, वह संस्कारों से इतना नियंत्रण में है कि वह ऐसी कामनाओं को उत्पन्न नहीं करता जिससे मानव के शरीर का जो मानसिक विकास है उसका हनन होता चला जाये। (नवम् पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 29 जुलाई, 1966)

किसी भी मानव को, किसी भी देव कन्या को यदि अपने जीवन को ऊंचा बनाना है तो उसे परिश्रम की आवश्यकता है। भगवान् कृष्णा ने (अर्जुन से) यही कहा कि भाई! परमात्मा को जानने के लिये, निष्काम कर्म करना और शासन में इन्द्रियों को करना है, मन की तीव्र गति और अन्तःकरण को जानना है। महाराज कृष्णा ने अर्जुन से कहा था कि अर्जुन! तू, आज मुझे प्राप्त हो, जो भी कार्य करना है वह निष्काम कर। आज के मानव ने इस रहस्य को जाना नहीं। यह उन्होंने क्यों कहा है? जब हम गुरु के द्वार जाते है तो गुरु कहते हैं कि हे पाठकगण! यदि तुझे जिज्ञासु बनना है, तो जो तेरे पास है मुझे दे, मेरे समीप होकर के और मेरे अर्पण होकर के कार्य

कर। यह ही अभिप्राय महाराजा कृष्णा और महाराजा अर्जुन के सम्बन्ध में पाया जाता है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध होने के नाते महाराजा कृष्णा ने यही कहा कि यदि तुझे महान कार्य करना है, महान बनना है तो अपने जीवन के जितने संकल्प हैं, जितनी योजनाएँ है, जितने संकल्प-विकल्प हैं सब मेरे अर्पण कर और निष्काम कार्य कर। आज जिनका तू मोह कर रहा है वह तो पूर्व भी नष्ट हुए है, और यह आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जायेंगे। महाराजा कृष्णा के इन आदेशों को मानकर अर्जुन ने युद्ध किया। आज मानव यह कह रहा है कि महाराजा कृष्णा ने भिन्न-भिन्न शब्दार्थो में यह कहा कि मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं शक्तिमान हूँ। मानव ने इस रहस्य को जाना नहीं। जिन गुरुओं ने उस विद्या को जाना है। वह गुरु कहा करता है कि मैंने सब कुछ जाना है, परमात्मा ने मुझे वह शक्ति प्रदान की है कि मैं तेरे पापों को अवश्य नष्ट कर दूँगा। सिद्धान्त के अनुसार पाप शान्त नहीं होते हैं, भोगने पड़ते हैं। मुनिवरों, जब शिष्य जिज्ञासु बन जाता है और यह मान लेता है कि तेरे जो पाप है, वह गुरु के अर्पण है तो पाप तो उसी को भोगने पड़ते है परन्तु उसके मन का संकल्प हो जाता है कि तेरे जो पाप है, वह गुरु के अर्पण हैं, तेरे द्वार कुछ नहीं। और इस प्रकार वह योगी ओर जिज्ञासु बन जाता है। आज हमें इन विचारों को विचारना है।

भगवान राम से भी हनुमान ने, जब वह माता सीता के लिए लंका जाने लगे, पूछा कि महाराज! मैं कौन-सी शक्ति से जाऊँ। उस समय राम ने कहा था कि तेरे में जो भय है, जो तेरे हृदय में शंका है उन सबको मेरे में अर्पण कर, अपने अंहकार को मेरे अर्पण कर और तू, माता सीता की खोज कर, मैंने वह शक्ति पाई हे कि मैं उन पर विजय प्राप्त कर लूँगा। (सप्तम पुष्प, विनयनगर, नई दिल्ली, 22 अगस्त, 1962)

गीता सार

इसलिये मानव को कहा है कि हे मानव! तू क्रियाकलाप कर, परन्तु उसमें तेरी आस्था नहीं होनी चाहिए। तू अपने में कर्त्तव्यवादी बन और उसमें तू नाना प्रकार की आशा अपने में देख अपने स्वार्थ को उसे दृष्टिपात् मत कर। निस्वार्थ क्रियाकलापों में परिणत हो जा। जब तक तू फल की इच्छाओं में लगा रहेगा, तब तक तेरा संस्कार नवीन बनता रहेगा। जहाँ तू संस्कारों से विहीन होता चला जायेगा, अपने कर्त्तव्यवाद में परिणत हो जायेगा, वहीं तू साधक भी बन सकता है और योगेश्वर बन करके परमात्मा की प्रतिभा से। चित्त मण्डल के संस्कार तेरे नष्ट होने लगेंगे। (याग और तपस्या, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, 19 अक्टूबर, 1991)

महान् गुरु और शिष्य

मुनिवरो! हमारे यहाँ जब बालक माता-पिता के गृह को त्याग

करके गुरु के कुल में जाता है तो हमारे ऋषियों ने कुछ ऐसा कहा है कि वह शिष्य यज्ञोपवीत के पश्चात् आचार्य के गर्भ में तीन दिवस और तीन रात्रि रहता है। इसके पश्चात् जीवन का निदान होता है। गुरु शिष्य का कितना ऊंचा सम्बन्ध है शिष्य जब गुरु के चरणों में ओत-प्रोत होकर शिक्षा को पाता है उस समय गुरु-शिष्य की कितनी ऊंची महिमा है। शिष्य हो तो अर्जुन जैसा, और गुरु हो तो कृष्ण जैसा। जिसने अर्जुन के मन की भ्रान्तियों को दूर करने वाला गीत दिया जिसको गीता कहा जाता है, जिससे आज हमें अपने कर्त्तव्यों का उपदेश मिलता है। मुनिवरों! हमें गुरु की शरण में जाना है और उस विद्या को पान करना है जिससे हम राष्ट्र का कल्याण कर सकें। गुरु वह होता जिससे धनुर्विधा को जान सकें, आत्मा कल्याण के लिए ज्ञान-विज्ञान को जान सकें।(चतुर्थ पुष्प, कोटली, जम्मू, 22 अप्रैल, 1964)

परमात्मा भगवान् कृष्ण जैसी आत्मा को पुनः भेज

हे परमात्मा! यदि आपने वेद संसार के कल्याण के लिए रचा है तो प्रभु! इस के कल्याण के लिए पुनः भगवान् कृष्ण जैसा उत्पन्न कर। जिससे तेरे वेद की रक्षा हो। तेरे ज्ञान विज्ञान की रक्षा हो। प्रभु! उन आत्माओं को संसार में प्रेरित कर जो दैत्यों को नष्ट कर, देवताओं की रक्षा करने वाले हो। हे परमात्मा! मेरी उन माताओं को उत्पन्न कर, जो कारागार में रह कर भी प्रभु से याचना करने वाली

हो। कौन? मुनिवरो! देखो, जिसको हमारे यहाँ माता देवकी कहते हैं, जो दुष्ट कंस के अत्याचारों से कारागार में है और माता यशोदा उसके बालक का पालन कर रही है। आज पुनः उन महान आत्माओं की आवश्यकता है जो दैत्यों को नष्ट करने वाली हो। प्रभु! हम यह उच्चारण नहीं कर रहे कि आप मनुष्य बनकर आईये परन्तु उन आत्माओं को प्रेरित करें, जो परम्परा से यहाँ आती रही है और संसार का कल्याण कर देती है। वह यहाँ तेरी वेद-वाणी का प्रसार करके पुनः उसी स्थान को रमण कर जाती है जहाँ से वह आत्मा आती है। प्रभु! हमारी याचना को स्वीकार कर और वह आत्मा अवश्य उत्पन्न कर। यदि ऐसा न हुआ तो तेरे बनाये विधान की, मनु महाराज के विधान की, आपकी वेद-वाणी की रक्षा न हो सकेगी। (चतुर्थ पुष्प, जम्मू, 21 अप्रैल, 1984)

३ महाराजा शान्तनु

शान्तनु के पूर्वज

भारत भूमि में जहाँ भरत की पताका थी, महाराजा दुष्यन्त का राष्ट्र था, महारानी शकुन्तला जिन्होंने ऋषियों के कुल में जाकर शिक्षा प्राप्त की हो, उनका जो नाद था वह केवल एक ही था कि राजा के राष्ट्र में ऊँची संस्कृति होनी चाहिए क्योंकि संस्कृति से मानव के विचार बनते हैं। जहाँ ऊँची संस्कृति होती है वहाँ विद्यार्थियों के, ब्रह्मचारियों के ऊँचे विचार होते हैं। (छटा पुष्प, सरोजनी नगर, नई दिल्ली, 19 अक्टूबर, 1965)

आज जिस भूमि को भारतवर्ष पुकारा जा रहा है, यह वह भारत भूमि है जहाँ वह सदाचारी बालक 'भरत' सिंह के प्यारे पुत्रों से मग्न हुआ करता था, उनको गोद में धारण किया करता था। आज का मानव उसी भारतवर्ष में रहने वाला होकर ऐसा है कि एक-दूसरे का घातक बना हुआ है, एक-दूसरे मानव को नष्ट करना चाहता है। हम सिंह को नहीं अपनाना चाहते जिसको अपनाने से हम निर्भय हो जायें। आज वह हमारे द्वारा सिंह क्या है? वह सिंह हमारा ज्ञान है, जिसको अपनाने से हम निर्भय हो जाते है। आज वह सिंह हमारे द्वारा आ जाये, जिसके पश्चात् चाहे षत्रु आ जाये परन्तु हम उस पर विजय पा सकेंगे। परन्तु हमें उस सिंह को अपनाना। हमें केवल यह नहीं देखना है कि यह भूमि आर्यो की थी, यह भारत भूमि

सदाचारियों की थी। परन्तु तुम भी कुछ बनोगे या नहीं या उच्चारण करने वाले ही बनोगे। आज तुम उच्चारण करने वाले न बनां, आज करने वाले बनों। आज तुम माता के गर्भ में ही अपने जीवन को ऊँचा बना लो। जहाँ आज मानव नाना प्रकार के गर्भो का पान किया करता है, नाना जीवों की हिंसा किया करता है मानव सदाचार को पुकारता है, तो वहाँ सदाचार को अपनाना असम्भव है। ऐसे संसार में कदापि भी सदाचार न आएगा। (छठा पुष्प, सरोजनी नगर, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1963)

द्वापर पामर वृत्ति का मध्यकालीन समय था। महाराजा शान्तनु से पूर्व एक राजा हुए जिनका नाम स्वामी कृतिभानु था। स्वामी कृतिभानु राजा ने गौ पशु की अवहेलना की, जब गौ पशु की अवहेलना की तो विद्यालयों की अवहेलना हो गई परिणाम यह हुआ कि उनके राष्ट्र में रक्तमयी क्रान्ति आ गई। उस रक्तमयी क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि वह राष्ट्र समाप्त हो गया। उसके पश्चात् उनके वंश में एक श्रेष्ठकेतु नामक राजा हुए। जब वह राष्ट्र का पालन करने लगे तो वे गऊओं की सेवा भी करने लगे। कुछ सौ गऊओं को लेकर वह महर्षि स्वाति ऋषि महाराज के द्वार पर पहुँचे। जो भयंकर वन में याग करते थे। वे गऊएँ जब दस हजार हो गयी तो उसके पश्चात् वह अपने राष्ट्र में आ गये और राष्ट्र में आकर उन्होंने पुनः राष्ट्र की स्थापना की। (तिरेपनवाँ पुष्प, पटना, 7 जनवरी, 1984)

व्यास मुनि

संसार में पति और पत्नी के संस्कार होने का क्या उद्देश्य है? वेद कहता है कि अभिप्रायः केवल एक ही है कि पति और पत्नी को विवेकी सन्तान को उत्पन्न करना हैं, गृह का पालन करना है, वेद के अनुकूल गृहस्थ नियमों पर चलना अनिवार्य है, उससे हमारे द्वारा विवेक, सत्ता, ब्रह्मचर्यता और बलिष्ठता आती है। आज हमें जानना चाहिए कि मानव के द्वारा रोग तब आता है जब उसके द्वारा कुछ क्षीणता हो जाती है, जब क्षीणता नहीं होती तो रोग नहीं आता। मेरे भोले आचार्य-जनों! माता और पुत्र दोनों को विवेकी बनाना है। जब माता अपने पुत्र को अपनी लोरियों में रमण करती है तो आनन्दित हो करके कहती है कि आ, मेरे भोले पुत्र! तू मेरी लोरियों के आनन्द को प्राप्त कर। बालक माता की लोरियों में आनन्द प्राप्त करता है। अपने जीवन को बनाता है, युवा हो जाता है युवा होने के पश्चात् माता-पिता की सेवा करना पुत्र का कर्त्तव्य है। मुनिवरो! वह विवेक द्वारा होनी चाहिए। जब माता और पुत्र दोनों विवेकी बनेंगे तो यह गृहस्थ क्यों न स्वर्ग बनेगा क्यों न यह संसार स्वर्ग बनेगा जब यहाँ ऋषि परम्परा अपनाई जायेगी। तो सब स्वर्गमय हो जायेगा। (पंचम पुष्प, मोगा मण्डी, पंजाब, 18 अक्टूबर, 1964)

गर्भ में बालक का निर्माण

महर्षि पारा मुनि को, उनकी धर्मपत्नी ने कहा था कि हे पति

देव! अब मुझे गर्भ स्थापन हो गया है, और अब मेरी इच्छा है कि मैं जिस बालक को जन्म दूँ, उसे गर्भाशय में ऐसी शिक्षा दूँ कि जिससे वह बालक संसार में अमर हो जाए। उस माता ने क्या किया? महर्षि पारा मुनि की आज्ञानुसार माता ने नित्यप्रति यज्ञ किया, उस महान् प्रभु देव की याचना की और हर समय यह अपने में उच्चारण करती रहती थी कि हे प्रभु! हे महान् माता! मेरे गर्भ का यह बालक आपके अर्पण है। यह तेरा स्मरण करने वाला हो, यह बालक मेरा नहीं, यह 'इदन्नमम' है। यह आपका है, आप इसको उच्च बनाएँ। मुनिवरों! उस माता के कुछ समय पश्चात् ऐसा इष्ट बालक उत्पन्न हुआ जिन्हें महर्षि व्यास की महानता का पद प्राप्त हुआ। जब तक विश्व रहेगा महर्षि व्यास का नाम भी रहेगा। (प्रथम पुष्प, लोधी रोड, नई दिल्ली 4 अप्रैल, 1962)

जब महर्षि पारा मुनि की पत्नी रेधनी ने अपने गर्भस्थल से धुरेन्द्र (धुन्धु) ऋषि को जन्मा। उस माता का कर्त्तव्य क्या था? गायत्री छन्दो का पाठ और नाना देवपूजा नित्य करना, ब्रह्म चिन्तन करना, योगाभ्यास करना उस माता का नित्य का कर्त्तव्य था और महर्षि धुरेन्द्र को तब उन्होंने जन्म दिया। मुझे स्मरण है कि महर्षि धुरेन्द्र विवेक की चर्चायें सदैव किया करते थे। हे मेरी भोली माता! तू कितनी पवित्र है, परमात्मा ने तुझे अमूल्यतायें दी है आज इन अमूल्यताओं को शान्त न कर। आज संसार में केवल तेरा ही एक

जीवन ऐसा है जो संसार को पवित्र बना सकता है। (पंचम पुष्प, मोगा मण्डी, 18 अक्टूबर, 1964)

ब्रह्मचारी पारा मुनि

महात्मा पारा मुनि के, जब धुरेन्द्र ऋषि और व्यास मुनि, दोनों पुत्र उत्पन्न हो गये तो उन्होंने अपनी पत्नी से कहा हे देवी! हमारे दो सन्तान उत्पन्न हो गई है, अब हमें यज्ञ की वेदी पर ब्रह्मचर्य धारण करने की प्रतीज्ञा करनी चाहिए जिससे आगे चलकर हमारी परम्परा नष्ट न हो जाये, हमें अपनी परम्परा को ऊँचा बनाना है। उनकी पत्नी ने कहा कि भगवन् जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए। सभी पूर्तियां पूर्ण होती चली जा रही है। उस समय महात्मा पारा मुनि ने परमात्मा और गायत्री माता का चिन्तन किया और ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर भंयकर वन में जा पहुँचे, वहाँ सिंह चिघाड़ते थे। अपने हृदय को पवित्र बनाने के लिए वे वहाँ जा पहुँचे जहाँ परमात्मा का अनोखा चित्र हमें प्रतीत होता है। महर्षि पारा मुनि ब्रह्मचर्यता को धारण करके जब तपस्या करके वापस आये, तो उसके पश्चात् उन्होंने अपने पुत्रों को उपदेश दिया और स्वयं सन्यास को प्राप्त हुये। आज हमें उस परम्परा पर पहुंचना चाहिए। यह हमारे आर्यो की परम्परा हैं ब्रह्मचर्यता का अभिप्राय यह नहीं है कि हम गृह आश्रम में पवित्र नहीं बन सकते या गृहस्थान में हम ब्रह्मचारी नहीं बन सकते, अवश्य बन सकते है।(दसवाँ पुष्प, करोलबाग, नई दिल्ली, 27 जुलाई, 1963)

आत्मा परमात्मा

गुरुजी! आधुनिक काल में ऐसा मानते है कि आत्मा परमात्मा एक ही पदार्थ है। आपने तो इनको भिन्नता दे दी। भगवन्! एक नहीं, आधुनिक काल के बहुत से आचार्य कुछ ऐसा ही कहते हैं। आधुनिक काल के ही नहीं, (अपितु) महर्षि व्यास मुनि ने भी ऐसा ही कहा है कि यह आत्मा ही परमात्मा बन जाता है अर्थात् जब यह आत्मा परिश्रम करके अपने को पा लेता है तो (उसका) अपने को पाना ही ब्रह्म को पाना है। यह अपने आप ब्रह्म है और कोई ब्रह्म नहीं है और न कोई कुछ है। (महानन्द जी)

अच्छा महानन्द जी! इसका तो संक्षेप में उत्तर यह है कि महर्षि व्यास ने ऐसा नहीं माना। महर्षि पारा मुनि ने वेदान्त और विज्ञान के द्वारा जाना और आध्यात्मिक विज्ञान पर बल दिया। बेटा! उन्होंने कहा है कि यह आत्मा जब अपने को पा लेता है तो अपने को पाकर के परब्रह्म को पा लेता है और परब्रह्म को पा करके यह आत्मा ब्रह्म बन जाता है। (प्रथम पुष्प, लोधी कॉलोनी, नई दिल्ली, 1 अप्रैल, 1962)

आज कुछ मानव अपने को परमात्मा का रूप मानते हैं। परन्तु हे विधाता! यदि आप ही यह आत्मा है, या यही आत्मा ही परमात्मा है तो आपके बनाए हुए संसार में, यह जीव एक-दूसरे के रक्त के अभिलाषी क्यों बन बैठे है? तो क्या यह आपका ऐसा बनाया हुआ

ब्रह्माण्ड है, जिसमें मानव दुःखित होता चला जा रहा है। मानव में परस्पर षत्रुता क्यों है? इस प्रकार का यह संसार क्यो है? यह तो बड़ा विचारणीय प्रश्न है।

एक समय महर्षि अटुल मुनि महाराज, देवर्षि नारद, सनत् कुमार आदि आचार्य, लोमश मुनि महाराज, विभाण्डक ऋषि महाराज, ऋषि पारा मुनि और उनके पुत्र धुन्धु (धुरेन्द्र) ऋषि महाराज आप्त ऋषियों और महान् दार्शनिकों के समाज में विचार चल रहा था कि यह परमात्मा का बनाया हुआ संसार तो है परन्तु यह इस प्रकार का क्यों है? इस प्रकार के संसार में परमात्मा का क्या महत्व है? हम परमात्मा को क्या माने? स्वयं परमात्मा क्या पदार्थ है? यदि यह आत्मा ही परमात्मा है तो एक मानव दूसरे का षत्रु क्यों बना बैठा है और कौन किसका राजा बना बैठा है? कौन किसकी प्रजा बनी बैठी है? आज का मानव इस पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करता है परन्तु हम तो वेदोक्त मन्त्रों के आधार पर विचारते है।

परमात्मा ने इतने बड़े ब्रह्माण्ड को इस प्रकृति से बनाया है अहा उस परमात्मा ने ब्रह्मत्व से इस संसार को उत्पन्न किया है जैसे ब्रह्मा यज्ञ में नाना प्रकार से सुन्दर वेदी को रच देता है वेदी को रचकर मन्त्रों के द्वारा सब कुछ सिद्ध करके देवो (भौतिक) तथा देवों (विद्वान होता, उद्गाता, अध्वर्यु आदि।) की स्थापना करके यज्ञवेदी को उत्पन्न कर देता है। अब हमारे समक्ष वेदी के ही दो रूप उपस्थित हो जाते

है, एक भौतिक वेदी, दूसरी आध्यात्मिक वेदी। देखो, भौतिक वेदी हमको आध्यात्मिक यज्ञ में पहुँचा देती है। हमारे अन्तःकरण में भी यज्ञशाला विराजमान है। उसमें आत्मा आहुति देने वाला है, आत्मा सामग्री देने वाला है और मुनिवरो! परमात्मा ब्रह्म बन करके आत्मा को प्रेरणा दे करके और ऊँचे पथ पर चला रहा है और इसी प्रकार से संसार को भी चला रहा है।

देव मुनि नारद ने कहा कि प्रश्न तो यह था कि जो परमात्मा इस संसार में ओत-प्रोत है, लोकलोकान्तरों को उत्पन्न कर रहा है, जिसकी सृष्टि का कोई अन्त नहीं पाता है, इस पर यदि यह आत्मा परमात्मा का अंश है तो परमात्मा के बनाए संसार को, अनन्त ब्रह्माण्ड को क्यों नहीं जान पाता? मुनिवरो! यदि यह आत्मा, परमात्मा का ही अंश है तो यह क्यों नहीं इस परमात्मा की बनाई सृष्टि का अन्त पा लेता? इस पर आत्मा को परमात्मा का अंश मानने वाले यह समाधान देते है कि यह आत्मा जब परमात्मा का दर्शन करके परमात्मा बन जाता है तब वह इन सबका प्रत्यक्ष कर ही लेता है।

उस दार्शनिक महर्षियों के समाज में पारा ऋषि ने कहा कि यह आत्मा किसके दर्शन करता है? परमात्मा के दर्शन करता है जिसके दर्शन से आत्मा ब्रह्म तो अवश्य बन जाता है। परन्तु परब्रह्म को पाकर ब्रह्म बन जाता है। इसमें कोई संकोच नहीं, यह एक

विचारणीय विषय है। देखो, जब मानव की स्मरण शक्ति ऊँची होती है वह योगी बन कर, आत्मदर्शन करके परमात्मा के दर्शन की स्थिति में पहुँच जाता है। परन्तु ब्रह्म पद पर पहुँची आत्मा परब्रह्म कदापि नहीं बन पाती, महान् दार्शनिक महर्षि अटुल मुनि, महर्षि उद्दालकमुनि, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि, अष्टावक्र आचार्य आदियों का यही अटल निश्चय है। एक बार राजर्षि जनक महाराज ने भी आचार्य अष्टावक्र से याज्ञवल्क्य के वाक्यों का प्रमाण देते हुए यही कहा था कि आत्मा पर ब्रह्म कदापि नहीं बनता। महर्षि याज्ञवल्क्य ने तो कहा था कि प्रभु ने संसार को रचा हैं, यह संसार गुणों में विभक्त है। इस संसार में वह गणनीय है। वह हमारा स्वामी है, हम उसके आश्रित है। उसी ने संसार को उत्पन्न किया है। इसको पाकर के आत्मा ब्रह्म बन जाता है, परन्तु परब्रह्म कदापि नहीं बनता। (पहला पुष्प, लोधी रोड, नई दिल्ली, 1 अप्रैल, 1962)

देवयान और पितृयान

देवयान और पितृयान किसे कहते है? यह संसार जानता हुआ भी नहीं जानता। जानता तो इसलिए है कि जब इसका आत्मा शरीर से निकलता है तो अन्तरिक्ष में और देवयान में चला जाता है। जानता हुआ इसलिए नहीं जानता क्योंकि बुद्धि से अनुकरण करता है, यह बुद्धि से दूर का विषय है, बुद्धि से विचारने से बुद्धि शान्त हो जाती है वाणी भी उस महिमा का गुणगान नहीं कर सकती।

मुनिवरो! देखो, पारा मुनि से एक समय महर्षि व्यास ने प्रश्न किया कि भगवन्। जब यह आत्मा शरीर से निकलता है तो किस-किस दिशा में कहाँ-कहाँ जाता है? कौन-कौन से कर्म करने से देवता बनता है? देवता किसे कहते है? महर्षि पारा मुनि ने कहा, हे व्यास! संसार में जब यह आत्मा शरीर में आकर पवित्र बनने का प्रयत्न करता है, अपने जीवन को तपस्वी बनाता है, यज्ञमय बनाता है, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान करता है, जिज्ञासु बनता है और ऊँचे-ऊँचे कर्म करता है तो वह कुछ देवयान में रमण करता है। जहाँ देवात्माएँ रमण करती हैं। हमारे शास्त्रकारों ने ऐसा भी माना है कि जो यहाँ तुच्छ कर्म करते हैं और पापाचार करते हैं उन्हें अश्वस्थी वायु में रमण करके स्वतः ही माता के गर्भस्थल में जाने की आवश्यकता रहती है। उनको इतना अवसर प्राप्त नहीं होता कि वे देवयान में जाएँ। उनके अन्तःकरण में इतने पाप एकत्रित हो जाते है कि वह माता के स्थल में उसी दिशा में फिर स्थापित हो जाता हैं और निम्न योनियों में जन्म ग्रहण करता है।

मुनिवरो! ऋषि ने कहा देवयान उसको कहते है, जहाँ देवात्माएँ रहती हैं। जहाँ वायु, अग्नि आदि की प्रधानता वाले शरीर होते हैं। (अर्थात् सूक्ष्म शरीर वाली आत्माएँ निवास करती है।) जिनके अन्तःकरण में पुण्य की स्थापना होती है और वह महान् आत्माएँ पवित्र और विचित्र लोक में विचरती है जिनको देवलोक या देवयान

कहते हैं। देवयान में देवता प्रश्न-उत्तर नहीं करते। वे तो अपने आनन्द में रमण करते हैं। देवयान से महान् संसार को देखते है यहाँ किस वस्तु की आवश्यकता है। संसार में वेदीय-निधि शून्य होने पर उसको उच्च बनाने के लिए देवता स्वयं इच्छा के अनुकूल प्रकट हो जाते है और उस महानता का प्रसार करके यहाँ से चल बसते हैं। (चतुर्थ पुष्प, मालवीय नगर, नई दिल्ली, 28 जुलाई 1963)

देवता बनो

महर्षि पारा मुनि ने कहा था कि यदि आज तुम्हें संसार में देवता बनना है तो इसके लिए सबसे सहज यही है कि इस संसार को ज्ञान की दृष्टि से देखो। यह संसार तुम्हें छू न ले। इस संसार में ऊँचा बनने का प्रयत्न करो। जैसे जल में कमल रहता है जल उस कमल को छू नहीं सकता। इस प्रकार आज देवता बनने के लिए कमल बनना है, जिससे लक्ष्मी तुम्हारे में रमण हो जाए। कौन सी लक्ष्मी? जो लक्ष्मी महान् सरस्वती है। कहा जाता है कि कमल से लक्ष्मी का जन्म हुआ है। वह कमल क्या है? वह कमल यह ही है कि जिस महान् आत्मा को संसार न छू सके, उससे उत्पन्न होने वाली वह ''श्री'' सरस्वती मानव को देवता बना देती है। वह हमें देवताओं की शरण में पहुँचा देती है। आज हमें अन्तःकरण की दृष्टि से सोचना चाहिए। हमें उन चक्षुओं से देखना चाहिए जो वास्तविक चक्षु हैं। हमें पाप के नेत्रों से यह संसार नहीं देखना है। हमें

अन्तःकरण के चक्षुओं से देखना है। जो देवताओं के देखने वाले होते है, जो चक्षु परमात्मा के दर्शन कराने वाले होते हैं। जो चक्षु हमें कमल बना देते हैं जो चक्षु हमें सरस्वती की गोद में धारण करा देते हैं। महर्षि पारा मुनि ने कहा था कि हे पुत्र व्यास। यदि तुम्हें संसार में ऊँचा बनना है तो तुम आज संसार से ऊँचे उठो, वह कर्म करो जिस कार्य के करने से तुम्हारी संज्ञा ऊँची बने, विलक्षण बने। (चतुर्थ पुष्प, मालवीय नगर, नई दिल्ली, 28 जुलाई, 1963)

एक समय महर्षि व्यास मुनि से यह प्रश्न किया गया कि हमारा यह हस्तिनापुर कैसे ऊँचा बनेगा? तो उस समय ऋषि ने कहा कि बिना चरित्र के और देवत्व को जाने हम अपने राष्ट्र को ऊँचा नहीं बना सकते। हमारे यहाँ तब तक देवत्व नहीं आयेगा, जब तक एक दूसरे में मान प्रतिष्ठा आभा बनाने वाला समाज नहीं होगा तब तक यह समाज ऊर्ध्वा गति का प्राप्त होकर गमन नहीं करेगा। मेरे प्यारे! महर्षि व्यास ने केवल एक वाक्य कहा था कि संसार में रुढ़िवादी मत बनों। यदि तुमने रुढ़िवाद को अपना लिया तो निश्चित है कि तुम ऋषि के वाक्यों पर आक्रमण करते चले जा रहे हो। (अठावनवाँ पुष्प, बरनावा, 18 मार्च, 1989)

महर्षि व्यास मुनि महाराज की पत्नी मामातुर, के गर्भ से शुकदेव का जन्म हुआ। वह ऋषि माता कहलाई। (दसवाँ पुष्प, करोल बाग, नई दिल्ली, 26 जुलाई, 1963)

महर्षि वेद व्यास प्राणायाम करते रहते थे और उनके यहाँ महर्षि शुकदेव जैसा प्यारा पुत्र हुआ जो संसार का प्रिय बालक बना।

(ग्यारवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 1 अगस्त, 1968)

महर्षि व्यास के पुत्र की परीक्षा

कहते है कि एक समय महर्षि व्यास अपने पुत्र सुखदेव को शिक्षा दे रहे थे। पुत्र ने पिता से पूछा कि भगवन्! मुझे गुरु किस काल में मिलेगा। ऋषि ने सोचा कि यह मुझे अपना गुरु नहीं मान रहा है इसलिए उससे कहा कि तुम राजा जनक के द्वार जाओं वह तुम्हारे गुरु बनेंगे। इस वाक्य को पान करके वह वहाँ से जनक नगरी में जा पहुंचे और द्वारपाल से कहा कि ‘‘राजा से कहो, कि एक सेवक आया हुआ हैं। द्वारपाल ने राजा से जा कहाँ राजा जनक ने योग बल से देखा कि अरे! यह तो सुखदेव आया हुआ है और द्वारपाल से कहा कि उसे वहीं रहने दो। कहते है कि उन्हें उसी प्रथम द्वार पर एक दिवस और एक रात्रि हो गई। परन्तु वह वहीं स्थिर रहे। उदारता उनके अन्तःकरण में समाहित हो चुकी थी। द्वितीय काल द्वारपाल ने राजा जनक से कहा कि वह तो वहीं स्थिर हैं। उन्होंने कहा कि अच्छा, आने दो। परन्तु द्वितीय द्वारपाल से कहा कि इसे, रहने दो। वह द्वितीय द्वार पर एक दिवस और एक रात्रि इसी प्रकार स्थिर रहें किन्तु अपनी उदारता को भंग नहीं किया। तृतीय दिवस हुआ तो तृतीय द्वारपाल से कहा कि तुम इसे स्थिर कर लेना। वहाँ

भी एक दिवस और एक रात्रि इसी प्रकार स्थिर रहे। अन्त में राजा के द्वार जा पहुँचा और राजा के चरणों में ओतप्रोत होकर कहा कि भगवान्! मुझे ज्ञान दो। उसके लिए मैं आपकी शरण आया हूँ। मुनिवरो! उन्हें मान-अपमान नहीं था। इतने परमहंस कि जिसका कोई प्रमाण नहीं। अब राजा ने सोचा कि एक तो इसकी परीक्षा हो चुकी है। परन्तु एक परीक्षा रह रही है। उन्होंने उसे एकान्त में स्थिर कर दिया और नाना अप्सराओं से कहा कि इसकी परीक्षा करो। उस समय नाना अप्सराएँ नग्न होकर के उस ऋषि बालक के द्वारा जा पहुंची और उसे नग्न कर दिया। परन्तु वह उदारता में डुबे हुए थे, वैराग्य हो चुका था, परमात्मा में ललाहित था, उसके आनन्द में मग्न था, वह उसी प्रकार रहा और रात्रि समाप्त हो गई। राजा जनक ने सब अप्सराओं से पूछा तो उन्होंने कहा कि महाराज! आपने हमें कहाँ स्थिर कराया, वह तो इतना उदार है कि उसकी उदारता का कोई प्रमाण ही नहीं। राजा प्रसन्न हुए और सुखदेव से कहा कि अब तुम योग्य हुए बोलो, उस रात्रि तुमने क्या देखा? उन्होंने कहा कि ''प्रभु! मैं कुछ नहीं देख रहा था, केवल यह देख रहा था कि आज तेरे समक्ष तुझे नष्ट करने वाली मृत्यु तेरे निकट आ रही है। मैंने इन नेत्रों से और कुछ पान नहीं किया आज मैं आपकी कृपा से इस मृत्यु से विजयी बन गया हूँ। (नवम् पुष्प)

ऊँचा चरित्र

मुझे एक आदेश कण्ठ आ गया है सुनों महर्षि व्यास के पुत्र राजा जनक के द्वार पहुंचे तो उस परमहंस को नग्न देव कन्याओं में स्थान दिया गया। रात्रि के समय उसने देखा कि यहाँ तो तुझे नष्ट करने वाले वज्र तेरे समक्ष आते चले जा रहे हैं। जब उसने यह देखा तो वह उस परमात्मा का चिन्तन करने लगा और देखता रहा कि वह मृत्यु के आंगन से किस काल में बचेगा, कब प्रातःकाल होगा, कब तू इस स्थान से बाहर होगा, कब तू इस मृत्यु से बचेगा? देखो, संसार में वही ब्रह्मचारी बनते हैं जो मृत्यु पर विजय पाने वाले होते हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह को जो मृत्यु समझते हैं, वह यहाँ पर ब्रह्मचारी बनते हैं। जो यहाँ मग्न होकर कार्य करता है वह ब्रह्मचारी बनता है, उदार और पवित्र बनता है।

हे मेरी प्यारी माता! यदि तू संसार को ऊँचा बनाना चाहती है तो तुझे अपने गर्भ-स्थल की रक्षा करनी होगी। जैसे ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है और उससे उदारता में रहता हुआ अपने स्थान पर स्थिर रहता है, ऐसे ही हे माता! जब तू गर्भवती हो जाए तब तुझे अपने गर्भस्थल की रक्षा करनी पड़ेगी। गर्भ-स्थिर होते ही तुझे प्रभु चिन्तन करना है, अपने आहार-व्यवहार को पवित्र बनाना है। तुझे कोई हिंसक और तीक्ष्ण पदार्थ पान नहीं करना है, माता! तुझे क्रोध नहीं करना है और मग्न रहता है। यदि तू मग्न रहेगी तो तेरे गर्भ स्थल से जो बालक उत्पन्न होगा वह मग्न होगा, वह जहाँ भी जायेगा

ब्रह्मचारी रहेगा। माता यदि वह नग्न कन्याओं में भी चला जायेगा, तो वह वहाँ भी ब्रह्मचारी रहेगा। (छठा पुष्प, सरोजनी नगर, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1963)

४ भीष्म पितामह

जैसे माताओं की माता दुर्गा (परमात्मा) हमारे जीवन को उच्च बनाती है, वैसे ही हमारी जननी माता भी हमारे जीवन को उच्च बनाने वाली है। वास्तव में जननी माता वही हो सकती है, जो परमात्मा के समान अपने पुत्रों का कल्याण करके उसे उच्च पद पर पहुँचाने वाली है, जो संसार सागर में ऊँची प्रेरणा देने वाली हो। वह माता कैसी हो? जो गर्भस्थल में ही विद्यमान आत्मा को ऊँची प्रेरणा शिक्षा प्रदान करने वाली हो। ऐसी माता हमने द्वापर युग में पायी थी और उसे स्वयं प्रत्यक्ष किया था।

जन्म और शिक्षा

द्वापर में महाराज गंगेतु की गंगोत्री (गंगा) नामक सुन्दर कन्या थी। उसका संस्कार राजा शान्तनु के साथ हुआ था। वे आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। राजा शान्तनु के गंगोत्री से सात पुत्र उत्पन्न होकर, सबके सब समाप्त होते गए। महाराजा शान्तनु को बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि उनके राष्ट्र को सम्भालने वाला कोई न रहा। कुछ काल पश्चात् उनके यहाँ बड़ा सुन्दर आठवाँ बालक उत्पन्न हुआ। मुनिवरो! ब्राह्मणों ने उसका नाम 'गंगशील' नियुक्त किया 'गंगशील' बाल्य अवस्था से ही बड़ा चुतर, बड़ा तेजस्वी था। राजा शान्तनु के कुल पुरोहित एवं राष्ट्र पुरोहित महर्षि पारामुनि के गृह में शिक्षा पाने लगा। बालक की तीव्र बुद्धि, और उसके शील से महर्षि पारामुनि बहुत

प्रसन्न थे। महर्षि पारामुनि, गंगशील को कौडली ब्रह्मचारी कहने लगे। यह नाम उन्होंने इसलिए रखा था कि वे आत्मा के विषय में अत्याधिक चिन्तन किया करते थे, ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन किया करते थे।

माता गंगोत्री का अन्तिम आदेश

कुछ समय पश्चात् माता गंगोत्री का स्वर्गवास होने लगा। मृत्यु के समय राजा शान्तनु और कौडली ब्रह्मचारी उपस्थित थे। माता ने पुत्र से कहा कि इस समय मेरे अन्तिम श्वांस चल रहे है, मेरा जीवन समाप्त होने वाला है, मैं परलोक को जाने वाली हूँ, मेरा आदेश है कि तू जब तक जीवित रहे अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करना, जिससे कि तुझे मृत्यु छू भी न सके। अपनी इच्छानुसार शरीर को त्यागने वाला बनना। तूने मेरे गर्भ से जन्म धारण किया है, मेरा गर्भाशय तभी उज्ज्वल होगा जब तू महान् ब्रह्मचारी बन करके अपने जीवन को हर प्रकार से उच्च बनाएगा। आज यदि हम अपने जीवन को, अपने समाज को, अपने राष्ट्र को उच्च बनाना चाहते है तो हमारी माताओं को भी गंगोत्री के समान बनना होगा। आज की माताओं को भी गंगोत्री के समान गर्भ से ही अपने पुत्रों एंव पुत्रियों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देने वाली होना चाहिए।

मुनिवरो! माता गंगोत्री ने अपने एक मात्र पुत्र भीष्म से यह कहा कि तू, ब्रह्मचर्य से हीन होकर संसार का कीड़ा न बनना। तू यहाँ राष्ट्र

में सूर्य के समान तेजस्वी मानव बनना। जैसे सूर्य प्रातःकाल उदय होकर तीन लोक में अपने प्रकाश से छा जाता है, तीनों लोकों को तपायमान करता है, महान् रात्रि के अन्धकार को समाप्त करके अपने दिव्य प्रकाश से मानव के जीवन को उच्च बना देता है इसी प्रकार पुत्र, तू भी महान् तेजस्वी बन। तूने मेरे गर्भ से जन्म धारण किया है, तो तू ऐसा ही महान् बन जिससे यह अपना राष्ट्र उच्च बने, महान् बने। राष्ट्र तेरा नहीं यह परमात्मा का दिया हुआ है। हे पुत्र! यदि तूने इस शरीर को और राष्ट्र को दूषित कर दिया तो तेरा जीवन न होने के तुल्य है। परमात्मा ने जो यह शरीर दिया है यह रोगी या दोषी बनाने के लिए नहीं दिया। परमात्मा ने जैसा स्वच्छ शरीर दिया है वैसा ही स्वच्छ और स्वस्थ शरीर अन्त में परमात्मा को प्रदान कर दो, नहीं तो मानव जीवन का इस संसार में कोई महत्व नहीं है। माता गंगोत्री ने मृत्युकाल में ऐसा कहा कि हे पुत्र तू हर प्रकार से ब्रह्मचारी बन, अपने जीवन को सूर्य के तेज के तुल्य बना।

यदि हमको अपने जीवन को उच्च बनाना है, तो ब्रह्मचर्य की पूर्ण रक्षा करनी चाहिए। परमात्मा ने ब्रह्मचर्य के रूप में ऐसा महान पदार्थ दिया है कि इसको पाकर मानव सब कुछ पा लेता है। मुनिवरो! देखो, ब्रह्मचर्य को पा करके सारे विज्ञान को पा लेता है, प्रभु को पा लेता है, प्रकृति के कण-कण को जानने वाला यह जीव बन जाता है। जब तक हम इस महान् ब्रह्मचर्य को नहीं जानेंगे, तब तक इस

महान् प्रभु को, आध्यात्मिक और भौतिक विज्ञान दोनों को न जान सकेंगे, दोनों में किसी प्रकार से गति न कर सकेंगे।

उसने अपने पति देव से कहा, कि हे पतिदेव! मेरा मृत्युकाल आ रहा है, मेरे कुछ ही श्वांस शेष रहे है, मैं इस समय परलोक को जा रही हूँ, हे भगवन्! आप मेरे स्वामी है, और यह मेरा एक बालक है। परमात्मा की दया से, न जाने कहाँ-कहाँ से और कैसे हम तीनों का सम्बन्ध बन गया है, यह मिलाप हो गया है। आप राजा बन गए, मैं आपकी धर्मदेवी बन गई। हम तीनों के मेल का सम्बन्ध होने का इतना ही काल परमात्मा ने दिया था। अब मुझे आज्ञा दीजिए मैं परलोक को जा रही हूँ। अच्छा भगवन्! मेरा एक आदेश है। वास्तव में तो पत्नी अपने पति को क्या आदेश दे, पर शुभ आदेश देने में कोई किसी प्रकार की हानि नहीं है। मुनिवरो! देखो, उसने मृत्यु-काल में यह कहा था कि हे पतिदेव! यदि आपको संसार की इच्छा जागृत हो जाए तो आप द्वितीय संस्कार करा लेना। परन्तु यदि आपने संस्कार न कराया और आपके कुविचार बन गए, जिससे आपने राष्ट्र के किसी व्यक्ति को, किसी भी देवकन्या को, अथवा किसी भी मधुमति को, किसी भी प्रकार से भ्रष्ट कर दिया तो भगवन्! यह राज्य आज नहीं तो कल अवश्य नष्ट हो जाएगा।

मुनिवरो! उस महान् माता गंगोत्री ने अपने पतिदेव से कहा कि आप भ्रष्ट न हो जाना। भगवन्! यदि आप अपने मार्ग से भ्रष्ट हुए तो

इस राष्ट्र की मृत्यु हो जाएगी, राष्ट्र समाप्त हो जाएगा। आपको परमात्मा ने पूर्वजन्म के उच्च कर्मो के आधार पर इतने बड़े समाज का आज राजा बनाया हुआ है। प्रजा ने आपको राजा के पद पर चुना है, तो आप भी प्रजा को भ्रष्ट न करना। भगवन्! यदि आपके भ्रष्टाचार के कारण प्रजा में भ्रष्टाचार फैल गया तो आगे आपका यह राज-पद नहीं रहेगा आपका राज-पद दूषित हो जाएगा। भगवन्! मृत्यु समय मेरा केवल यही आदेश है, आपके समक्ष यही अनुरोध है। आप मेरे इस अनुरोध को अवश्य स्वीकार करे। भगवन्! परमात्मा की कृपा से जनता ने आपके चरित्रको स्वच्छ निर्मल समझ कर आपको राजा के पद के लिए चुना है, आपको राजाधिराज बनाया है। यदि आप अन्तिम काल में राज्य को त्यागना चाहे, तो जैसा परमात्मा ने स्वच्छ और निर्मल राज्य दिया है, वैसा ही राज्य परमात्मा के समक्ष अर्पण कर देना। हे भगवन्! यदि आपने राजा रहते हुए अपने राष्ट्र को अपने चरित्र दोष से दूषित कर दिया, परमात्मा को दूषित राज्य अर्पण किया, और स्वयं भी चरित्र से दूषित हो गए तो आप राजा नहीं रहेंगे, आप कीड़े के तुल्य बन जायेंगे।

मुनिवरो! माता गंगोत्री ने राजा शान्तनु को ऐसा आदेश देकर उन्हें नमस्कार करके, अपने प्राणों का त्याग कर दिया। राजा शान्तनु ने बड़े श्रद्धा पूर्वक, नाना उत्तम सामग्री संचित करके, नाना ब्रह्मणों के द्वारा विधि पूर्वक यज्ञकुण्ड में अपनी धर्मपत्नी का अन्त्येष्टि संस्कार,

वेद मन्त्रों का पाठ करके किया। उस विद्वान् ब्रह्मचारी कौडली ने भी अपनी माता के अन्त्येष्टि संस्कार में, वेद मन्त्रों का पाठ किया। राजा शान्तनु बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करने लगे।

मुनिवरो! देखो, यह उन महान् देवियों का आदेश है। पर आज उन माताओं का कहाँ से लाएँ? इस काल में उन्हें कहाँ से खोजें? जो मुनिवरो! अपने पतियों को इतना सुन्दर आदेश देने वाली हों। (प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, 2 अप्रैल, 1962)

मृत्युंजयी

देखो, उस महान ब्रह्मचारी ने कैसा सुन्दर आदेश माता से पाया। बेटा! वहीं कौडली ब्रह्मचारी आगे चलकर के भीष्म नाम से पुकारे गए, आगे वे ही पितामह भीष्म बन गए। बेटा, कैसा सुन्दर वह ब्रह्मचारी था, महाभारत संग्राम में जिस समय अर्जुन षस्त्रों का प्रहार उनके शरीर पर करते थे, तो भीष्म के शरीर से टकराकर शस्त्र उछल जाते थे, शस्त्र भी दूर भागते, उनकी त्वचा में प्रवेश नहीं कर पाते थे। कैसा था वह ब्रह्मचारी? मुनिवरो! देखो, उस समय अर्जुन ने उनसे एक वाक्य कहा था कि हे भगवन्! हे पितामह!! आपने कौन-सा पदार्थ पाया है, जिससे मेरे अस्त्रा-शस्त्रआप पर आघात नहीं कर पाते? उस समय भीष्म पितामह ने कहा था कि हे पुत्रा! हे बालक!! मैंने माता के आदेश द्वारा उस अवस्था को पाया है कि जिससे मैं मृत्युंजयी बन गया हूँ। मैं चाहूँगा तो मेरी मृत्यु होगी, अन्यथा मेरी

मृत्यु कदापि नहीं होगी। तो मुनिवरो! ब्रह्मचर्य को पाने में इतना महत्त्व है। जो ब्रह्मचर्य को पाता है वह परमात्मा को पा लेता है और परमात्मा को पा करके बेटा! सृष्टि के कण-कण को जानने वाला मानव बन जाता है। वह मानव भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञान दोनों को पाने वाला बन जाता है। (प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, नई दिल्ली, 2 अप्रैल, 1962)

महाराजा भीष्म सदा ब्रह्मचारी रहे, सन्यास में रहे। वह कितने उज्ज्वल थे, उनका मस्तिष्क कितना महान् प्रबल था। (तेहरवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 22 अगस्त, 1969)

ब्रह्मचर्य व्रत

महाराजा शान्तनु की आगे मच्छोदरी (सत्यवती) से संस्कार की इच्छा हुई। वह कौडली ब्रह्मचारी जिसको गंगशील कहते थे, एक समय मच्छोदरी के पिता के समक्ष जा पहुँचे। उनसे कहा कि भगवन्! आप अपनी कन्या को मेरे पिता को अर्पण कर दीजिए। मेरे पिता, तुम्हारी कन्या को विवाहित करना चाहते हैं। उस समय उन्होंने यह कहा कि हे! कौडली ब्रह्मचारी! हम तुम्हारे पिता का संस्कार तो कर सकते हैं, परन्तु देखो, मेरी कन्या की जो सन्तान होगी वह राज्य की अधिकारी नहीं होगी, इसलिए इस कन्या को हम उन्हें कदिप नहीं देंगे। उसी समय कौडली ब्रह्मचारी ने उनसे कहा महाराज! मैं आज प्रतिज्ञा कर रहा हूँ कि मैं राज्य को कदापि नहीं

भोगूँगा। उस समय उन्होंने कहा, महाराज! आप नहीं भोगेंगे तो आप की जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह अधिकारी बनेगी? उस ब्रह्मचारी ने कहा महाराज! आप भी मेरे पिता है, वह भी मेरे पिता है, मैं सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचारी रहूँगा, संस्कार नहीं कराऊँगा। उस समय मुनिवरो! कौडली ब्रह्मचारी ने यह नियम बना लिया, यह प्रतिज्ञा कर ली उस गंगेशील ने, कि संस्कार नहीं कराऊँगा और न राज्य का अधिकारी बनूँगा। जो तुम्हारी कन्या की सन्तान होगी वही राज्य की स्वामी बनेगी।

कुछ समय के पश्चात्, हमने सुना है, उसने महान् कन्या का संस्कार महाराज शान्तनु के साथ कर दिया गया। वह कन्या बड़ी सुन्दर तथा महान् थी। मुनिवरो! देखो, कुछ समय के पश्चात् हमें यह ज्ञात हुआ, कि उस महान् मच्छोदरी के दो बालक उत्पन्न हुए जो चित्रांगद और विचित्रावीर्य थे। कुछ समय के पश्चात् महाराज शान्तनु की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के समय राजा शान्तनु ने अपने तीनों पुत्रों को बुलाकर भीष्म से कहा, हे पुत्रा! जो तुमने प्रतिज्ञा की उसे भंग न करना अब मेरे अन्तिम सांस चल रहे है, जैसे तुम्हारी माता गंगोत्री ने कहा था वैसे ही जीवन भर ब्रह्मचारी रहना। माता का गर्भाशय तभी ऊँचा बनेगा, मेरा नाम भी तभी ऊँचा बनेगा, मेरा राष्ट्र भी तभी अच्छा बनेगा। तो आज मेरी भी यही इच्छा है। इस प्रकार सब पुत्रों को शिक्षा देकर तब, राजा ने मच्छोदरी से कहा, हे पत्नी! इस समय

मेरा मृत्युकाल है और मैं मृत्यु को प्राप्त हो रहा हूँ। यह तेरा राष्ट्र है और ये तेरे पुत्रहै। इस राष्ट्र में जितनी प्रजा है वह सब तेरे पुत्रके समान हैं, तो मुनिवरो! यह उच्चारण करके राजा शान्तनु मृत्यु को प्राप्त हुए। बड़े आनन्द पूर्वक उनका अन्त्येष्टि संस्कार किया गया।

तब उस कौडली ब्रह्मचारी ने चित्रांगद और विचित्र वीर्य दोनों को राष्ट्र का स्वामी बना दिया और वे राज्य का पालन करने लगे। उसके पश्चात् एक ऐसा काल आया, जब उस मधुस्थल में यह कौडली ब्रह्मचारी, माता मच्छोदरी को नित्यप्रति शास्त्रोक्त शिक्षा दिया करते थे तो उस समय उन दोनों पुत्रों के मन में पाप आया कि यह हमारी माता कैसी है, और यह कौडली ब्रह्मचारी इसके समक्ष रहा करता है। जब उनके मन में यह पाप आया तो एक रात्रिके समय वह गुप्त स्थान में विराजमान हो करके उनकी शास्त्रोक्त वार्ताओं को सुनने लगे। उस रात्रिमाता मच्छोदरी वार्ता को सुनते-सुनते निद्रा में लीन हो गयी ओर निद्रा में उनका भुज अपने आसन से नीचे आ गया। उस बालक ब्रह्मचारी ‘कौडली’ ने सोचा कि ऐसे तो माता को रात भर बड़ा कष्ट रहेगा, और यदि तुमने भुजाओं को खींच कर ठीक किया तो बड़ा भारी पाप होगा। वह सोचने लगे कि क्या करना चाहिए? तो देखो, मुनिवरो! उस ब्रह्मचारी ने अपने मस्तिष्क से माता की भुजा को खींच कर यथास्थान नियुक्त किया। दोनों पुत्रबड़े चकित हो गए और उन्होंने कहा हम तो बड़े पापी हैं। रात समाप्त होने पर

कौडली ब्रह्मचारी के चरणों से लिपट गए और पूछा, भगवन्! जिससे मनसा पाप हो जाए तो उसे क्या करना चाहिए। कौडली ब्रह्मचारी ने कहा ये वेदोक्त वाणी है कि यदि मानव से मनसा पाप हो जाए तो उसे अपने को अग्नि में दहन करना चाहिए, उसमें पाप सहित अपने को समाप्त कर देना चाहिए। तो उस समय उन्होंने प्रकट किया कि हमसे मनसा पाप हो गया है और हम अग्नि में प्रवष्टि होने जा रहे हैं। उस समय कौडली ब्रह्मचारी! ने उपदेश दिया कि हे ब्रह्मचारियों, अरे राष्ट्र पुत्रों! यह तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं। अग्नि भी दो प्रकार की होती है एक तो भौतिक और दूसरी ज्ञानग्नि। तुम अग्नि में क्यों प्रविष्ट हो रहे हो? अपनी ज्ञान रूप अग्नि में अपने मानस पाप को भस्म कर दो। जब यह ज्ञानाग्नि तुम्हारे समक्ष आएगी तो उसको स्पर्श करते ही और ज्ञानाग्नि में डुबकी लगाने पर देखोगे कि तुम पवित्रहो गए हो। मानस पाप उसमें भस्म होकर समाप्त हो जाएगा। बुद्धि द्वारा तुम उस ज्ञानाग्नि को धारण करो।

पाण्डु और धृष्टराष्ट्र का जन्म

उन दोनों ने ब्रह्मचारी की बातों को स्वीकार कर लिया, राष्ट्र का पालन करने लगे। कुछ समय पश्चात् विचित्रावीर्य की धर्मपत्नी से दो बालक उत्पन्न हुए। एक को पाण्डु और दूसरे को धृतराष्ट्र कहते है। धृतराष्ट्र नाम का बालक जन्मान्ध था। यह तो मानव का भोग होता है क्योंकि माता की मधुर आकृति हो ओर उसके बालक की ऐसी

आकृति। केसा महान् काल था द्वापर का, जिसमें ऐसे-ऐसे महान् बुद्धिमान राष्ट्र मे हो, कौडली ब्रह्मचारी जैसे विद्वान, जो मानव को अग्नि दहन से रोक कर ज्ञानाग्नि की आस्था पर पहुँचाने वाले थे। तो उस समय कौडली ब्रह्मचारी ने कहा था कि यदि ज्ञानाग्नि हमारे हृदय में प्रविष्ट हो जाये और उस ज्ञानोदय में यदि मानव मानव को देखे, तो अज्ञानता का कारण नहीं बनता। अज्ञान का कारण तब होता है, जब मानव सब कुछ भूल जाता है। और ज्ञानाग्नि, अज्ञान के अन्धकार में विलीन हो जाती है।(प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, नई दिल्ली, 2 अप्रैल, 1962)

आधुनिक मान्यता

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव! आपने कहा, कि विचित्रावीर्य के दो बालक हुए, परन्तु हमने सुना है भगवन् चित्रांगद और विचित्रावीर्य दोनों से जो मानसिक पाप हो गया था उस कारण वह जंगल में जा करके अग्नि में भस्म हो गये थे। उनसे जब कोई सन्तान न हुई तो माता मच्छोदरी ने अपने पुत्रव्यास को नियुक्त किया और कहा कि हमारा तो राष्ट्र ही समाप्त हो रहा है। राज्य को भोगने वाला कोई नहीं तुम किसी प्रकार से कोई प्रयत्न करो। व्यास मुनि ने कहा कि जो तुम्हारे दोनों पुत्रों की धर्म पत्नियाँ नग्न होकर मेरे समक्ष आ जाएँ तो उनके सन्तान उत्पन्न हो सकती है। जब दोनों नग्न होकर व्यास मुनि के समक्ष गयी तो उनकी दृष्टि की ज्योंति से एक-एक बालक

उत्पन्न हुआ।

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जी! पूर्व तो आपका यह वाक्य ही व्यर्थ है। देखो, तुम्हारे व्याख्यान के अनुकूल, क्या परमात्मा की कोई मर्यादा नियम आदि है कि नहीं? क्या किसी की नेत्रज्योति से सन्तान उत्पन्न हो सकती है? इस प्रकार तो किसी शास्त्रमें नहीं लिखा मिलता। यह बेटा। अवश्य ही किसी मूर्ख समाज की उपज है और ऐसी वार्ता वहीं चल सकती है। महर्षि व्यास मुनि तो जीवन भर ब्रह्मचारी रहे, वह निद्रा को जीतने वाले थे। आगे चलकर उनका संस्कार भी हुआ था और उनके एक पुत्रभी उत्पन्न हुआ था। वास्तव में यह गृहस्थ आश्रम प्रविष्ट का संस्कार है। वह गृहस्थ में प्रविष्ट हुए थे, ऐसा तो हमने सुना है, परन्तु यह हमने कभी नहीं सुना। ऐसा उस काल में कभी नहीं देखा जिस राजा का राष्ट्र समाप्त होता चला जा रहा हो तो ऐसा पाया गया हैं कि उसने दूसरे के पुत्रको ले लिया पर यहाँ तो ऐसा हुआ ही नहीं।

उनके वित्रितवीय दो बालक धृतराष्ट्र और पाण्डु उत्पन्न हुए। परन्तु वह कौडली ब्रह्मचारी जिसको गंगशील कहते हैं, वह बड़े महान् थे। उन बालकों को, उन पुत्रों को अपनी शिक्षा देने लगे। जो राष्ट्र पुरोहित होता था उसको इस आचार्य पद पर नियुक्त किया जाता था और व्यास मुनि राष्ट्र पुरोहित हुए। महर्षि पारा मुनि ने भी इन दोनों बालकों को शिक्षा दी। (प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, 4

अप्रैल, 1962)

भीष्म पितामह की माता गंगा पर आधुनिक काल की मान्यता

पूज्य महानन्द जीः भगवन्! हमे आपने द्वापर के समय और महाराजा गंगशील ब्रह्मचारी (भीष्म) के विषय में कहा था। परन्तु गुरुजी! आज हम अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा जब लाक्षागृह पर विचरण कर रहे थे तब हमने सुना था कि गंगशील की माता वह गंगा नदी थी जो आज भी पर्वतों से निकलकर मृत्युलोक पर बह रही है और इसी गंगा नदी का महाराज शान्तनु के साथ विवाह संस्कार हुआ था। इसने देव कन्या स्वरूप धारण किया था। संस्कार के समय महाराज शान्तनु से यह वचन हुआ था कि जो भी मेरा पुत्रहोगा उसका आहार मैं स्वयं कर जाया करूँगी। दूसरा यह सुना है कि एक समय महाराजा इन्द्र ने आठ गंधर्वो को शाप दे दिया था। वे ही आठ गन्धर्व है जो माता गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। परन्तु आपने तो इस सबकी रूप रेखा ही बदल दी है। आपकी रूप रेखा समझ नहीं आ रही है क्योंकि आधुनिक महाभारत में भी हमारे कथनानुसार ही अंकित है। अब हम यह जानना चाहते हैं कि हम आपके व्याख्यानों को स्वीकार करे या आधुनिक काल की महाभारत की वार्ताओं को स्वीकार करें।

महानन्द जी! इसमें तो कोई उलझन की वार्ता नहीं है क्योंकि जो तुम्हें सत्य प्रतीत होता हो उसी को स्वीकार कर लो। हमारी तो

इसमें कोई हानि नहीं है। परन्तु तुम्हारें उच्चारण के अनुसार हम एक वार्ता जानना चाहते हैं। तुमने एक बार कहा था कि ब्रह्मा जी की कृपा से यह गंगा पहले ब्रह्मलोक में बहती थी। उस समय इन्द्र ने गन्धर्वो को शाप दे दिया था। तब इन गन्धर्वो ने ब्रह्मा की पुत्री गंगा से याचना की थी कि हे माता! आप मृत्यु लोक में चले, क्योंकि वहाँ हम तेरे गर्भ से जन्म धारण करें, तुम स्वयं हमारा आहार करके हमारा उद्धार करते रहना ऐसा ही तो तुम्हारा कथन था।

पूज्य महानन्द जीः हाँ! हाँ!

इसका संक्षेप में उत्तर यह कि परमात्मा की कृपा से गंगा, पर्वतों से झरने के रूप में निकलकर अन्य नदी-नदो आदि से मिलकर वैश्यों तथा कृषकों की खेती को जीवन दान करती हुई कीट पतंगों, पशु पक्षियों एवं मानवां आदि को अपने अमृतरूपी जल से सन्तुष्ट करती हुई, जीवन दान देती हुई बहती है। आस्तिक इस अनुपम रचना के द्वारा परमात्मा के चिन्तन की ओर लग जाता है, परमात्मा में रमने लगता हैं। मानव का एक सिद्धान्त होना चाहिए कि सत्य को सत्य मानने में या उसके उच्चारण करने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। यह गंगा तो जल की तरह बह रही है, यह तो सर्वथा जड़ है, चेतना शून्य है, ज्ञान शून्य है। जल कभी कन्या रूप में आता है, क्या? यह हो सकता है? बेटा! कि कोई कन्या गंगा नदी में किसी स्थान पर गिर कर बह गई हो, उसको किसी ने निकालकर गंगा

नाम रख दिया हो। परन्तु जल वाली गंगा नदी देवकन्या बन गई हो, बेटा! हम तुम्हारे ऐसे वाक्यों को कभी भी मानने को तैयार नहीं क्योंकि ये तुम्हारे वाक्य परमात्मा की बनाई हुई प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। यह भी हो सकता है कि गंगा नामक देवकन्या कभी गंगा में गिर गई हो। उसकी राजा शान्तनु ने रक्षा कर दी हो। परन्तु तुम्हारी कल्पना को हम कभी नहीं मानेंगे, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है।

बेटा! तुमने जो यह कहा कि गंगा ब्रह्मा की पुत्री है, यह वाक्य तो सत्य है क्योंकि जो जहाँ से उत्पन्न होती है वह उसी की पुत्री होती है। परन्तु आज के मानव ने इस वार्ता को अच्छी प्रकार से विचार नहीं और न अच्छी प्रकार से समझा ही है। मानव अपने अज्ञान के कारण कुछ का कुछ मान बैठा है। इसका अभिप्राय यह है कि हमारे शरीर में नौ द्वार हैं, वे ही गन्धर्व हैं। मुनिवरो! मूलाधार चक्र से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक (इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियाँ) गंगा, यमुना और सरस्वती ये तीन नदियाँ बह रही हैं, जिनको तुम आकाशगंगा, मृत्युलोक की गंगा और पाताल गंगा कहते हो। तीन गंगाएँ हमारे इस नश्वर शरीर में हैं। गंगा ही इस शरीर के नौ द्वारों में रमण कर रही है, इनको स्वच्छ करती रहती है। ऐसी कौन-सी गंगा है, जो ब्रह्मा की पुत्री है? देखो, उस गंगा का नाम आत्मा है, जो इन नौ द्वारों वाले शरीर को पवित्रकर रहा है। यदि यह महान

आत्मा इस नौ द्वारों वाले शरीर मे न होता, तो इन नौ द्वारों का कुछ भी न बन सकता था। इसी के द्वारा शरीर पवित्रहोता है जैसे लौकिक गंगा में स्नान करके स्वच्छ हो जाते हैं, अपने शरीरों को पवित्रकर लेते हैं, उसी प्रकार से ब्रह्मा की पुत्री आत्मा रूपी गंगा के द्वारा यह नौ द्वारों का शरीर पवित्रहोता रहता है। परमात्मा तथा आत्मा का सम्बन्ध पिता-पुत्रका है। बेटा! यह ध्यान देने वाला विषय है कि जब आत्मा इस शरीर को त्याग कर चल देता है तब इस निष्प्राण शरीर को मानव अपवित्रमानते हैं। इसमें आत्मा के निवास तक ही इसको पवित्रमाना जाता है। अतः पवित्रकरने वाली वह गंगा आत्मा ही है।

बेटा! गंगा का एक आध्यात्मिक, योगाभ्यासियों का आलंकारिक वर्णन भी है जिसको मानव ने समझा नहीं। इस मानव शरीर में तीन नाड़ियां इडा, पिंगला सुषुम्ना या गंगा, यमुना, सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हैं। जब मानव योगाभ्यासी बनकर, मूलाधार में ध्यान करके रमण करता है तब उसको 'मृत्युलोक गंगा' का ज्ञान होता है। इसके पश्चात् जब आत्मा नाभिचक्र में और हृदयचक्र में, ध्यानावस्था में पहुँचता है तब उसे आकाश गंगा का ज्ञान होता है जब योगाभ्यासी आत्मा समाधि अवस्था में घ्राणेन्द्रिय-चक्र में ध्यान लगाता है तब वह त्रिवेणी में पहुँच जाता है, या त्रिवेणी का साक्षात्कार करता है। इससे आगे चलकर आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में पहुँच जाता है तब उस योगी

आत्मा को, ब्रह्मलोक की, गंगा का ज्ञान होता है। परन्तु मानव ने इस रूप रेखा को ठीक प्रकार से जाना तो है नहीं, इसलिए मानव स्थूल अर्थो की कल्पना करके भटक रहा है। भौतिक नदी गंगा को ही आज का मानव मुक्ति का साधन, अपनी अज्ञानता से समझ बैठा है। इस गंगा से तो केवल भौतिक शरीर ही स्वच्छ किया जा सकता है या प्यासे को उसके स्वच्छ जल से संतुष्ट किया जा सकता है। मानव का अन्तःकरण तो ज्ञान पूर्वक कर्त्तव्य कर्म करने से ही पवित्र होगा।

अब रही बात की राजा शान्तनु के समक्ष यह भौतिक नदी गंगा देवकन्या का शरीर धारण करके प्रस्तुत हो गई तो बेटा! यह वार्ता तो किसी अज्ञानियों के समाज में कहना, वहाँ तुम्हारी वार्ता स्वीकार कर लेंगे। इसमें हमे कोई आपत्ति नहीं परन्तु यहाँ तो तुम्हारी यह वार्ता चलेगी नहीं। (हास्य)

मुनिवरो! हमने तो द्वापर काल में यह देखा था कि राजा गंगेश्वर की गंगा नाम की पुत्री थी। इस गंगा से महाराजा शान्तनु का विवाह संस्कार हुआ था। इसके सात पुत्रउत्पन्न होकर समाप्त हो गए थे। इसके पश्चात् गंगशील नाम का आठवां पुत्रउत्पन्न हुआ, यह दीर्घायु हुआ। उसके समय-समय पर पर्जन्य ब्रह्मचारी, कौडली ब्रह्मचारी, देवव्रत और भीष्म पितामह तथा गांगये आदि नाम प्रसिद्ध हुए।

शान्तनु की द्वितीय पत्नी के जन्म की आधुनिक मान्यता

पूज्य महानन्द जी : गुरुदेव! जब यह गंगा समाप्त हो गई तो महाराजा शान्तनु का संस्कार मच्छोदरी (मत्स्योदरी) के साथ हुआ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हाँ! हाँ!

पूज्य महानन्द जी : अच्छा गुरुजी! तो यह मच्छोदरी किसकी पुत्री थी। (हास्य)

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा! किसकी उच्चारण करें।

पूज्य महानन्द जी! महर्षि व्यास जी ने तो इसके विषय में लिखा है कि यह नौका चलाने वाले मल्लाह की कन्या थी।

पूज्य महानन्द जी : अच्छा भगवन्! यह कन्या उस मल्लाह के यहाँ कहाँ से आई?

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा! इस कन्या ने उस मल्लाह के गृह में जन्म लिया था।

पूज्य महानन्द जी : अच्छा गुरुदेव! इस विषय में तो हमने बहुत ही अनोखी वार्ता सुनी है।

वह क्या?

पूज्य महानन्द जी : हमने यह सुना है कि महर्षि पारा की यह पुत्री थी। महर्षि पारा का ब्रह्मचर्य (वीर्य) मछली के गर्भ में चला गया था और उस मछली से ही इस मच्छोदरी का जन्म हुआ। (हास्य)

पूज्यपाद गुरुदेवः महानन्द जी! तुम तो तुकबन्दी लगा रहे हो कि जिसका नाम मच्छोदरी हो तो उसने मछली से जन्म लिया है। ये

मूर्खो वाले प्रश्न कहाँ से ले आए? हमारी समझ में तुम्हारे प्रश्न नहीं आ रहे हैं। महानन्द जी! तुम तो कुछ जानते हुए भी कुछ नहीं जानते। (हास्य)

पूज्य महानन्द जी : गुरुदेव! इसके विषय में ऐसा सुना है कि जब महर्षि पारा मुनि को विवेक हुआ तब उन्होंने अपनी धर्मपत्नी 'उच्चांगना' से कहा कि हे धर्मदेवी! मुझे आज्ञा दो, मैं इस समय तपस्या करने के लिए जा रहा हूँ। उस समय शान्तनु भी वहीं विराजमान थे। धर्मदेवी ने एक वाक्य कहाँ कि भगवन्! आप जा तो रहे हैं, परन्तु यदि मुझे पुत्रकी इच्छा हुई तो कैसे पूर्ण होगी? मुझे पुत्रको तो अवश्य उत्पन्न करना है। तो उस समय महर्षि पारा मुनि ने यह कहा कि तुम कागा को मेरे समक्ष नियुक्त कर देना। ऐसा कहकर महर्षि पारा मुनि प्रस्थान कर गए। वन में जाकर अखण्ड तपस्या करने लगे। इसके पश्चात् उनकी धर्मपत्नी में पुत्रकी इच्छा से काम शक्ति उत्पन्न हुई, तब उन्होंने उस समय कागा नामक दूत को अपने संदेश के साथ महर्षि पारा के पास भेजा। उस समय पारा मुनि ने अपनी गुप्त इन्द्रिय को मन्थन करके अपने ब्रह्मचर्य को किसी यन्त्रमें स्थापित करके कागा को दे दिया। कागा उसे लेकर जब गंगा के स्थान पर पहुँचे तो वहाँँ बहुत से व्यक्ति अपने-अपने वाक्य उच्चारण कर रहे थे। कागा को उनके वाक्यों को सुनने की इच्छा हुई। उसी समय कुछ असावधानी के कारण वह यन्त्रगंगा में गिर कर मछली के

मुखारबिन्द में चला गया। तो देखो, महर्षि पारा का महान ब्रह्मचर्य था, वह व्यर्थ नहीं जाता, तब उस मछली के गर्भाधान हो गया। उस मछली को किसी ने पकड़ कर उसके दो भाग कर दिए। मछली के गर्भ में कन्या विराजमान थी। जब दूसरी ओर कागा, महर्षि की धर्मपत्नी के पास पहुँचे तब ऋषि पत्नी ने कहा कि कहो भई कागा! तब उन्होंने कहा कि मुझको ऋषि ने वीर्य तो समर्पण कर दिया था परन्तु वह मध्य में ही समाप्त हो गया। तब ऋषि पत्नी ने उसे शाप दे दिया। उधर मछुए ने वह कन्या मल्लाह राज को समर्पण कर दी। मल्लाह लोग इसको मच्छोदरी कहने लगे। वह कन्या चन्द्रमा के तुल्य बढ़ने लगी, शीघ्र ही पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य पूर्ण यौवन और पूर्ण सौंदर्य को प्राप्त हो गई। भगवन्! कुछ काल पश्चात् महर्षि पारा मुनि गंगा को पार करने के लिए वहाँ पहुँचे जहाँ वह मच्छोदरी सुशोभित हो रही थी। महर्षि तुरन्त ही गंगा नदी पार करना चाहते थे परन्तु उस समय मच्छोदरी के पालक पिता भोजन पर नियुक्त थे। कहीं ऋषि क्रोधित न हो जायें इस कारण उसने मच्छोदरी से कहा कि तुम नौका द्वारा ऋषि को गंगा पार करा आओ।

गुरुजी! ऐसा सुना है कि जब वह मल्लाह की कन्या ऋषि के समक्ष पहुँची तो उस कन्या को अकेला पा करके ऋषि का मन वासनामय हो गया, उसका हृदय चंचल गति को प्राप्त हो गया। मच्छोदरी से ऋषि ने अपनी इच्छा प्रकट की। तब मच्छोदरी ने उत्तर

दिया कि महाराज! यह तो बड़ा पाप है। सूर्य उदय हुआ है, सूर्य का प्रकाश संसार में फैला हुआ है और वरुण हमारे समक्ष है। हम क्या करें? तो गुरुदेव! ऐसा सुना जाता है कि उस समय महर्षि पारा ने गंगा से जल लेकर ऊपर उछाल दिया, मानो इन्द्र बरसने लगा और वहाँ उन्होंने अपनी काम वासना को पूर्ण किया। भगवन्! हमने तो ऊपर कहे अनुसार ही सुना है, आपने तो इसकी रूप-रेखा को भिन्न कर दिया, तो वास्तव में हम क्या मानें? गुरुदेव! हमने सुना है कि उससे मच्छोदरी के गर्भ की स्थापना हो गयी और उस कुमारी कन्या मच्छोदरी के गर्भ से महर्षि व्यास उत्पन्न हुए तो गुरुजी। इस वार्ता में कहाँ तक यथार्थता है? कहाँ तक सत्य है? (हास्य)

बेटा! जो तुम उच्चारण कर रहे हो उस सबको हम मान लेते यदि हम स्वयं द्वापर काल को नहीं देखते, परन्तु आज कैसे करे। असत्य और निराधार वार्ता पर विश्वास नहीं होता। प्रकृति नियम के विरुद्ध वार्ता को हृदय स्वीकार नहीं करता। इसकी तो रूपरेखा इस प्रकार है।

महर्षि व्यास का जन्म

बेटा! महर्षि पारा को अपनी धर्मपत्नी से दो पुत्रथे, महर्षि व्यास और धुन्धु ऋषि। बेटा! यह जो वार्ता तुमने सुनाई है, यह सब किसी धूर्त मानव की बनाई हुई वार्ता है। तुम जानते ही हो कि मछली का गर्भाशय कैसा होता है। माता का जैसा गर्भाशय होगा वैसी ही उसके

सन्तान होगी अर्थात् मानव स्त्रा के गर्भाशय से मानव और मछली के गर्भाशय से मछली ऐसा परमात्मा का, प्रकृति का नियम है। इसमें कहीं भी अपवाद तक नहीं मिलता, यह तो बेटा तुम जानते ही हो।

पूज्य महानन्द जी : हाँ गुरुजी! इसमें यह है कि योगीजन अपने योग की शक्ति से परमात्मा के नियम के विरुद्ध भी कर सकते हैं, इसलिए सम्भव है कि ऊपर की घटना भी उसी रूप में घटी हो।

योगी परमात्मा के नियम विरुद्ध कार्य नहीं करते

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटा! हमने तुम्हें एक वाक्य निर्णय कराया था कि जो जिसके निकट पहुँच जाता है वह उसके विरुद्ध कोई कार्य नहीं करता। जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति किसी राजा के राष्ट्र में पहुँच जाए और वह वहाँ भाग्यवश राज्य का मन्त्रा बन जाए तो वह राजा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा। इसी प्रकार जो व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुँच जाता है, परमात्मा के ज्ञान को जानने वाला बन जाता है वह परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा। बेटा! यह भी जान लो कि महर्षि पारा मुनि ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो परमात्मा के नियम के विरुद्ध कोई कार्य करते। यह तो हो सकता है कि मानव के हृदय की गति चंचल हो जाए परन्तु ऐसे महान ऋषि तुरन्त ही उस पर नियन्त्रण कर लेते हैं।

मछली के गर्भ से मानव कन्या का जन्म होना तो सर्वथा ही नियम के विरुद्ध है। इसको तो कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी

स्वीकार नहीं करेगा। क्योंकि परमात्मा के बनाए नियम तो अटल हैं, सत्य हैं तीनों कालों में एक से हैं। परमात्मा की चलाई परम्परा को कोई भी तोड़ नहीं सकता। चाहे महर्षि हो, चाहे योगी हो, चाहे मुनि हो। बेटा! तुम्हें हमने प्रमाण दिया था कि जैसे किसी मानव को शीत लगने लगे और वह अग्नि के समक्ष जाए तो ज्यों-ज्यों उसमें अग्नि के परमाणु प्रवेश करते जायेंगे, त्यों-त्यों उसका शीत दूर हो जाएगा। ऐसे ही जो मानव उस परमात्मा के गुणों को जान लेता है और ज्यों-ज्यों, शनैः शनैः परमात्मा के गुण उसमें प्रविष्ट होते जाते हैं, त्यों-त्यों वह परमात्मा के नियमों में घिर कर कर्त्तव्य करने लगता है। बेटा! योगियों का तो ऐसा सुन्दर सिद्धान्त है। आज हमको उसे मान लेना चाहिए, इससे हमारा भी जीवन बनेगा और उसी में हमारा महत्व है।

बेटा! महर्षि पारा मुनि के दो पुत्रथे जो कि उनकी धर्मपत्नी के गर्भ से ही उत्पन्न हुए थे, एक महर्षि व्यास मुनि महाराज और दूसरे धुन्धु ऋषि महाराज। मुनिवरो! मच्छोदरी के दो बालक थे, जो कि मच्छोदरी के साथ शान्तनु का विवाह संस्कार होने के पश्चात हुए थे। बेटा! हमने ऐसा देखा और सुना था। यह है तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर, यदि कोई ऋषियों पर इस प्रकार लांछन आरोपित करता है तो यह उसकी बुद्धिमत्ता नहीं। इस पर तुम यह कहोगे कि ऐसे वाक्य तो महर्षि व्यास ने स्वयं कहे हैं। वास्तव में महर्षि व्यास ने तो यह कहा है कि गंगेश्वरी राजा की पुत्री गंगा थी, उसकी मृत्यु के पश्चात् शान्तनु

ने मल्लाह की अत्यन्त सुन्दर कन्या मच्छोदरी से विवाह संस्कार किया। बेटा! हमने तो ऐसा देखा और सुना है। अब रही वार्ता आधुनिक समय की, यह तुम मूर्खो वाली वार्ता हमारे सामने नियुक्त करने लगे हो तो अब बताओ हम तुम्हारी ऐसी वार्ताओं का कहाँ तक निर्णय करते रहेंगे। (द्वितीय पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 3 अप्रैल, 1962)

वेद व्यास ने वेद के चार खण्ड नहीं किये

पूज्य महानन्द जीः गुरु जी! हम जब भ्रमण कर रहे थे, तब हमने सुना कि ब्रह्मा ने वेद बनाया और द्वापरकाल में महर्षि व्यास ने इसके चार अंग बना दिए। तो यह वार्ता कहा तक यथार्थ है? इसके दो पक्ष हमारे समक्ष चल रहे है। एक पक्ष तो यह कहता है कि ये चारों वेद अनादि ऋषियों की वाणी से आये ओर कुछ कहते हैं नहीं, ब्रह्मा ने एक वेद सृष्टि के प्रारम्भ में ही बनाया और उसके पश्चात् जो द्वापर काल आया, महर्षि व्यास ने इसके चार विभाग बना दिये। यह चार काण्ड, एक ज्ञान काण्ड है, एक कर्मकाण्ड, एक उपासना और एक विज्ञान काण्ड। तो यह वार्ता कहाँ तक यथार्थ है? इसको हम आपके मुखारविन्द से जानना चाहते है।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटा महानन्द! जो ऐसा कहते है कि महर्षि व्यास ने एक के चार काण्ड बना दिये तो, महानन्द जी हम एक वार्ता और जानना चाहते है सिद्धान्त के अनुकूल, सिद्धान्त में

क्या ऐसा देखा भी गया है सतयुग द्वापर और कलियुग में त्रेता इनका रुपान्तर होता रहता है। जैसे आज द्वापर गया और फिर त्रेता भी गया और सतयुग भी गया और फिर आयेगा कलियुग। तुम्हें उन व्यक्तियों से प्रश्न करने चाहिए थे कि क्या व्यास मुनि हर युग में रुपान्तर कर देते है या वेदों परम्परा से ऐसा चला आ रहा है? क्योंकि यह न मानने वाला वाक्य हो जाता है। सबसे पूर्व यह मानों कि ब्रह्मा ने एक वेद बनाया। हम तुम्हारी वार्ताओं को मान लेते है, परन्तु द्वापर काल में महर्षि व्यास हुए और उन्होंने वेद के चार विभाग बना दिये, तो हम जानना चाहते हैं कि द्वापर काल में ही इनका रुपान्तर करते है या परम्परा से ऐसा है? या व्यास मुनि ने सृष्टि के आरम्भ से इसके चार भाग किये या द्वापर काल में कर दिये, तो क्या हर काल में करते हैं? (हास्य) तो बेटा! यह हमारा प्रश्न है इसका उत्तर भी तुम दो। (हास्य)

पूज्य महानन्द जी : गुरु जी। इसका उत्तर यह है कि ऐसा हो सकता है कि सतयुग और त्रेता काल में इनकी एक ही संगति हो और द्वापर काल में महर्षि व्यास इनके चार विभाग बना देते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा तो महानन्द जी! क्या तुम्हारा यह वाक्य कोई मान लेगा? हम यह जानना चाहते है कि वेदों पर क्या आपत्ति आ गई और क्या बुद्धिमानों पर आपत्ति आ गई थी जो सतयुग में, वेद का एक भाग बना दिया और व्यास जी पर क्या आपत्ति आ गई,

कि वेद के चार भाग बनाने पड़े उन्हें हम जानना चाहते हैं?

पूज्य महानन्द जी : गुरु जी ऐसा कहते हैं कि द्वापर का काल कुछ ऐसा आता है जिसमें अज्ञानता आती है और अज्ञानता आ जाने के कारण व्यास मुनि इसके चार भाग कर देते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः अच्छा बेटा! तुम्हारी वार्ताओं को मान लेंगे, परन्तु हम कैसे माने, जब हमने व्यास मुनि को देखा है, कैसे माने इस व्याख्यान को, माना नहीं जाता तो विश्वास भी नहीं होता। बेटा! यदि सिद्धान्त लेते हैं, तो सबसे पूर्व हमारा वेद कहता है ऋषि भी ऐसा कहते है कि सृष्टि के आरम्भ में आदि आचार्यों, चारों ऋषियों द्वारा इन वेदों का अवतरण हुआ। अच्छा रही यह वार्ता कि महर्षि व्यास ने वेद के चार काण्ड बनाए तो बेटा! इस बात को अवश्य स्वीकार कर लेते यदि हम महर्षि व्यास को न देखते और उनके दर्शन न करते। कोई दार्शनिक कहता हो या योगी या कोई प्रमाण हो तो हम तुम्हारे वाक्य अवश्य मान लेते यदि वे सत्य होते। सत्य को मानने में किसी को आपत्ति नहीं। (तृतीय पुष्प, आर्य समाज, विनय नगर, नई दिल्ली, 7 अप्रैल, 1962)

प्राण विद्या का ज्ञाता महान् बलिष्ठ

कोई भी मानव यदि मानवीय दर्शनों में जाना चाहता है, तो मानव दर्शन को जाने, कि मानव दर्शन क्या है? मानव दर्शन है कि संसार रूप को, इस मानव वृत्त रूप को जाना जाये। यह एक बिन्दु

है जैसे वट का वृक्ष होता है उस वृक्ष के बीज पृथ्वी में ओतप्रोत होते ही उसमें प्राणतत्त्व उद्बुध होने लगता है, एक अंकुर में से एक विशाल वृक्ष बन जाता है। इसी प्रकार मन और प्राण का यह विशाल जगत् दृष्टिपात् आता है, लोक लोकान्तरों का विशाल जगत् दृष्टिपात् आता है। नाग, देवदत्त, धनजय, कूर्म, कृकल इन प्राणों को जानने वाला प्राणी अपने मानव शरीर का आकुंचन, कर सकता है, व्यापक से व्यापक बना सकता है, इन्हीं प्राणों को अपने शरीर के किसी एक विभाग में ला सकता है। जहाँ प्राण और मन दोनों का सन्निधान हो जायेगा। समन्वय हो जायेगा, वहीं मानव में गुरुता और ऊर्ध्वा बन जाती है।

प्राणों की क्रियाओं की जानने वाला मानव महान बलिष्ठ होता है। पितामह भीष्म इन क्रियाओं को जानते थे। वह प्राणायाम करके संग्राम करते थे तो जब वाण आते थे तो उनके शरीर से स्पर्श कर दूरी चले जाते थे। क्योंकि प्राण में ऐसी महत्ता है। इस प्राण के द्वारा ही वैज्ञानिक अपने यान में प्राण क्रिया को स्थिर करके विश्वभान मन क्रिया को स्थिर करके एक यान का निर्माण करके लोक लोकान्तरों में गति करते हैं मानो रमण कर जाते हैं। (इक्तीसवाँ पुष्प, कर्णवास, 7 जून, 1976)

मानव के जीवन के कृष्ण और शुक्ल पक्ष

चन्द्रमा जब षोडश कलाओं से युक्त होता है, तब अमृत प्रदान

करता है। चन्द्रमा की षोडश कला प्रतिपदा से ले करके अमावस्या तक षोडश कला वाला प्रकाश धीरे-धीरे घटित होता रहता है। वह धीरे-धीरे समाप्त होती है। अमावस्या का दिवस आता है तो चन्द्रमा की एक भी कान्ति नहीं रहती। वह कान्ति लुप्त हो जाती है। विचार क्या कि मानव के जीवन में भी इसी प्रकार दोनों पक्ष माने जाते हैं। एक हमारे यहाँ शुक्ल पक्ष कहलाता है और दूसरा हमारे यहाँ कृष्ण पक्ष कहलाया गया है। मानव का जीवन एक तो कृष्ण पक्ष का है और एक शुक्ल पक्ष का है। शुक्ल कहते है, प्रकाश को और कृष्ण कहते हैं, अन्धकार को। एक अन्धकार का और एक प्रकाश का पक्ष माना गया है। अमावस्या से लेकर पूर्णिमा के दिवस तक शुक्ल पक्ष माना गया है और जहाँ चन्द्रमा शनैः शनैः अपनी कलाओं से समाप्त होता है मानो पूर्णिमा से लेकर के अमावस्या तक यह कृष्ण पक्ष कहलाता है। यह अन्धकार में ले जाता है और यह कृष्ण पक्ष है।

महाभारत का संग्राम हो रहा है। संग्राम होते हुए जब अर्जुन के तीखे बाणों से, अस्त्रों षस्त्रों से पितामह भीष्म मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हैं। वह शैय्या किसकी है? बाणों की शैय्या पर विद्यमान हैं। उनका मस्तिष्क नीचे को हो गया उस समय संग्राम में ही पितामह भीष्म कहते है कि अरे! कोई है जो मेरे ब्रह्मपद को ऊँचा बना दे? इस मस्तिष्क को ब्रह्मपद कहते हैं। इस शरीर में एक ब्रह्मपद है, जहाँ मनुष्य को ज्ञान की उत्पत्ति होती है। उसे ब्रह्मपद

कहा जाता है, जिसे मस्तिष्क कहा जाता है। कंठ से ऊपरले भाग को ब्रह्मपद कहा जाता है। वह ब्रह्मपद नीचे को हो गया था। भीष्म ने घोषणा की, कि कौन पुत्रहै, मेरे यहाँ जो मेरे ब्रह्मपद को ऊँचा बना दे। दुर्योधन नाना अस्त्रों षस्त्रों को त्याग कर वहाँ वस्त्रों के ऊँचे-ऊँचे व्रत (तकिए) लेकर ले आएँ। उन्होंने (भीष्म ने) कहा अरे दुर्योधन। यह मेरा तकिया नहीं है। यह मेरे सिर के नीचे रहने वाला आसन नहीं है। तब उन्होंने अर्जुन से कहा हे अर्जुन! मेरे ब्रह्मपद को ऊँचा करो। तो अर्जुन ने अपने गांडीव धनुष को लेकर के अपने तीखे वाण से उनके मस्तिष्क के पिछले भाग का छेदन करके ब्रह्मपद ऊँचा बना दिया। वह वाणों की शैय्या पर विराजमान है, वहीं उनका बिछौना है, वहीं आसन बना हुआ है। (बत्तीसवाँ पुष्प, ग्राम मज्ककीपुर, 9 मार्च, 1977)

महाराजा शान्तनु के जेष्ठ पुत्रा, 'पितामह भीष्म जब उन पर अर्जुन के बाणों की वृष्टि हुई तो देखो, वे शर शय्या पर, बाणों की शैया पर विद्यमान हो गए। उस समय उन्होंने यह संकल्प किया हुआ था कि जब तक यह सूर्य उत्तरायण में नहीं होगा, तब तक अपने शरीर को नहीं त्यागूंगा। (पैतिसवाँ पुष्प, कलकत्ता, 28 सितम्बर, 1979)

महाभारत का काल समाप्त होने जा रहा था युद्ध स्थली समाप्त हो गयी थी। जब युद्ध समाप्त हो गया, संग्राम शान्त हो गया तो

महारानी द्रौपदी पितामह भीष्म के चरणों में ओत-प्रोत हो गयी। पितामह भीष्म बाणों की शैय्या पर विराजमान है। उस समय महाराजनी द्रौपदी ने यह कहा, हे भगवन्! मेरी इच्छा ऐसी हो रही है कि आपके लिए एक सुन्दर आसन होना चाहिए जिससे इन बाणों को शरीर से दूर करके आपके लिए एक विश्राम स्थल होना चाहिए। उस समय देवव्रत कहते है, हे पुत्री! मेरे शरीर से रक्त संचरित हो रहा है परन्तु जितना भी रक्त मेरे शरीर से जाता है उतना ही मेरा जीवन उत्तरायण को प्राप्त हो रहा है। उन्होंने कहा जैसे भगवन्, आपकी इच्छा। महाराजा युद्धिष्ठर, अर्जुन और महारानी द्रौपदी सर्वत्रउनके चरणों को छूते रहते और उनसे प्रश्न करते रहते, परन्तु उन्होंने एक ही वाक्य कहा था कि एक माह में दो पक्ष होते है। एक को कृष्ण पक्ष और एक को शुक्ल पक्ष कहते हैं। एक अन्धकार का पक्ष होता है और एक प्रकाश का पक्ष होता है। (वास्तविक देवपूजा, अमृतसर, 20 अप्रैल, 1977)

भीष्म पितामह का उपदेश

महाभारत युद्ध समाप्त हो गया था। जब संग्राम समाप्त हो गया तो महारानी द्रौपदी, राजा युधिष्ठिर और नाना ऋषिगण भीष्म पितामह के द्वार पर आने लगे। उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हमारा जो महाभारत का संग्राम हुआ है, वह कृष्ण पक्ष में हुआ है। कृष्ण पक्ष के दो विचार होते हैं। एक तो स्वाभाविक बाह्य जगत् है इसमें

पूर्णिमा से अमावास्या तक को कृष्णा पक्ष कहा जाता है। और अमावास्या से पूर्णिमा तक को शुक्ल पक्ष कहा जाता है। दूसरा आन्तरिक जगत् में भी इसी प्रकार मानव के जीवन में दो प्रकार के पक्ष होते है, एक अन्धकार का होता है तो एक प्रकाश का होता है। एक वह जीवन होता है जिस जीवन में मानव को अन्धकार छा जाता है, अन्धकार में परिणत होता हुआ अपने को वह कुछ स्वीकार नहीं करता और यह अनुभव करता है कि मेरा जीवन तो यों ही जा रहा है। एक वह शुक्ल पक्ष का जीवन है। जिसमें मानव के समीप ज्ञान आता रहता है, प्रकाश आता रहता है द्रव्य आता रहता है और वह मानव शुक्ल पक्ष में प्रवेश करके अपने को उज्ज्वल अनुभव कर रहा और अनुभव करता हुआ वह यह स्वीकार करता है कि मेरा जीवन वास्तव में प्रकाश में है। एक समय महारानी द्रौपदी ने भीष्म पितामह से कहा कि प्रभु! आप जो इन बाणों की शैय्या पर विराजमान हैं इसे कृष्णा पक्ष कह रहे है। हे पितर! मैं यह जानना चाहती हूँ कि आप जो इस आसन पर विद्यमान हो रहे हैं आपका कृष्णापक्ष और शुक्लपक्ष से क्या अभिप्राय है? उस समय पितामह भीष्म कहते हैं कि कृष्णा पक्ष और शुक्त पक्ष का अभिप्राय यह है कि मानव के जीवन में दो पक्ष आते हैं। एक ज्ञान का पक्ष है और एक अज्ञान का पक्ष है। अज्ञान का नाम कृष्णा पक्ष है, जिसमें अन्धकार रहता है अन्धकार है, और ज्ञान का जो पक्ष है उसको शुक्ल पक्ष

कहते है, उसमें प्रकाश रहता है। वह मानव को प्रकाश में ले जाता है। इसलिए हे पुत्री! मैं यह चाहता हूँ कि जिस समय महाभारत का संग्राम हुआ, मैं इन बाणों की शैय्या पर विराजमान हुआ। वह मेरा अन्धकार का पक्ष था। क्योंकि सूर्य दक्षिणायन में चला गया था। सूर्य ज्योति ज्योति मयी कहलाई जाती है। इसलिए जो ज्योति मयी है, प्रकाशमयी ज्योति देने वाला है उसका पक्ष अन्धकार में, वह कृष्ण पक्ष दक्षिणायन चला गया था और जब यह उत्तरायण आ जाएगा तो प्रकाश हो जाएगा।

तो मुनिवरो! सूर्य का अभिप्राय क्या है? ज्ञान। जब उन्होंने कहा कि हे पुत्री! मेरे हृदय में जब ज्ञान आ जाएगा। मानो मैंने यह जो पाप का अन्न ग्रहण किया था, महाराजा दुर्योधन का, वह रक्त प्रवाह से शरीर में भ्रमण कर रहा है। जो अब पृथ्वी के आँगन को जा रहा है। वह जो दूषित अन्न का रस है, वह जो रक्त है वह जब समाप्त हो जाएगा तो शनैः शनैः मेरे में शुक्ल पक्ष आ जाएगा। ज्ञान आने के पश्चात् मानव का जीवन शुक्ल पक्ष में बन जाता है। वे अपनी संकल्प शक्ति से अपने शरीर को त्यागने वाले थे। उन्हें सर्वत्रराष्ट्रपिता कहा जाता था। वह ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य में महान सत्ता होती है ब्रह्म और चरी यह दो ही अर्थ माने जाते हैं। ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और चरी कहते हैं उसके विज्ञान को और उसकी आभा को। जो दोनों प्रकार के पक्षों को चरने वाला है वह ही ब्रह्मचारी कहलाता है।

ब्रह्मचारी कौन है? जो अपनी चरी की रक्षा करता है। मानो जो ब्रह्म को जानता है। वही तो ब्रह्मचारी कहलाता है। राष्ट्र का मोह और कर्त्तव्य का पालन करने के लिए, अपनी माता सत्यवती की आज्ञा का पालन करने के लिए वह राष्ट्र में दुर्योधन के पक्ष में रहे। परिणाम क्या हुआ? उनमें अज्ञान आ गया। प्रकाश लुप्त हो गया। उन्होंने (पितामह भीष्म ने) कहा हे देवी! मेरा प्रकाश लुप्त हो गया था। मैं अन्धकार में आ गया था। मैं आज अन्धकार से दूर हो गया हूँ। मानो महाभारत में धृतराष्ट्र का वंश समाप्त हो गया। पांडवों का वंश ज्यों का त्यों बना हुआ है। मानों मेरा कृष्ण पक्ष समाप्त हो गया है और मैं शुक्ल पक्ष में आने वाला हूँ।

उनका ब्रह्म का उपदेश चल रहा था कि हे पुत्री! संसार में मानव को ऊँचा कर्म करना चाहिए। मानव को दुःखित को दृष्टिपात करके अपने में दुःखित अनुभव करना चाहिए। उस समय महारानी द्रौपदी ने कहा प्रभु! आज तो आप ऐसे ब्रह्मवादियों के उपदेश दे रहे हैं, परन्तु उस समय आपका उपदेश कहाँ चला गया था, जब रजस्वला होते हुए मानो मैं रज में परिणत हो रही थी और मेरे चीर को महाराजा दुःशासन के द्वारा हरण किया जा रहा था। मेरे वस्त्रों को हरण किया जा रहा था। आप सभा में विद्यमान थे, उस समय आपका ब्रह्म ज्ञान कहाँ चला गया था? ब्रह्म का उपदेश कहाँ चला गया था? भीष्म कहते हैं कि हे पुत्री! जिस समय तुम्हारा चीर हरण हो रहा था,

दुःशासन तुम्हारे चीर को हरण कर रहा था, उस समय मेरा कृष्ण पक्ष माना गया था। वह ज्ञान का पक्ष नहीं। मैंने राजसी अन्न को ग्रहण किया था। उससे मेरे रक्त में, मनोबल में अन्धकार छाया हुआ था। उस अन्धकार का परिणाम यह हुआ कि हे पुत्री! मैं तुम्हारी रक्षा न कर सका। क्योंकि अज्ञान में मानव, मानव की रक्षा नहीं कर सकता है, और जब प्रकाश होता है, जब ज्ञान होता है तब मानव, मानव की रक्षा करता है। तो हे पुत्री! इस समय मैं तुम्हारे वाक्यों को दृष्टिपात् करता हुआ, तुम्हारे शब्दों को श्रवण करता हुआ मैं स्वतः दुःखित हो रहा हूँ। मैं अपने में यह अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी जो यह बाणों की शैय्या है वह परिणाम केवल उस पाप का है। हे पुत्री! वह जो पाप कर्म है वहीं तो मुझे इस दशा में लाया है। जब उन्होंने ऐसा वाक्य कहा तो द्रौपदी मौन हो गई। और महारानी द्रौपदी ने कहा धन्य है प्रभु! हे पितर! कोई वाक्य नहीं। अब मेरी इच्छा यह हो रही है कि आप, अब अपने शरीर को त्याग दें, तो बहुत ही प्रिय होगा। क्योंकि आपके शरीर को दृष्टिपात् करते हुए भी मुझे बड़ा दुःख हो रहा है और मैं अपने में यह अनुभव कर रही हूँ कि मेरे महापिता को यह क्या हो गया? मेरा महापिता कितना उज्ज्वल है, कितना महान है, आज किस शैय्या पर विराजमान है। हे प्रभु! अब सूर्य दक्षिणायन आ रहा है आप अपने शरीर को त्याग दीजिए।

भीष्म जी कहते हैं नहीं पुत्री अभी मेरे जीवन के शुक्ल पक्ष आने

में अभी कुछ सूक्ष्मता है। उस शुक्ल पक्ष को पूर्णत्व आने दीजिए और जब वह पक्ष आ जाएगा तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा। मैं अपने में यह अनुभव करने लगूँगा कि मेरी पुत्री, मेरे समीप विद्यमान है और मेरा जीवन ऐसा उज्ज्वल बन रहा है जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी कलाओं से परिपक्व होता रहता है, अपनी कलाओं में आता रहता है, और वह प्रकाश में संसार को लाता रहता है, अमृत को बखेरता रहता है। उस अमृत से माता वसुन्धरा अमृतमय हो जाती है। रसमयी हो जाती है और वह नाना पदार्थो को प्रदान करने लगती है। पदार्थो की उत्पत्ति भी उसी के द्वार से होने लगती है। तो हे देवी! मैं प्रभु से याचना कर रहा हूँ, गायत्री माता की गोद में जा रहा हूँ, मैं साधना की ज्योति में प्रवेश कर रहा हूँ। मुझे इन बाणों की शैय्या का दुःख नहीं है। क्योंकि आत्मा तो सदैव एक चेतना में बद्ध रहने वाली है। आत्मा किसी भी काल में विनाश को प्राप्त नहीं होता। आत्मा तो केवल संस्कारों को लेकर के उदान प्राण मानो चित्त को लेकर अन्य लोकों को प्राप्त होता रहता है।

हे पुत्री! आज तुम्हे आत्म ज्ञान होना चाहिए। आत्म ज्ञानी जो पुरुष होता है वह महान् होता है। हे पुत्री! राजा हो तो वह भी आत्म ज्ञान वाला हो, ब्रह्मवादी हो। ब्रह्मज्ञान से ही राष्ट्र और समाज ऊँचे बनते हैं। जिन राजाओं को ब्रह्म ज्ञान नहीं होता उन राजाओं के राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग होता रहता है, और विज्ञान के दुरुपयोग होने

पर राजा के राष्ट्र में नाना प्रकार की रक्तमयी क्रान्तियां उत्पन्न हुआ करती हैं। हे पुत्री! आज मैं तुम्हें सुराष्ट्र का विचार देने के लिए विद्यमान हूँ। मैंने राज्य सभाओं में राजा की बहुत सी वार्ता श्रवण की हैं। मैं राज्य सभाओं में नियमावलियों का निर्माण करता रहा हूँ और वह जो नियमावली निर्मित होती रही है उनमें मैंने नाना प्रकार का विधान, नाना प्रकार की राष्ट्रीय नियमावलियों का निर्माण किया है।

तुम्हें यह प्रतीत होगा, त्रेता के काल में, राम के तीखे बाणों से रावण जब मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हो गए, युद्ध क्षेत्रमें उस समय भगवान राम और लक्ष्मण दोनों विद्यमान थे। तब लक्ष्मण कहते है प्रभु! हम विजयी हो गए हैं, परन्तु राम कहते हैं कि हे लक्ष्मण! हम विजयी नहीं हुए है। क्योंकि रावण इतना नीतिज्ञ था, इतनी नीति को जानने वाला था, इतना वैज्ञानिक था, वेदों का अध्ययन करने वाला था और मुझे ऐसी प्रतीत होता है जैसे आज इस विश्व से व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया है। राम ने जब ऐसा कहा तो उस समय लक्ष्मण कहते हैं कि आप ऐसे दुःखित वाक्य क्यों कह रहे हैं? उन्होंने कहा कि जाओ, लक्ष्मण! तुम रावण से राजनीति की वार्ता श्रवण करके आओ। उस समय लक्ष्मण ने कहा बहुत प्रिय! लक्ष्मण अपने अस्त्रों-षस्त्रों से युक्त होता हुआ उस भूमि में जाता है, युद्ध क्षेत्रमें प्रवेश करता है। रावण के मस्तिष्क के अग्र भाग में न आ करके पिछले भाग में विराजमान हो करके यह कहता है, ‘‘हे रावण! हे

लंकापति!! मैं कुछ राजनीति की वार्ता जानना चाहता हूँ। परन्तु रावण ने कोई वार्ता प्रकट नहीं की और मौन रहे। लक्ष्मण राम के समीप पहुँचे और राम से कहा प्रभु! रावण कोई वार्ता प्रकट नही कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मूर्छा में परिणत हो गए हैं, मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं। राम ने लक्ष्मण से पूछा कि उस समय तुम्हारा स्थान रावण के किस आँगन में रहा। उन्होंने कहा कि उनके ऊर्ध्व आंगन में। उन्होंने कहा तुम नीतिज्ञ नहीं हो, वह महान् है, तुम उनके चरणों में विद्यमान हो जाओ। लक्ष्मण और राम दोनों का गमन होता है। दोनों जा करके, उनके चरणों की वन्दना करके बोले रावण! हम कुछ राजनीति की वार्ता को जानना चाहते हैं। रावण ने कहा, हे राम! तुम राजनीति को जानना चाहते हो, हाँ, आप दो शब्द उच्चारण कर जाइए। जिससे राज्यसभा में हम उन वाक्यों को निर्धारित कर सकें और उसका प्रसार कर सकें। उन्होंने कहा कि राम! मैं तुम्हें क्या उच्चारण कर सकता हूँ? अब तो मैं मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हूँ। तुम्हें यह प्रतीत है कि राजा के राष्ट्र में विज्ञान होना ही चाहिए, परन्तु विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। मैंने बहुत परम्परा मे आदि ब्रह्मा से जो मेरे गुरुदेव थे, उनके चरणों में विराजमान हो करके यह कहा था कि मैं अपने राष्ट्र में विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होने दूंगा। क्योंकि विज्ञान के दुरुपयोग होने पर राष्ट्र का विनाश हो जाता है। राष्ट्र अग्नि के मुख में प्रवेश कर जाता है। मैं

वह नहीं कर पाया। मैं उसे अपने में धारण नहीं कर सका हूँ, इसलिए हे राम! सबसे प्रथम तो वह वाक्य है कि यदि तुम अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहोगे, महान बनाना चाहोगे तो तुम्हारे यहाँ विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। विज्ञान के दुरुपयोग होने पर समाज अकर्मण्य बन जाता है, वह महान कार्य नहीं कर पाता। इसलिए उस राजा के राष्ट्र में रक्तमयी क्रान्ति होती है, और वह राजा नष्ट हो जाता है। इसलिए आज मैं मृत्यु की शैय्या पर विराजमान हूँ यदि मेरे राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग होता, चरित्रकी तरंगों होती तो आज मेरी यह दशा न होती। उसके पश्चात् रावण ने कहा, हे राम! यदि तुम राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहते हो तो राजा में आलस्य और प्रमाद नहीं होना चाहिए। राजा जब आलस्य और प्रमाद में आ जाएगा, दूसरों की कन्याओं और पुत्रियों पर अत्याचार करना प्रारम्भ करेगा तो जानो, वह राष्ट्र आज नहीं तो कल नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। ये राजनीति की वार्ताएँ हैं। एक नीतिकार यह कहता है, रावण यह कहता है। हे राम! देखो, आज मैं पराजित हूँ। परन्तु मैंने अपने जीवन में, जब तक मेरा एक-एक श्वास गति करता रहा है उस समय तक मैंने तुम्हें लंका में प्रवेश नहीं होने दिया, क्योंकि मेरा भुजावल बलवान था। मैं यह चाहता था अपनी विद्या के कारण स्वर्ण में सुगन्धि लाना चाहता था। वह जो स्वर्ण है इसमें सुगन्धि आ जाए। तो वह महान धातु बन जाएगा। मैं उसमें सुगन्धि न ला सका हूँ।

क्योंकि सुगन्धि लाना वैज्ञानिकों का यह कर्त्तव्य था। नाना धातुओं को जानने का वैज्ञानिकों का कर्त्तव्य था। परन्तु कोई बात नहीं मेरी एक इच्छा यह थी कि स्वर्ग में मैं अपना एक स्थान चाहता हूँ। स्वर्ग को जानता रहा, स्वर्ग की आभा में रमण करता रहा, परन्तु स्वर्ग को मैं नहीं ला सका। स्वर्ग क्यों नहीं ला सका? क्योंकि मैं कहता रहा कि मैं स्वर्ग कल ला सकूँगा। इसलिए हे राम! जिस कार्य को तुम्हें करना है उसे स्वतः ही तत्काल कर लो अथवा उसे कल पर त्यागना एक मूर्खता है। वह अकर्मण्यता है और यह पामरों का कर्त्तव्य है। इसलिए आज जो भी तुम्हें कर्म करना है उसे अभी करना चाहिए। यह आचार्यों का कथन है कि मानव को दुरिता (पापों में) में नहीं जाना चाहिए। पितामह भीष्म यह द्रौपदी को उच्चारण कर रहे थे कि यह शब्द रावण के भगवान् राम के लिए थे।

भीष्म पितामह ने द्रोपदी से कहा, कि मैं तो अब इस संसार से चला जाऊँगा। परन्तु इस राष्ट्र को ऊँचा बनाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। वास्तव में तो इस संसार का भविष्य यह कहता है कि यह संसार ऊँचा बनने वाला नहीं। क्योंकि यहाँ बुद्धिमानों का ह्रस हो गया है। बुद्धिमान समाप्त हो गए है। राष्ट्र और समाज जो बना करता है वह बुद्धिमानों से बनता है। नम्रता और विवेक से ऊँचा बनता है आज राष्ट्र ऊँचा बनेगा तो विवेक से ऊँचा बनेगा। तुमने और युधिष्ठिर ने और कृष्णा ने शब्दों को स्वीकार नहीं किया, जो कृष्णा के शब्दों को

स्वीकार कर लेते तो तुम्हारा राष्ट्र पामर गति को प्राप्त नहीं होता। वह दुर्योधन ने स्वीकार नहीं किया और न तुमने ही किया। इसलिए आज यह दशा है कि यहाँ रक्त की धाराएँ गति कर रही हैं देखो, युद्ध का कांड समाप्त हो गया और मैं भी शरीर को त्यागने वाला हूँ।

पितामह भीष्म का शरीर त्याग

पितामह भीष्म ने मृत्यु से चार दिवस पूर्व यह कहा था महारानी द्रोपदी और पाँचों पाण्डवों से कि अब मैं चार दिवस में अपने शरीर को त्याग दूँगा। क्योंकि अब मुझे ज्ञान हो गया है। मेरे जीवन का अन्धकार समाप्त हो गया है। अब मैं अपने शरीर को त्याग दूँगा। जिससे कि मैं उत्तरायण में चला जाऊँ। उत्तरायण ज्ञान और प्रकाश को कहते है, अब मुझे ज्ञान हो गया है। (पैतीसवाँ पुष्प, कलकत्ता, 28 सितम्बर, 1979)

पितामह भीष्म यह उच्चारण करते हुए और वेद मन्त्रों का, गायत्री का जपन करते हुए नाना ब्रह्म का उपदेश देकर शान्त हो गये। मृत्यु को विजय करने वाले भीष्म पितामह ने गायत्री की गोद में प्रवेश हो करके प्राणायाम किया और अपने शरीर को त्याग दिया, और यह कहा कि अब मैं उत्तरायण में पहुँच गया हूँ। मेरा हृदय पवित्रबन गया है। मेरा अन्तरात्मा प्रकाश में चला गया है। सूर्य भी दक्षिणायन से उत्तरायण में आ गया है। बाह्य-जगत् आन्तरिक जगत् दोनों श्रेष्ठ बन गए। इसलिए अब मैं मोक्ष के निकट जाऊँगा। मानो इससे मेरा एक

जन्म और होगा और उसमें मैं मौन रह करके मैं मोक्ष को प्राप्त हो जाऊँगा। यह उच्चारण करके उन्होंने अपने शरीर को त्याग दिया।

(बत्तीसवाँ पुष्प, मज्कीपुर ग्राम, 9 मार्च 1877)

पितामह भीष्म एक वर्ष चार दिवस तक बाणों की शैय्या पर स्थिर रहे। वह क्यों रहे? क्योंकि वह उत्तरायण में नहीं पहुंचे थे। उत्तरायण का यह भाव नहीं है कि सूर्य उत्तरायण में चला गया है या दक्षिणायन में आ गया है। पितामह भीष्म की यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक मुझे आत्मबोध नहीं हो जाएगा, तब तक मैं अपने इस शरीर को इच्छा से नहीं त्यागूँगा। एक वर्ष चार दिवस तक वह मृत्यु की शैय्या पर रहे, वाणों की शैय्या पर रहे। जब तक उन्हें आत्मज्ञान नहीं हो गया वह मृत्युय नहीं बने, तब तक महारानी द्रौपदी उन्हें भोजन कराती रही। स्वयं कला कौशल करती और परिश्रम करके उसके बदले जो अन्न आता, वह पितामह को प्रदान करती रही। उस अन्न को पान करके उनके जीवन में उद्बुद्धता आ गयी, प्रकाश आ गया। प्रकाश के आने पर उन्होंने अपने शरीर को त्याग दिया। क्योंकि वह जब अन्न को पान कराती थी तो गायत्री का जाप होता रहता, गायत्राणी के गर्भ में प्रवेश होती रहती। जिस समय वह भोजन को भोजनालय में तपाती उस समय गायत्राणी छन्दों का गायन करती और जब वह परिश्रम करती तब भी जिससे उनकी बुद्धिनिर्मल हो जाती, उनकी रूचि ब्रह्म में लीन रहती। ऐसी जो माता होती है वह

अपने पुत्रों को, पितरों को स्वर्ग की प्राप्ति करा देती है। (देवपूजा, अमृतसर, 20 अप्रैल, 1977)

महाभारत का उत्तरदायित्व किसका

महाभारत के काल में महाराजा शान्तनु एक स्वार्थपरता में परिणत हो गए। पुत्र से कहते हें तुम ब्रह्मचारी रहो, मेरा संस्कार करा दो। कर्त्तव्यवाद त्याग कर स्वार्थ के लिए अनाधिकार चेष्टा हुई और उस अनाधिकार चेष्टा से परिणाम यह हुआ कि महाभारत का नरसंहार हुआ। वह कुरुक्षेत्र, युद्ध भूमि बना और कुटुम्ब में उसी शान्तनु की सन्तानों में नर संहार हो गया। (चवालिसवाँ पुष्प, कैथवाड़ी, मेरठ, 17 अगस्त 1983)

महाभारत के महासंग्राम का दोषी कौन है? यह विचार आता रहता है, इस पर गोष्ठियाँ होती रही है। मैं पूज्यपाद गुरुदेव से यह कह रहा था, हे प्रभु! महाभारत में इतना संग्राम हुआ कुरुक्षेत्र में इतना रक्त बहाया गया। इसका कारण क्या है? क्या है प्रभु इसके मूल में? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक ही उत्तर दिया कि इसके मूल में शान्तनु है। अरे, शान्तनु अपने पुत्र से कहता है कि तुम ब्रह्मचारी रहो और मेरा संस्कार हो। देखो, इसके मूल में केवल शान्तनु है। जब भीष्म प्रतिज्ञाबद्ध हो जाता है और पिता दुराचार में नष्ट हो जाता है तो राष्ट्र भी उसके साथ नष्ट हो जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यही वर्णन कराया था कि शान्तनु, माता गंगोत्री के समान अपने

विचारों में महानता न ला सके, जैसी वह शिक्षा दे गयी थी। जब मृत्यु को प्राप्त होने लगी गंगोत्री तो उन्होंने यह शिक्षा दी, कि हे राजन्! इस समाज को दूषित न करना, यदि समाज तेरे से दूषित हो गया तो, यहाँ अज्ञान छा करके यह हस्तिनापुर रक्तमयी क्रान्ति में परिवर्तित हो जायेगा। परन्तु राजा ने उसके विपरीत किया और विपरीत होने का परिणाम यह हुआ कि विज्ञानवेत्ता, महान् से महान् बुद्धिमान वेदों के मर्म को जानने वाला समाज नष्ट हो गया।

(अश्वमेघयाम चन्द्रसूक्त, लाक्षागृह, बरनावा, 18 मार्च, 1989)

५ कुन्ती

तपस्विनी

जब मैं पूर्व काल में जाता हूँ तो माता कौशल्या का और उससे पूर्व काल में जाता हूँ तो माता मदालसा का जीवन स्मरण आने लगता है। द्वापर के काल में मैं, जब प्रवेश करता हूँ तो मुझे नाना माताओं का जीवन स्मरण आने लगता है। पूर्व काल में नाना माताएँ ऐसी हुई हैं जिन्होंने अपने जीवन काल में तप किया है। बिना तप के परमाणु नहीं तपा करता है। वैज्ञानिकजन जब अपनी स्थलियों पर विद्यमान होते हैं तो वह परमाणु गति करता रहता है। अन्तरिक्ष में वह भ्रमण होता रहता है। उसी परमाणु में दूसरा परमाणु मिश्रित होता होता रहता है और वही परमाणु तप में प्रवेश होकर के माता के गर्भ स्थल में शिशु के रूप में प्रवेश करता रहता है। जब मैं द्वापर के काल में जाता हूँ तब माता कुन्ती का जीवन मुझे स्मरण आता है। माता कुन्ती जब बाल्य काल में आचार्य कुल में अध्ययन करती रहती थी। अध्ययन करते-करते उनका जीवन एक शिरोमणी बना। वह नाना प्रकार की तरंगों को अपने में धारण करती रहती थी। जिस भी काल में माता कुन्ती के गर्भ में शिशु का जहाँ प्रवेश हुआ उसने उसी देवता की तपस्या प्रारम्भ कर दी। जिस देवता के गुणों को वह अपनी सन्तान में लानी चाहती थी। (इक्यावनवाँ पुष्प, बरनावा, 10 मार्च, 1986)

शिक्षा दीक्षा

आगे कैसा काल आ रहा है और वह क्या उच्च काल था, कि जिस प्रकार की सन्तान को माताएँ बनाना चाहें बना सकती थी। यह उदाहरण उस वैदिक काल का है।

मुनिवरों! देखो, एक कुन्तेश्वर राजा थे और उनके केवल एक कन्या थी, जिसका नाम कुन्ती था। जिनकी माता ''ब्रह्मस्नहे'' थीं। उनकी वह कन्या महान सुशील माता की तदनरूप सुशील कन्या थी। उनकी इच्छा हुई कि इसको इस प्रकार की शिक्षा दी जाए जिससे यह ज्ञानवान और सुयोग्य हो, क्योंकि बिना ज्ञान के कोई सुयोग्य नहीं बन सकता। तब कुन्तेश्वर राजा ने खोज की और भृगु ऋषि के पास पहुँचे और पूछा कि क्या वृद्ध महान आत्माओं में से वह कोई शिक्षक पा सकते हैं? उस समय राष्ट्र में महान् वन था और उस भंयकर वन में करुण नाम के ब्रह्मचारी रहा करते थे। उस समय उनकी आयु 284 वर्ष की थी। ऐसा सुना जाता है कि इतनी अवस्था होने से वह पर्जन्य नाम के ब्रह्मचारी आदित्य नाम से कहे जाते थे। राजा ने सोचा मेरी कन्या यहाँ हर प्रकार की शिक्षा पा सकती है। ऋषि से निवेदन किया और अपनी इच्छा को बताया, कि मैं अपनी कन्या को आपके आश्रम में नियुक्त करना चाहता हूँ। ऋषि ने आज्ञा दी और वह कन्या उस आश्रम में रहने लगी। ऋषि ने बाल्यावस्था से उसे व्याकरण का पूर्ण ज्ञान दिया और कन्या बाद में सब विद्याओं से

सम्पन्न हो गई और फिर यौवन को प्राप्त हुई और बहुत तेजस्वी ब्रह्मचारिणी सब विद्याओं में पारंगत हो गयी। (प्रथम पुष्प, लोधी रोड, नई दिल्ली, 4 अप्रैल, 1962)

कर्ण का जन्म

कुछ समय पश्चात् आदित्य ऋषि के आश्रम में श्वेतमुनि आ पहुँचे। श्वेतमुनि नाम के ब्रह्मचारी उस समय युवा थे, महान् तेजस्वी थे। परन्तु यह माया मानव को दुर्भाग्य से कहाँ की कहाँ पहुँचा देती है और कहाँ तक इसको तुच्छ बना देती है। उस महान् ब्रह्मचारी ने उस महर्षि के आश्रम में जब उस युवा, सुशील कन्या को देखा तो उनके मन में तीव्रगति पैदा हुई और उनके मन की जो आकृति थी, विचित्र बन गई। उस अवस्था में जब उस कन्या ने उस तेजस्वी ब्रह्मचारी बालक को देखा तो उस काल में वह ऋतुमति थी, उन दोनों ने एक-दूसरे को देखा और पुनः जब कुछ काल पश्चात् ब्रह्मचारी ने उस कन्या को देखा तो अनुभव हुआ कि उनसे ऋषि भूमि में कितना बड़ा मानसिक पाप हुआ है। उस समय उसने ऐसा नियम बनाया कि मार्ग में जा रहा हूँ और बारह वर्ष कोई अन्न का भक्षण नहीं करूँगा तब मेरा यह पाप शान्त होगा। क्योंकि यह महान् पाप जो मेरे अन्तःकरण में विराजमान हो गया है, उस कारण आगे जन्मों में न जाने किन-किन योनियों में प्रविष्ट होना पड़ेगा। इसलिए मेरा कर्त्तव्य है, कि मुझे उपवास करना चाहिए और पर्वतों में भ्रमण करना चाहिए। उन्होंने

वास्तव में उस पाप की, जो अन्तःकरण द्वारा हो गया हे, उसकी क्षमा मांग ली और पर्वतों आदि का भ्रमण, उपवास रखकर, उसका प्रायश्चित करना आरम्भ कर दिया।

जब उस ब्रह्मचारिणी को ज्ञात हुआ कि तुमने महान् पाप किया है तो सोचने लगी क्या करना चाहिए? ज्ञान के कारण मन से पाप निकल गया था, सो अपने गुरु से सब बताया और उनसे पूछा कि भगवन्! अब मैं क्या करूँ। गुरु ने कहा कि मैं, क्या कर सकता हूँ? अब ऐसा करों कि जब बालक उत्पन्न हो तो उसको ऐसी शिक्षा दो कि वह योग्य बने, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। उस कन्या ने गुरु आदेशानुसार जब गर्भ में बालक था, तभी से सूर्य का जाप करना आरम्भ कर दिया और याचना आरम्भ की, कि वह बाल महान्, बलवान, योग्य विद्वान हो। उस कन्या के हृदय में यह भावना उत्पन्न हुई कि जैसे सूर्य इन तीनों लोकों को अपने ताप और प्रकाश से उज्ज्वल है वैसा ही यह बालक हो।

उस कन्या के कुछ समय पश्चात् बालक उत्पन्न हुआ और उसने गुरुजी को बताया कि अब जब पिता के गृह में जाऊँगी तो बड़ा पाप होगा। अब मुझे क्या करना चाहिए? गुरुजी ने कहा अच्छा पुत्री, तुम कुशा का आसन बनाओ उस पर पुत्र को प्रविष्ट करके गंगा में तिलाजलि दे दो। उस समय उस महान् देवी ने क्या किया? उस बालक को आसन लगा गंगा में प्रविष्ट कर तिलाजलि दे दी और

कहा हे गंगा! यह बालक तेरा है मेरा नहीं। वह बालक बहते-बहते उसी श्वेतमुनि के आश्रम के पास गया, जो गंगा के किनारे था। उनके शिष्य मण्डल ने कुशा से उस बालक को निकाल कर अपने गुरु श्वेतमुनि के पास ले गए। आगे उसी ब्रह्मचारी द्वारा उस बालक ने शिक्षा पाई।

कुन्ती ने सूर्य के तप से तथा प्रार्थना से, जिस बालक को तेजस्वी तथा बलवान् बनाने की, योजना की और उसे गुरु की आज्ञानुसार गंगा में त्याग दिया। तब गुरु ने आदेश दिया कि अब, तुम एक वर्ष पर्यन्त कोई अन्न भक्षण के रहित रहकर भगवान् से प्रार्थना करो, जिससे इस पाप से क्षमा पाओगी। उस देवी ने एक वर्ष पर्यन्त वनस्पति आदि का आहार किया और अन्न को त्याग कर गायत्री का जाप तथा वादन किया, जिससे उसका पाप क्षमा हो गया। (प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, 4 अप्रैल, 1962)

दानवीर कर्ण

जब माता कुन्ती कर्ण से दान के लिये पहुँची, तो उन्होंने अपने अस्त्रों-षस्त्रों को सर्वत्रप्रदान कर दिया और तब वह अपने में बड़ी प्रसन्न हुई। तो कर्ण ने अपने में जो पुरुषार्थ किया, उसका दान कर दिया। दान की बड़ी विचित्रमहिमा है। बड़े प्रसन्न होते हैं वे मानव जो अपने सु को, दान में परिणत कर देते है कर्ण के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है, श्रवण भी किया गया है कि वह प्रातःकाल से स्वर्ण

की मुद्रा देता रहता था। वह दानेषु बना हुआ था। तो विचार आता है कि जब मानव की दानमयी प्रवृत्ति बन जाती है तो 'दान' याग का सबसे प्रथम एक प्रतीक माना गया है। (बासठवाँ पुष्प, लाजपत नगर, 5 नवम्बर, 1988)

महाराजा पाण्डु और कुन्ती का विचार विमर्श

माता कुन्ती जब गर्भवती थी उस समय महाराजा पाण्डु बोले कि हे देवी! मैं अपने विद्यालय में जब अध्ययन करता था और विद्यालय में जब मैं विचारधारा लेता रहता था तो कहीं मैंने देखो, गृह वार्ताओं का अध्ययन किया है, गृह वृत्तियों का अध्ययन किया है कि हे देवी! मैं इस वाक् को स्वीकार करता हूँ परन्तु आज मैं तुमसे जानने की इच्छा प्रकट कर रहा हूँ कि मैंने यह अध्ययन किया है कि माता के गर्भस्थल में जब शिशु का प्रवेश हो जाए, तो माता को तपस्या करनी चाहिए। तो देवी! तुम तपस्वी बनो। उन्होंने कहा, हे भगवन्! हमने पुत्रायाग किया है, और हमारे यहाँ यागों का वर्णन करते हुए वैदिक-साहित्य में जितने भी शुभ कर्म हैं, जितने भी पिण्ड और ब्रह्मांड से मिलान करने वाले जितने भी शब्दों की रचना होती है, उन सर्वत्ररचनाओं में इस याग का वर्णन आता है। हमारे यहाँ ऋषिमुनियों ने परम्परागतों से ही एक वाक् बहुत प्रिय कहा है कि सर्वत्रविचारों को याग से उन्होंने कटिबद्ध किए हैं, याग से उनका समन्वय किया है। जैसे सूर्य की नाना प्रकार की जो किरणें हैं उन किरणों का

समन्वय हमारे यहाँ इस पृथ्वी से होता है, पृथ्वी प्रेरणा पाती है, सूर्य से और सूर्य अपने में प्रकाशवान है।

दिव्य गुणायुक्त सन्तानों का जन्म

इसी प्रकार 'अप्रतम् ब्रह्मा प्रणायः' महाराजा पाण्डु यह कहा करते थे। उनका नाम ही पंडकेत्व कहलाता था, पंडकेश्वर नामक उनका नामोकरण था। परन्तु मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे प्रकट कराया था, कि वह पाण्डु रुग्णा में रहते थे। परन्तु पाण्डु उनके यहाँ रुग्णा नहीं था। उनका पंडकेश्वर नामोकरण कहा जाता था जो अपने में देखो, तपस्वी हो, पंडकेश्वर मानो जो पंचमहाभूजों को अच्छी प्रकार अंग और उपांगों से जानने वाला हो उसका नामोकरण पंडकेश्वर कहा जाता है। पांडु के बाल्यकाल का नाम श्वेतकेतु था। अहा बाल्यकाल का नाम श्वेतकेतु और विद्यालय में उनका नाम पंडकेश्वर नियुक्त किया गया परन्तु देखो, उनको पाण्डु नामों से उद्गीत गाने लगे। जब इस प्रकार का उद्गीत गाया जाने लगा तो मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि वही पंडकेश्वर अपने गृह में प्रवेश हुए और गृह में प्रवेश हो करके कुन्ती से तपस्विनी बनने के लिये कहने लगे ब्रह्मवर्चोसि का पालन करने वाली माताएँ और ब्रह्मयोगी जो पुरुष होते हैं उनमें बड़ी विचित्रविशेषताएं होती हैं। वह पंडकेश्वर और कुन्ती दोनों अपने में बुद्धिमान थे, जब उनके (कुन्ती) गर्भ में शिशु का प्रवेश हुआ तो सबसे प्रथम धर्मराज युधिष्ठिर का आत्मा आया। धर्मम् ब्रह्मः

जो धर्म के मर्म को जानने वाले थे, उनका जब प्रवेश हुआ तो वह (कुन्ती) प्रत्येक इन्द्रिय को सजातीय बनाने लगी, प्रत्येक इन्द्रिय को सजातीय बनाते हुए धर्म में इन्द्रियों को पिरोने लगी और जो भी अन्नाद् पान करती वह भी धर्म से ओतप्रोत होता। धर्म किसे कहते हैं? धर्म कहते हैं, इन्द्रियों द्वारा उन गुणों को अपनाने को, जो उसमें अच्छे गुण होते हैं, जैसे वाणी का धर्म है सत्य उच्चारण करना है और चक्षु का धर्म सत्य को निहारना है और श्रोत्रों का धर्म सत्य ही श्रवण करना है और इसी प्रकार त्वचा का धर्म क्या है? ''सम्भूति ब्रह्म लोकां हिरण्यं वृथा'' वह अपने में एक महान् पवित्रता की वेदी कही जाती है जब माता इस प्रकार विचारती है कि चक्षुस्मे पाहि श्रोत्रास्मे पाहि प्राणं मे पाहि घ्राणं मे पाहि त्वचा मे पाहि वह सब में धर्म ही देखती है। हे माता जब तू अपने में अपनी इन इन्द्रियों में धर्म ही देखती रहती है तो तेरे गर्भ स्थल से धर्मराज पुत्रा, का जन्म होता है। (इक्यानवाँ पुष्प, बरनावा, 25 मार्च, 1986)

माता कुन्ती जब बाल्यकाल में अध्ययन करती रहती थी तो अध्ययन करते करते उनका जीवन एक शिरोमणी बना। वह नाना प्रकार की तरंगों को अपने में धारण करती रहती थी। जिस भी काल में माता के गर्भ में शिशु का जहाँ प्रवेश हुआ उसने उसी देवता की तपस्या आरम्भ कर दी। उस देवता के गुणों को वह अपनी सन्तानों में जन्म देना चाहती थी। वह कहीं पवन की उपासना कर रही है।

कहीं सूर्य की उपासना उन्होंने की, कहीं इन्द्र की उपासना की कहीं अश्विनी कुमारों की उपासना की। अश्विनी आभा में युक्त रहने वाले देवता हैं। ऐसा वेद की आख्यायिका भी कहती रहती हैं। जब मैं उस काल में प्रवेश करता हूँ तो मुझे स्मरण आता रहता है कि माता अपने में तपस्वी रही है और तपस्या करने के पश्चात् माता के गर्भ-स्थल में जब शिशु का प्रवेश हुआ तो वह इन्द्र की उपासना करने लगी थी। इन्द्र नाम के हमारे यहाँ नाना पर्यायवाची शब्द माने जाते हैं इन्द्र नाम वायु को कहा जाता है, इन्द्र नाम विद्युत को भी कहा जाता है, इन्द्र नाम के राजा भी हुए है, इन्द्र नाम परमात्मा को भी कहा जाता है। जब उनके गर्भ में अर्जुन का आत्मा आया तो माता अपने में इन्द्र की तपस्या करने लगी और वह यह कहा करती थी कि हे इन्द्र! तू आ, मेरे में प्रवेश कर। कुन्ती ने इन्द्र की तपस्या की और शिशु को भी इसी प्रकार का संस्कार देने लगी, तो अर्जुन का जन्म हुआ। कुन्ती ने युधिष्ठिर के जन्म से पूर्व धर्म की उपासना की। धर्म किसे कहा जाता है? धर्म की भूमिका बना प्रारम्भ से ही उसमें परिणात हो गयी कि जो कहा जाए, वही सत्य हो जाए। मुनिवरो! इस प्रकार की उन्होंने अपनी धारा बनायी। पांचों पाण्डु पुत्रों में से तीन उसके अपने पुत्रथे और दो माद्री के पुत्र थे। ऐसी सन्तानों को जन्म देना ब्रह्मवर्चोसि कहा जाता है। (इक्यावनवाँ पुष्प, बरनावा, 20 मार्च, 1986)

द्वापर काल में महाराजा पाण्डु से महारानी कुन्ती के तीन सन्तान उत्पन्न हुई। माता कुन्ती ने कैसे-कैसे महान् बालकों को जन्म दिया और कैसे उन्हें उच्च बनाया? उन्हें अपने ज्ञान से ऐसी शिक्षा दी कि वे महान हुए। (प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, 6 अप्रैल, 1962)

जब गर्भस्थल में शिशु का प्रवेश होता है तब माता यह चाहती है कि मुझे अमुक देवता का आह्वान करना हे, अमुक देवता की उपासना करके मैं उस देवता के गुणों वाले बालक को जन्म देना चाहती हूँ, तो माता उसी प्रकार की विद्या का अध्ययन और वेद मंत्रों का अध्ययन करके प्राणायाम करते हुए, अपान, प्राण में प्रवेश करके जब वह इस प्रकार का अध्ययन करती है और मन एकाग्र करके जिस मन्त्रका जप करती हे तो उसी गुणों की सन्तान को जन्म देने वाली बनती हैं। यह विद्या माता कुन्ती के अन्तहृदय में भी विद्यमान थी और महर्षि दुर्वासा ने उन्हें इस विषय की शिक्षा भी प्रदान की। दुर्वासा मुनि इस विद्या को जानते थे। माता के गर्भ में जैसे शिशु का प्रवेश हुआ तो उसी समय ऋषि उससे प्रश्न करते कि पुत्री! तुम्हें सन्तान में कौन से देवता के गुणों को धारण कराना है और वह उसी प्रकार का वेद मंत्रउसे प्रदान करते। उन वेद मन्त्रों का जाप करने से उसी के अनुरूप गुणों की सन्तान को जन्म देती। माता जब प्राण और अपान दोनों का सम्मिलान करके उसमें मन की पुट लगाती है और वेदमन्त्रों का जब पठन करती है तो वह विद्या, प्रायः उसके

समीप आ जाती है और देवताओं के गुण सन्तान मे आ जाते हें।

द्वापर के काल तक यह विद्या रही। माता कुन्ती भी इस विद्या को जानती थी ओर भी नाना माताएँ इस विद्या को अपने में धारण करती रही है। दुर्वासा मुनि जब सब पुत्रियों को अध्ययन कराते तो इस विद्या को प्रदान कराते रहे हैं, नक्षत्रऔर औषध विज्ञान में प्रवेश कराते रहे हैं। (मोक्ष प्राप्ति का मार्ग, नोएडा, 20 जुलाई, 1992)

मुझे महाभारत का काल स्मरण आता है। महाभारत के काल में माता कुन्ती अपने पुत्रों का निर्माण कर रही है। स्वयं माता गान्धारी अपने में विवेक की स्थापना कराती है। परिणाम यह हुआ कि संग्राम की स्थापना बन गयी। (इक्कीसवाँ पुष्प, बरनावा)

गर्भ में शिशु निर्माण

पूर्व काल में मेरी प्यारी माताएँ अपने गर्भस्थल के शिशु से वार्तायें योगाभ्यास के द्वारा करती रही हैं। उस समय माता वेद-मन्त्रका उद्गीत गाकर कहती हैं, कि कोडसि कतमोडसि कस्यासि को नामासि ब्रहे, जब माताएँ, वेद मन्त्रों का इस प्रकार गीत गाती है तो प्रायः अपने गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रकट करती है ओर कुशलता की वार्ता गर्भ शिशु में प्रवेश करा दती है। माता को जब अपने गर्भ की आत्मा से परिचय नहीं प्राप्त होता तो। स्वयं अपना परिचय उसे दे देती हैं। यज्ञं ब्रह्मकृतं देवत्वाहम, वेद का मन्त्रकहता है कि तू गर्भ की आत्मा की इस विद्या को जानने का प्रयास कर। माता कुन्ती इस

विद्या को जानती थी। गर्भावस्था में वे एकान्त स्थली में विद्यमान हो जाती थी और अपने गर्भ की आत्मा से चर्चा करती रहती, जिससे उस गर्भ स्थित आत्मा को कुशलता की आभा में रत रहना पड़ता।

वह विद्या क्या है? कुछ वेद मन्त्रहैं जिसका अध्ययन करना है। और गर्भ में जब शिशु विद्यमान हो जाए तो उन्हीं मन्त्रों का उद्गीत गाना है। उस समय माता विचारती थी कि मुझे किस देवता के स्वरूप में पुत्रया पुत्री को जन्म देना है। माता उसी मंत्रके देवत्व के द्वारा उसका अध्ययन करती, उस पर मनन करती और मौन हो करके प्राण में उस मन्त्रका प्रवेश करा देती थी। मन्त्र को गर्भ की आत्मा में प्रविष्ट करा करके, प्राण सखा को लेकर के अपने गर्भ की आत्मा से चर्चा करती रहती। आत्मा से चर्चा करने को योगावृत्ति कहते है। उसी में रत कह करके, ''कृतं ब्रह्माः वर्णास्सुतेः' माता यह जानती थी कि मुझे अमुक देवता के सम्बन्धी (गुणो वाली) संतान को जन्म देना है, तो उसी प्रकार का अध्ययन कर पुत्रको जन्म देना है ओर उसी के अनुरूप वनस्पति ला करके आहार करना है। जैसे यदि इन्द्र देवता को जन्म देना है तो माता इन्द्र सम्बन्धी वेदमन्त्रों का उद्घोष करती हैं, उनका मनन करती है तो माता उन्हीं गुणों वाली संतान को जन्म देती है। माता जिस देवता को चाहती है, उसी को जन्म देने लगती है परन्तु यह विद्या मनन में आनी चाहिए और उसी प्रकार का आहार होना चाहिए। इन्द्र एक औषधि होती है, उसका

आहार होता है इन्द्र औषधि बच्छ औषधि के द्वारा बनाई जाती है। बच्चेश्वर वृणीसी और तेंदू बरस्सुतम् इन तीनों औषधियों को जल में तपा कर उस औषधि का पान करना, मन्त्रों का जाप, उसके ऊपर अध्ययन करना और प्राणायाम करना है। माताएँ अपने गर्भ की आत्मा को सुसज्जिता में दृष्टिपात करती रही हैं और उसी देवता के गुणों को, वे देवत्व को, गर्भ की आत्मा को धारणा करा देती हैं और चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करके उसमें पुट लगा देती हैं। यह जो चित्त का मण्डल है यह जन्म जन्मान्तरों के संस्कारों का समूह कहलाता है। इसमें संस्कार विद्यमान होते हैं, उन संस्कारों को जागरूक करने के लिए मानव प्राणायाम करता है, साधना करता है, तरंगों का मिलान करता रहता है। माता इस संसार को देवता से पिरो सकती है, माताएँ देवता की आभा में रमण करा देती हैं। (चित्त की वृत्तियों का निरोध, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 18 मई 1991)

द्वापर के काल में महारानी कुन्ती बड़ी तपस्विनी कहलाती थी। वह भयंकर वनों में जाकर वनस्पतियों को, उनकी सुगन्ध अथवा उनकी तरंगों को ग्रहण करती रही है और वेद मन्त्रों का उद्गीत गा करके इसी प्रकार सूर्य सिद्धान्त के ऊपर जितने भी वेदमन्त्रहैं, उनका प्रायः अध्ययन करती रही है।

जो माताएँ सूर्य विज्ञान को जान लेती हैं और वेद में इस प्रकार के जो नाना मन्त्रआते हैं उन सूक्तों का अध्ययन करने वाली माताएँ

गर्भ विज्ञान को जान लेती हैं और नाभि के द्वारा प्रातः कालीन, उषा काल में वह अपने बाल्य को जो गर्भ में विद्यमान है, उसको वह उसकी (सूर्य) आभा को अपने में संचय करने लगती है कहीं रसना के द्वारा, कहीं श्वासों के द्वारा सिंचन करती है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा और प्राण का मिलान करते ही उसको अपने में संचय करने लगती है। (10 अक्टूबर, 1991)

माद्री स्वयंवर

एक काल था जब मदीन राजा के यहाँ मधु कन्या थी। उसका स्वयंवर निश्चित हुआ, राजाओं को निमन्त्रण भेजे गए कि मेरी कन्या का स्वयंवर है। उस महान् राजा के यहाँ कैसे वैज्ञानिक थे, उन्होंने एक मछली को बनाया और उसको ऐसे यन्त्रमें रखा, जिससे कुछ ऐसी महानता का प्रमाण मिलता है, कि एक क्षणभर के समय में, जितने समय में कोई मानव बाहर पलक मार सकता हो, उतने काल में चक्र में मछली इस प्रकार घूमती कि सात सौ आठ चक्र उसकी परिक्रमा होती थी। ऐसा कहा जाता है कि सब राजाओं को निमन्त्रण पत्रमिला और वह वहाँ एकत्रहुए। महाराजा पाण्डु को भी निमन्त्रण-पत्रआया, उसको लेकर महाराजा पाण्डु भी महाराज गंगशील के समक्ष उपस्थित हुए। निवेदन किया कि मैं महाराज के अनुकूल निमन्त्रण पर जा रहा हूँ, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं जाऊँ अन्यथा नहीं। महाराजा गंगशील ने कहा, वहाँ जाकर क्या करोगे? वह तो

कन्या स्वयंवर है और तुम पत्नीवान् हो। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम जाओ, वह कन्या तुमकों स्वयंवर में वरण कर संस्कार कराऐगी, सो मेरी इच्छा नहीं कि तुम वहाँ जाओ। महाराज पाण्डु ने कहा कि मैं प्रयत्न करूँगा कि वहाँ संस्कार न करवाऊँ, परन्तु जो निमन्त्रण आया है उस पर पहुँचना हमारा कर्त्तव्य है।

ऐसा सुना जाता है कि महाराजा पाण्डु वहाँ पहुँचे, जहाँ नाना राजा-महाराजा विराजमान थे। उनका बड़ा सत्कार हुआ। तब समय पर सब ने मछली छेदन का प्रयत्न किया परन्तु कोई सफल नहीं हुआ, तो महाराजा पाण्डु को कहा गया कि आप भेदन करें। तो महाराज पाण्डु ने कहा कि महाराज! मेरा तो संस्कार हो चुका है और यदि मैंने मछली का छेदन कर दिया तो इस कन्या से संस्कार करना पड़ेगा, तो मेरा यह कर्त्तव्य नहीं। यह वेद शास्त्रों के विरुद्ध है और मेरे पिता की भी यह आज्ञा नहीं है। मैं कोई कार्य वेद, शास्त्रों के विरुद्ध नहीं करूँगा। महाराज पाण्डु नम्र थे। ऐसा सुना जाता है कि जब राजाओं ने पाण्डु महाराजा से निवेदन किया तो महाराज पाण्डु ने अपने अस्त्र-षस्त्रों को लेकर मछली को छेदन कर दिया। छेदन होने पर मदीन राजा ने बड़ी नम्रता से कहा कि महाराज! मेरी कन्या को स्वीकार करें। महाराजा पाण्डु ने कहा, मेरा कर्त्तव्य मछली को छेदन करना था सो मैंने किया। इस पर सब राजाओं ने पाण्डु महाराज से कहा कि जब आपने अपने कर्त्तव्य का पालन कर

स्वयंवर की प्रतिज्ञा को पूर्ण किया है तो आपको कन्या को स्वीकार करना ही पड़ेगा। तब पाण्डु महाराज को स्वीकार करना ही पड़ा।

तब पाण्डु महाराज ने महान् सत्कारपूर्वक उस कन्या को ग्रहण किया। परन्तु वह मन में सोच रहे थे कि मैं अपनी पत्नी को, पिता को क्या कहूँगा? पत्नी जब पूछेगी कि आपने द्वितीय संस्कार कर लिया है तो क्या उत्तर दूंगा? इस प्रकार सोचते हुए वह कौडली ब्रह्मचारी गंगशील के समक्ष जा पहुँचे और पूछने पर स्वयंवर का विवरण कहा और कहा कि अब में क्या करूं? गंगशील महाराज ने कहा कि यह शास्त्रों के विरुद्ध हैं, पर अब तुम ऐसा करो कि अपनी पत्नी की अनुमति लो। यदि तुम्हारी धर्मपत्नी आज्ञा दे तो अवश्य अपने गृह में इस कन्या को प्रविष्ट करो, अन्यथा उसका गृह पृथक् होना चाहिए, यह राष्ट्र का नियम है। यदि तुम्हारी धर्मपत्नी चाहे तो गृह में प्रवेश करो और आनन्द लो। उस समय महाराज, महारानी कुन्ती के समक्ष पहुँचे जो बहुत बुद्धिमत्ता थी, उसने उनको स्थान दिया और पूछा कि भगवन्! आपका हृदय क्यों दुःखित है? तब उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारी अनुमति लेने के लिये उपस्थित हुआ हूँ और संस्कार का सब विवरण कहा, महारानी कुन्ती ने कहा कि आप इतना संकोच क्यों कर रहे हैं? निःसंकोच होइए, निर्द्वन्द्व होकर उस कन्या को ले आइए। यह तो हमारा अहोभाग्य है, हम दोनों एक माता की पुत्री के समान रहेगी। उस माता ने कहा कि मेरे तीन पुत्रहै और अब महर्षि

व्यास की आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूँगी। अपने गृह में माद्री को आनन्दपूर्वक प्रवेश कराया और इस कन्या को आदेश दिया कि वेद-शास्त्रों के अनुकूल पुत्रउत्पन्न करना जो सबको सुख पहुँचाने वाले हों। कुछ काल पश्चात् उसके (माद्री) गर्भस्थापन हुआ और नकुल की उत्पत्ति हुई।

पाण्डु को ऋषि का शाप

कुछ समय पश्चात् महाराज पाण्डु मन्त्रियों सहित भ्रमण करते हुए व्यास मुनि तथा महर्षि उदकेतु मुनि के समक्ष जा पहुँचे, उस समय वह स्वाध्याय कर रहे थे। जब विनाश काल आता है तो बुद्धि का भ्रंश हो जाता है विनाश काले विपरीत बुद्धि। ऐसा कहा जाता है कि उस समय उन्होंने अपने शस्त्रा-अस्त्रों का प्रयोग किया तो वह शस्त्र उस ऋषि के अन्दर प्रविष्ट हुआ और हृदय-स्थल में जा पहुँचा। उस समय ऋषियों ने अपने वाक्य में कहा, 'अरे पापी राजा तेरा विनाश हो। अपनी दृष्टि से देख, कि तुमने ऋषि को किस प्रकार नष्ट किया है। तुम्हारी अपनी पत्नी ही तुम्हारी मृत्यु का कारण बन जाएगी।' राजा सोचने लगे कि अब मैं पत्नी के द्वार जाऊँगा ही नहीं क्योंकि वहाँ मेरी मृत्यु हो जाएगी, मैंने सर्वसंसार का ऐश्वर्य, सुख प्राप्त कर लिया है। पत्नी के समक्ष न जाने का उन्होंने नियम बना लिया। महारानी कुन्ती जो बुद्धिमत्ती थी यह सब जान गयी। किन्तु महाराज पाण्डु काल की गति से माद्री के समक्ष जा पहुँचे, उसको गर्भ

स्थापन हुआ और महाराजा पाण्डु मृत्यु को प्राप्त हुए। कुछ काल के पश्चात् उनका पाँचवा पुत्ररानी माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुआ, जिसे सहदेव कहते हैं।

पूज्य महानन्द जीः परन्तु गुरुजी हमने तो ऐसा सुना है कि ऋषियों ने जो शाप दिया था वह तो पहले ही दिया था और उन्हें पांडु रोग था, दुर्वासा मुनि के बल से उनके पुत्र उत्पन्न हुआ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हाँ यह भी कोई विरोध की बात नहीं। पुनः (हास्य) यदि तुम मूर्ख समाज में होते तो बड़ा आनन्द आता। तुम्हारे वाक्य तो महा बच्चों के सदृश है (हास्य) कैसे-कैसे वाक्य उच्चारण कर रहे हो। वेद के अनुकूल भी नहीं चलते, अपने विषय को भी वेद के विपरीत ले जाते हो और यथार्थ तो यह है कि हमने जो सत्य था कह दिया है। अब तुम्हारी जो इच्छा हो उसको मान लो। हमें कोई आपत्ति नहीं है जैसा हमने सुना और देखा वह तुम्हारे सामने है, जैसा चाहो वैसा मानों इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं। परन्तु यह अवश्य है कि यदि तुम ऐसे अज्ञानता के वाक्य मानते रहोगे तो और अज्ञानता में डूब जाओगे। (प्रथम पुष्प, लोधी कालोनी, नई दिल्ली, 9 अप्रैल, 1962)

कुन्ती के विषय में आधुनिक मान्यताओं का खण्डन

महाभारत काल के पश्चात् मानव ने याग और वेद के ऊपर आक्रमण किया, मेरी पुत्रायों के ऊपर आक्रमण किया, यहाँ नाना

रूढ़िवादी आये जिन्होंने माता को नरक का द्वार उच्चारण किया और निकृष्ट विचार दिये। महाभारत की उस पोथी की दूषित कर दिया, और कैसे दूषित किया? देखो, माता कुन्ती का जीवन कितना विचित्रमाना जाता है, एक स्थान पर तो माता कुन्ती और माद्री इनको कन्या के तुल्य माना जाता है, और देखो जब उनके जीवन की गाथा गाते हैं वह कैसी अभद्र है कि वह कहते हैं कि देवताजन आते थे उनसे आलिंगन करते, वह उनकी सन्तान को जन्म देती रहती थी। परन्तु देखो, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि जो पवन देवता है, जो संसार में प्राण बन करके रहता है, जो इन्द्र विद्युत बन करके रहता है, जो धर्म मानव की प्रत्येक इन्द्रियों का सजातीय विचार है, जिसने इन्द्रियों को सजातीय बनाया हो वह मानव बनकर आये। परन्तु आज का मानव समाज कहता है कि देवताओं को बुलाने के लिए वह आह्वान मन्त्रउच्चारण करती, धर्म आता आलिंगन करता, उससे धर्मराज की उत्पत्ति हुई और देखो, इन्द्र से अर्जुन की उत्पत्ति और अश्वनी कुमारों से नकुल, सहदेव की उत्पत्ति, पवन से भीम की उत्पत्ति मानी जाती है। वहा रे! कैसा जगत् बन गया है? कैसे साहित्य को दूषित किया गया है और यह उदाहरण दिया कि पाण्डु को पाण्डुरोग, और रुग्ण के कारण वह सन्तान उत्पन्न करने के सुयोग्य नहीं था। परन्तु यह नहीं माना जा सकता। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव और मैंने एक समय बहुत पुरातनकाल

हुआ जब उस काल में भ्रमण किया, वह पाण्डुरोगी नहीं थे, वह मृत्यु को प्राप्त हो गए, परन्तु इससे पूर्व पाँच सन्तानों को जन्म दे गए थे। उन्होंने पाँच सन्तानों को जन्म दिया उसके पश्चात् मृत्यु को प्राप्त हुए, ऐसा विचारा आता रहता है हमारे यहाँ। इन मान्यताओं का मैं खण्डन किया करता हूँ, खण्डन ही नहीं उनका मण्डन भी किया जाता है। माता कुन्ती के गर्भ में जब अर्जुन आ गए, तो वह इन्द्र की तपस्या करती रहती, इन्द्र देवता की, विद्युत की तपस्या करती, इन्द्र वायु है। उनके गर्भ से इन्द्र जैसे पराक्रम वालें पुत्रका जन्म हुआ। जब भीम गर्भ में थे तो वह पवन की तपस्या कर रही थी, जैसे पवन में कौशल है, वह किसी को भी रुष्ट नहीं कर पाता, यह प्राण का मानो एक सखा है, निस्वार्थ है। इस प्रकार वायु की उपासना करती, पवन की उपासना करती, उसके पवन पुत्रका जन्म हुआ। यह तपस्या का परिणाम है। पाण्डु जब देवी के समीप जाते, वह भी तपस्वी थे। जहाँ उसके गर्भ में बिन्दु प्रवेश हुआ तो देवता रक्षा करने पहुँच जाते, माता का विचार उसी प्रकार का बन जाता, 'सम्भव ब्रह्मः धर्मा ब्रह्माः' जब वह धर्मराज देवता माता के गर्भस्थल में बिन्दुरूप में शिशु बनकर आए, तो माता धर्म का निर्माण करने लगी, धर्म की चर्चा करने लगी। माता के नेत्रों में धर्म सामने आने लगा, तो उन्हीं तरंगों से बालक का जन्म हुआ। जिसे धर्मराज युधिष्ठिर कहा गया। तो यह मनन का एक विषय है। जब माद्री गर्भवती थी तो उस काल में

अश्वनीकुमार की तपस्या माता कुन्ती माद्री से करा रही थी, अश्वनीकुमार दोनों जो विशाल वैद्यराज माने जाते हैं उनके गुणों को आयुर्वेद में से लेती रहती, अध्ययन कराती रहती और माता माद्री को शिक्षा दे करके दोनों राजकुमारों (नकुल सहदेव) का जन्म हुआ। यह तो इसका खण्डन है, और यह कि मन्त्रसे देवता आते, आलिंगन करके चल जाते, यह मेरे विचार में नहीं आ पा रहा है। जबकि विद्या का जो एक अंकुर है वह यह कह रहा है कि जिस विद्या की तुम उपासना करोगे वे विद्याएँ तुम्हारे समीप आ जाएँगी। परन्तु क्योंकि माताओं को आयुर्वेद का अध्ययन करना चाहिए। महाभारतकाल के पश्चात् मेरी प्यारी माता, पुत्रियों का ह्रास किया गया और इनको निकृष्टता से दृष्टिपात किया। (इक्यावनवाँ पुष्प, बरनावा, 24 मार्च, 1986)

६ राजपुत्र

शिक्षा-दीक्षा

जिस समय महाभारत के काल में राजकुमारों को अध्ययन कराना था, उस समय उन ब्रह्मचारियों को पितामह भीष्म अपने गुरु परशुराम के द्वार ले गये। उन्होंने कहा पूज्यपाद इन्हें शिक्षा दीजिए। उन्होंने जब आयुर्वैदिक आधार पर उनके मस्तिष्कों का अध्ययन किया तो उसमें से पाँचों पाण्डवों, विक्रम और ब्रह्मे सात राजकुमार ऐसे प्राप्त हुए जो इस धनुर्विद्या में पारायण हो करके योग्य बन सकते थे। अहा! उस समय पितामह भीष्म से कहा हे देवव्रत! हे ब्रह्मचारी!! तुम्हारे इतने ब्रह्मचारी साथ हैं, इनमें से सात को मैं विद्या प्रदान कर सकता हूँ। उन्होंने कहा भगवन्! यह दुर्योधन इत्यादि जो हैं। यह योग्य नहीं हैं। यह शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, यह मल्लयुद्ध कर सकते हैं, परन्तु देखो, उसका उपयोग नहीं कर सकते है। जो विद्या को प्राप्त करके उसका दुरुपयोग करता है, वह आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों को रसातल में ले जाता है। इसलिए मैं इन ब्रह्मचारियों को यह शिक्षा प्रदान नहीं कर सकता। भीष्म ने यह वाक् स्वीकार नहीं किया। तो वह द्रोणाचार्य के सम्मुख गये द्रोणाचार्य ने राजकुमारों के मस्तिष्क का अध्ययन तो कर लिया, अन्तरात्मा से यह स्वीकार भी कर लिया कि सभी शिक्षा के योग्य नहीं हैं, परन्तु उनकी द्रुपद से संग्राम की प्रबल इच्छा बनी हुई थी। उन्होंने इससे द्वेष में शिक्षा दी

और उसका परिणाम यह हुआ कि महाभारत का क्षेत्रएक द्वेषी क्षेत्रबन गया। यदि द्रोणाचार्य द्वेषी नहीं होते, प्रतिज्ञाबद्ध नहीं होते, तो उन्हें शिक्षा नहीं देते। द्रोण दुरपद से प्रतिज्ञा करके आये थे कि तेरी मुक्ति मेरे द्वार पर होगी। इसी द्वेष की भावना ने महाभारत काल में अयोग्य को शिक्षा दी और योग्य, अयोग्य का विचार न किया। जिसका परिणाम महाभारत संग्राम का क्षेत्रबन गया, द्वेष का क्षेत्रबन गया जहाँ मेरी प्यारी माताओं के श्रृंगार का हनन होने लगा। (इक्यावनवाँ पुष्प, बरनावा, 13 मार्च, 1986)

द्वापर काल में द्रोणाचार्य की इस प्रकार की प्रवृत्ति न होती तो यह जो हमारा राष्ट्र भारत भूमि है, इसमें भगवान् कृष्ण, भगवान् राम की पताका तरिंगत होती। यह भूमि वीरों से, क्षत्रियों से विहीन न होती। कारण केवल मन का संकल्प है, मन की प्रवृत्तियाँ है। मन के जो द्वेषी विचार हैं, वह राष्ट्र के राष्ट्र को द्वेषी बना देते हैं। (दसवाँ पुष्प, आगरा, 9 नवम्बर, 1968)

जब आचार्य कुल में युधिष्ठिर आदि शिक्षा ग्रहण करते थे तो आचार्य ने यह जानना चाहा कि इनमें कौन सुन्दर है। एक समय युधिष्ठिर से कहा हे युधिष्ठिर! जाओं, तुम संसार में दुर्जन की जानकारी करो कि संसार में तुम्हारे से अधिक दुर्जन कौन है? महाराज युधिष्ठिर ने संसार में भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने अपने राष्ट्र में, दूसरे राष्ट्रों में दृष्टिपात् किया। दृष्टिपात् करके अपने

पूज्य गुरुदेव के समीप आ गए। गुरुदेव से कहा हे भगवन्! संसार में मेरे से दुर्जन, तो मुझे कोई प्राप्त नहीं होता। मुनिवरो, इसी प्रकार महाराज दुर्योधन से कहा हे दुर्योधन! जाओ पुत्र , तुम संसार में अपने से कोई ऊँचा है उसको जानकार के आओ। तुम से संसार में कौन ऊँचा है? कौन बुद्धिमान है जानकर आओ? दुर्योधन ने भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। जब सर्वत्र राष्ट्रों में भ्रमण करके वे गुरु के समीप आए। गुरु ने कहा बोला पुत्र वत् उन्होंने कहा प्रभु! मेरे से बुद्धिमान तो मुझे कोई प्रतीत नहीं हुआ। बेटा! अभिप्राय क्या? संसार में जो अपने को बुद्धिमान स्वीकार करता है वह बुद्धिमान वास्तव में नहीं होता। यह अभिमान की मात्रा रहती है, तब तक वहाँ दुर्जन और सज्जन की जानकारी कैसे हो सकती है? परन्तु जब वह यह दृष्टिपात् करता है कि मैं इतना निर्लज्ज हूँ संसार में, मैं अपने को ही नहीं जान सका हूँ कि मैं क्या हूँ? संसार में वह मानव गम्भीर होता है जिस मानव को अपने से दुर्जन संसार में कोई दृष्टिपात नही आ रहा। (तेईसवाँ पुष्प, आर्य समाज, नांगश, 4 अक्टूबर, 1970)

जिस समय महाभारत के काल में महाराजा द्रोण ने यह कहा था कि ‘‘हे अर्जुन! तुम्हें यह वृक्ष दृष्टिपात् आ रहा है?’’ तो उन्होंने कहा ‘‘कदापि नहीं भगवन्!’’ द्रोण ने कहा ‘‘मैं दृष्टिपात् आ रहा हूँ?’’ अर्जुन ने कहा नहीं, भगवन्! उन्होंने कहा तो क्या दृष्टिपात आ रहा है? अर्जुन ने कहा ‘‘मुझे तो जो पक्षी का नेत्र हैं, वह दृष्टिपात्

आ रहा है।’ जब मानव अपना एक लक्ष्य बना लेता है और लक्ष्य बना करके उसे वही दृष्टिपात् आता है तो वह रजोगुण, तमोगुण, को नहीं लेता। वह रजोगुण और तमोगुण में भी सत्यता को अपने में धारण कर लेता है, सत्यता को एकत्रित करता रहता है तो परिणाम क्या होता है कि उसे सत्य ही सत्य दृष्टिपात् आता है। असत्य दृष्टिपात् न करके वह प्राण को ही संसार में दृष्टिपात् करता है, वह मन को ही दृष्टिपात करता है। ज्ञान और प्रकाश के क्षेत्र में जा करके उसे एक-एक कण में सृष्टि का चित्रण दृष्टिपात् आने लगता है और जब कण-कण में प्रभु की सृष्टि को दृष्टिपात् करता है, तो वह मानव कैसा भव्य बन जाता है? वह मानव जब साम गान गाता है तो मृगराज, सिंहराज आ करके अपनी हिंसा की प्रवृत्ति को त्याग करके ‘‘अंहिसा परमों धर्म’’ में परिणत हो जाते है। मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का नाम ही साधना कहलाती है और साधना में जो रूढ़ि बनती है, उसमें जो अभिमान आता है, विडम्बना आती है वह अन्न के दोष से आती है। इसलिए अन्न पवित्र होना चाहिए और जब अन्न का दोष आ जाता है तो साधना मे भी अश्लीलता आ जाती है। (सताईसवाँ पुष्प, बरनावा, 2 मार्च, 1976)

द्रोणाचार्य आश्रम

यह जो वर्तमान में लाक्षागृह है। इससे आधुनिक काल के लगभग चार कोसों की दूरी में नदी अपना प्रवाह लिए हुए रहती थी।

उस काल में इसी नदी के तट पर नाना याग होते थे। इसी स्थली पर, नदी के तट पर महाराजा द्रोणाचार्य की एक स्थली थी जिस में अस्त्रों-षस्त्रों की विद्या की शिक्षा होती थी। जहाँ सैनिक नाना प्रकार की शिक्षाओं का अध्ययन करते थे। धनुर्विद्या का पठन-पाठन होता था। वहाँ यज्ञशाला होती थी। यज्ञशाला में श्वेतकेतु नाम के एक ब्राह्मण थे, जो ब्रह्मचारी थे। वे ब्रह्मचारियों से यज्ञ कराते रहते थे। प्रातःकाल में उनका कर्म रहता था, सूर्य उदय होते ही यज्ञशाला में विराजमान हो जाना और वहाँ यज्ञ होता था। उसमें ऐसी सुगन्धि उत्पन्न होती थी जिससे वहाँ का वातावरण इस प्रकार का सुगन्धित रहता था कि वहाँ जो भी प्राणी आता वह सुगन्धित हो जाता था।

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने आज्ञा दी, द्रोणाचार्य की स्थली को जाओ, उस शिक्षालय भवन को दृष्टिपात् करके आओ। उस समय मैं आज्ञा पाते ही उस यज्ञशाला के लिए चल दिया। वहाँ जब मैं पहुँचा तो वहाँ एक याग हो रहा था, यजुर्वेद पारायण। ''यजुर्वेदम् ब्रह्मे।'' दसवें अध्याय का पठन-पाठन हो रहा था। उसमें राष्ट्रवाद का प्रायः वर्णन है। धनुर्विद्या के भी कुछ विशेष विचार है। इस प्रकार की विचारधारा जब मैंने वहाँ श्रवण की, तो उस समय मुझे भी समय दिया गया कि आप भी ब्रह्मचारियों को कुछ अपना उपदेश दें। मैंने एक ही वाक्य ब्रह्मचारियों को कहा, ''ब्रह्मचर्य प्रह्ने'' हे ब्रह्मचारियों! तुम्हें ब्रह्मचारी रहना है। तुम्हें ब्रह्मचारी बन करके

धनुर्विद्या को अपनाना है। इसको निगलना है, इनको चरना है, चरने का अभिप्रायः यह कि धनुर्विद्या के साथ जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है तो वह ब्रह्मचारी संसार में कितना सौभाग्यशाली है।

मुनिवरो! देखो, मैं महाराज द्रोणाचार्य के शिक्षालय की विवेचना कर रहा था। ब्रह्मचारी यज्ञ करते थे। यज्ञ करके वह अपने-अपने स्थलों पर, आसनों पर विराजमान हो करके अपनी शिक्षा का अध्ययन करते थे। कैसी शिक्षा? देखो, वे प्रातःकाल में नाना प्रकार के योग के आसनों का अभ्यास करते थे। निरन्तर धनुर्विधा का अध्ययन करना, उनको क्रियात्मकता में लाने का प्रयास करना, उसके पश्चात् वे आचार्य के चरणों में उस विद्या को केवल शब्दों में उच्चारण करते थे, शब्दों में प्रतिभा लाते थे, और उसके पश्चात् उसे क्रिया में लाने का प्रयास करते थे। (सोलहवाँ पुष्प, बरनावा, 24 फरवरी, 1968)

लाक्षागृह का षडयन्त्र

यह वह स्थली है जहाँ महर्षि व्यास का जीवन व्यतीत हुआ और व्यास जी ने यहाँ विद्यालय की स्थापना की थी। यहाँ पाण्डव और कौरव बाल्यकाल में शिक्षा का पठन-पाठन करते रहे हैं। उसके पश्चात्, यह वही स्थली है, जहाँ महाराजा दुर्योधन ने पाण्डवों को नष्ट करने के लिये एक अशुभ गृह का निर्माण किया था। परन्तु वह पाण्डव यहाँ से चान्द्रांग वन को चले गये और वह गृह अग्नि के

मुखार-बिन्दु को परिणात हो गया। (महाराजा रघु का याग, लाजपत नगर, दिल्ली, 11 अप्रैल, 1991)

हस्तिनापुर में एक विचार हुआ था कि विचारों में विभाजन होगा तो राष्ट्रीयता का विभाजन बना रहेगा, एक समय वह भी आयेगा जब इसका बाह्य जगत् भी विभक्त हो सकता है, यह वाक्य दुर्योधन इत्यादियों ने एक सभा में कहाँ विचारा गया कि एक गृह का निर्माण किया जाए और उस गृह में इन्हें (पांडवों) अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणात कर दिया जाए। ऐसा विचार बना। आज मुझे यह वहीं स्थली दृष्टिपात् आ रही है। आज इसी दृष्टि से मैं अपने वाक्यों को ले करके चला हूँ कि यहाँ एक भव्य भवन का निर्माण हुआ। (चित्त को वृत्तियों का निरोध, बरनावा, 8 मार्च, 1986)

यह वह स्थली है जहाँ पाण्डवों को माता कुन्ती सहित, एक पर्व के लिए हस्तिनापुर से महाराजा दुर्योधन द्वारा लाया गया। 'एक षडयंत्राम् अमृतं ब्रह्मे' एक पामर उन्होंने स्थली रचाई और उन्हें (पांडवों) नष्ट करने की भावना बनी कि जिससे वह नष्ट हो जायें और वह राष्ट्रीय प्रवृत्ति हमारी बनी रहे। यह भावना जब उनके (दुर्योधन) हृदय में रही और पाण्डव पुत्र उसको स्वीकार करके उसमें वास करते रहे। वास करते हुए महाराजा भीम ने अपने मन्त्रों और अग्निदेव अपने गुरु से अग्नि का अवधान किया और उसमें जो सुरंग बनी थी उसमें वह वैदभूवी हो गए। वह जो अन्तर्वृत्तियों में रत रहने

वाला विचार आता रहता है मैं अपने पूज्यवाद गुरुदेव को क्या वर्णन करा सकता हूँ क्योंकि वे तो स्वतः जानते हैं कि यह वह स्थली है जहाँ पाण्डव अपनी आभा को लेकर के आये और समय पर यहाँ देखों वह (लाखा का महल) तो नष्ट हो गया अग्नि के मुखारबिन्दु में। उसके पूर्वकाल में यहाँ द्रोणाचार्य का विद्यालय था जिसमें लगभग पाँच हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे। वह अध्ययनशाला भी अग्नि के मुखारबिन्दु में चली गई और कुछ नदी के तटों ने उसे ग्रास कर लिया। इसी प्रकार यहाँ बड़े क्रिया-कलाप होते रहे और किसी समय हमारे द्वारा भी यह यागों की स्थली बनी। देखो याज्ञिक पुरुष यहाँ याग करते थे।

महाराजा द्रोणाचार्य मानों पाण्डित्य की आभा को लेकर के, ब्रह्मचारियों की पंक्ति लगा करके वह याग करते थे। जहाँ वे ब्रह्मयाग करते थे, धनुर्याग करते थे वहाँ देवयाग में परिणत हो करके देवताओं की पूजा का अवधान भी करते थे। अग्निहोत्र करना और देव-पूजा में रत रहना यह सदैव उनका क्रिया कलाप रहा है। जहाँ यागों से यंत्रों का निर्माण किया जाता है वे निर्माणशालायें अब नहीं हैं। मध्यकाल में यहाँ महाराजा परीक्षत का न्यायालय भी रहा है। किसी काल में यहाँ न्याय भी होता रहा है, वे न्यायाधीश बन करके न्याय करते रहे हैं। (बासठवाँ पुष्प, लाक्षागृह, बरनावा, 24 फरवरी, 1991)

यही वह पावन भूमि है जहाँ दुर्योधन ने राष्ट्रीय दाह से घृणात्मक

दाह में एक लाक्षागृह का निर्माण किया था। वह वैज्ञानिक तथ्यों से निर्माणित किया हुआ गृह था। एक भव्य वैज्ञानिक यन्त्र से, वैज्ञानिकी वर्णित की गयी, जिसमें विशेष अग्नि होने पर अग्नि प्रचण्ड हो जाए और जिससे वह भवन भस्म हो जाए। ऐसा दुर्योधन ने राष्ट्र की दाह में किया और हस्तिनापुर में विचारों की अग्नि प्रदीप्त हुई। विचारों की अग्नि प्रदीप्त हो करके वह अग्नि का काण्ड बना। उसके बाद वह खंडहरात के रूप में दृष्टिपात् आता रहा।

यहाँ जब हस्तिनापुर की दाह से अग्निकाण्ड बने, तब इसमें एक सुरंग जो जहान्ति कहलाती है, जिसमें प्रवेश होकर भीम, अपनी माता और भ्राताओं को लेकर गमन कर गये थे। वे वहाँ से चन्द्रायण वन में चले गये। वहाँ पहुचने के पश्चात् स्नानं ब्रहे वाचं कृते ब्रह्मे, उन्होंने एक वाण को पृथ्वी में जब उरुत (स्थापित) किया तो उसमें से जल की धारा आयी, तब माता कुन्ती और पाँचों भ्राताओं ने स्नान करके वहाँ से गमन किया। वह कितना प्रिय गमन था जिससे उनके प्राणों की रक्षा हो गई। प्राणों की रक्षा होना बहुत अनिवार्य है।

(आत्मा प्राण और योग, लाक्षागृह, 28 फरवरी, 1988)

यह वह काल था जब बाईस लाख की जनगणना यहाँ की कहलाती थी उस काल में यहाँ की प्रजा में एक महत्ता रही। यह वही भूमि है जहाँ लाक्षागृह का निर्माण हुआ, जहाँ दुर्योधन की दुर्बुद्धि ने पांडवों को नष्ट करने के लिये गृह का निर्माण किया था। नाना

प्रकार की धातुओं का वह गृह था जिसमें अग्नि प्रदीप्त हो गई परन्तु पाण्डव सुरंग के मार्ग से हो करके चले गए। उनके प्राणों की रक्षा हो गई। (उनतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 7 मार्च, 1982)

यह वह स्थली है जहाँ महाराजा दुर्योधन, आचार्य द्रोण, महर्षि विभाण्डक और नाना ऋषियों का आगमन होता रहा है। महर्षि जैमिनी जी का भी यहाँ आगमन होता रहा है और यहाँ विज्ञान के बहुत से मन्त्रों का निर्माण भी होता रहा है। मध्यकाल में यहाँ राजसी विचार धारा थी, जहाँ गुरु और आचार्य दोनों का संवाद होता हो, जहाँ ऋषि-मुनियों की गोष्ठियाँ होती हों, ऐसी इस स्थली पर यहाँ ऋषि-मुनियों के विचार और वैज्ञानिकों के वैज्ञानिक विचार उद्बुद्ध होते रहे हैं।

महाराजा द्रोण यहाँ ब्रह्मचारियों को, राजकुमारों को शिक्षा देते रहते थे। उन्हीं की शिक्षा के माध्यम से नाना प्रकार की यहाँ विज्ञानशालाएँ थी। क्रियात्मकता में यहाँ अस्त्रों-षस्त्रों का निर्माण भी होता रहा है। इस स्थली पर बहुत प्रयास हुआ कि पाण्डव पुत्रों और धृतराष्ट्र के पुत्रों दोनों का समन्वय हो जाए परन्तु ऐसे स्वार्थी तत्वों का निकास हुआ कि उनका समन्वय नहीं हो सका। समन्वय न होने से यहाँ नाना प्रकार के अग्नि काण्ड हुए। अन्त में यह हुआ कि महाभारत प्रारम्भ हुआ और महाभारत में यहाँ पृथ्वी के वैज्ञानिक समाप्त हो गए और बुद्धिमानों का ह्रास हो गया। इसका परिणाम यह

हुआ कि संसार के अन्धकार में जाने से मानव संस्कार विहीन हो गया। जब किसी राष्ट्र में या किसी भी समाज में या किसी भी काल में जब वैज्ञानिक और बुद्धिमान, बुद्धिजीवी और वैदिक पण्डित नहीं होते, और बुद्धिमानों का हृस होता है तो वह समाज रसातल में चला जाता है। (चित्त की वृत्तियों का निरोध, लाक्षागृह, बरनावा, 5 मार्च, 1986)

पांचों पाण्डवों के विवाह संस्कार

धर्मराज युधिष्ठिर का विवाह महाराजा श्वेतकेतु की कन्या से हुआ था। महाराजा अर्जुन के कुछ और भी संस्कार हुए थे परन्तु वे केवल सन्तान तक ही सीमित रहे थे। जैसे वह पातालपुरी में अस्त्रो-षस्त्रों की विद्या के ग्रहण करने के लिए जब पहुँचे तो वहाँ उनका सम्बन्ध उलूपी से हुआ। उन्होंने केवल एक सन्तान को जन्म दिया, जिसकों बभ्रुवाहन कहा जाता है। महाराज भीम का हिडम्बा के साथ संस्कार हुआ। देवनाग ऋषि की कन्या के साथ नकुल का विवाह हुआ। अवधूत नाम के राजा की कन्या रोहिणी का संस्कार सहदेव के साथ हुआ। इसी प्रकार पाँचों की अपनी पत्नियाँ थीं। पाँचों अपने-अपने कक्ष में रहते थे। परन्तु जब पाण्डवों को वन प्राप्त हुआ तब द्रौपदी ही उनके साथ में थी। क्योंकि वह जानती थी कि यह मेरी सहायता करते है तो मेरा कर्त्तव्य है कि मैं इनके द्वारा तपस्वी बनू। मुझे तपस्या करनी है। वास्तव में इनका आपात्काल मेरा भी आपात्काल

होना चाहिए। (चौबीसवाँ पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 27 अक्टूबर, 1963)

कुछ आधुनिक काल के प्राणी यह कहते हें कि महाराजा अर्जुन कामासुरों में रत रहते थे। परन्तु इन भोले प्राणियों को वास्तविकता प्रतीत नहीं है। उनका कथन है कि कही उलूपी के द्वारा उन्होंने संस्कार किया, कहीं द्रौपदी के द्वारा किया। उलूपी का संस्कार इस प्रकार नहीं भिन्न प्रकार का था। उलूपी से संस्कार केवल इसलिए किया क्योंकि उस काल की परम्पराएँ इस प्रकार 'दानां प्रभु सम्भवः देवभ्रा' उस काल में दान की प्रवृत्तियाँ गति करती रहती थी। देवियों का इस प्रकार का आचार बना हुआ था, एक क्रियाकलाप बना हुआ था। कि वह वीर्यत्व को लेकर के वीर्यत्व को जन्म देती थी। ब्रह्मचर्य व्रत में रहकर उलूपी ने एक सन्तान को जन्म दिया था, उसके पश्चात् वह जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रतों का पालन करती रही। इस प्रकार, आधुनिक काल से वह काल कई-कई मार्गो में ऊँचा था। कई मार्गो मे वह काल सामान्य कहलाता था। परन्तु देखो, इस प्रकार महारानी द्रौपदी के जीवन में भी इसी प्रकार की आचार संहिता बनी रही और उनका जीवन एक महान् और मार्मिक बना रहा। (अड़तालीसवाँ पुष्प, बरनावा, 27 फरवरी, 1985)

७ महारानी द्रौपदी

मेरे पुत्रों! देखो, तुम्हें प्रतीत होगा महाभारत के काल में महारानी द्रौपदी में एक विशेषता कहलाती थी, उनके जीवन में सदैव त्याग और तपस्या की आभा रहती थी, वे विदुषी थी, उनमें साहस रहता था।

शिक्षा

मुझे स्मरण है जब वे बाल्यकाल में अध्ययन करती थी, तो शुन्धेतु उनके पुरोहित थे। पुरोहित शुन्धेतु के द्वारा उन्होंने अध्ययन किया था। अध्ययन कराते समय महाराजा द्रुपद के वहाँ पुरोहित बने, और गुरु-शिष्या का सम्वाद चलता रहता था। उनसे उन्होंने यही अध्ययन किया कि मैं अपने जीवन में अडिग रहूँगी। उनका जीवन कितना अडिग रहता था। (आत्मलोक अमृतसर, 24 अप्रैल, 1979)

स्वयंवर

महाभारत के पूर्व जब लाक्षागृह का निर्माण हुआ था तो विदुर की गुप्त सहायता से पाँचों विधाता जीवित वहाँ से बचकर चले गए। वे भ्रमण करते हुए पाचाल राष्ट्र में जा पहुँचे। वहाँ महाराजा द्रुपद के यहाँ स्वयंवर होने वाला था। वह कैसा स्वयंवर था? उन्होंने अपने मन में यह संकल्प किया था कि मेरी पुत्री का अर्जुन के द्वारा संस्कार होना चाहिए। उनके अपने गृह में यह चर्चाएँ होती रहती। स्वयंवर की

भावना राजा के हृदय में भगवान् कृष्ण की प्रेरणा से प्रतिष्ठित हुई। भगवान् कृष्ण ने यह कहा कि ‘‘हे राजन्! तुम स्वयंवर करो, तभी तुम्हारी मनोनीत कामनापूर्ण हो सकती है। ऐसा नहीं हो सकता कि पाण्डव पुत्रों की मृत्यु हो जाए, मेरा हृदय यह कहता है कि जब तुम स्वयंवर करोंगे तो हो सकता है कि तुम्हारी इस विशाल सभा में कहीं से पाण्डव-पुत्र भी भ्रमण करते हुए आ जाए।’’ यह निर्णय दे करके भगवान् कृष्ण ने अपने स्थान को प्रस्थान किया।

ऐसा कहा जाता है कि महाराजा द्रुपद के यहाँ के वैज्ञानिकों ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। वह एक चक्र था, उस चक्र में एक मछली थी। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो इसके नेत्रों को छेदन कर सकता है वह मेरी कन्या से संस्कार कर सकता है। ऐसा कहा जाता है कि एक क्षण समय में यह चक्र सात हजार पाँच सौ बार चक्र पूर्ण करता था। उसमें एक छिद्र था जिसमें से होकर मछली के नेत्र को छेदन करना था।

उस समारोह में जहाँ नाना राजा आए हुए थे वहाँ ये पाँचों पाण्डव भी कुन्ती के सहित आ पधारे। उन्होंने माता कुन्ती से यह कहा कि हे माता, हम तो इस स्वयंवर को दृष्टिपात् करेंगे। माता ने कहा नहीं, पुत्र! ऐसा न करो, क्योंकि यह एक महान् कार्य है। जो राजा-महाराजाओं का कर्त्तव्य है। तुम्हारे द्वारा न अस्त्र है, न शस्त्र है। तुम यहाँ क्या करोगे? अर्जुन ने कहा नहीं माता! आपके लिए हम

एक स्थान नियुक्त कर देते है। उन्होंने माता को एक कुम्भकार के यहाँ ठहरा दिया। कहा जाता है कि जब वह इस सभा में गए तो माता कुन्ती ने कहा था, हे पुत्रों! संग्राम हो या विवाद हो तुम उसमें भाग नहीं लेना। उस समय अर्जुन बोल ''माता! यह कार्य हमारा है। तुम कैसे वाक्य उच्चारण कर रही हो? मेरा तो यह कर्त्तव्य है, मुझे तो यह अधिकार है, कि मुझे उस मछली का छेदन करना है। उस समय माता ने कहा, नहीं पुत्र! वे जो तुम्हारे विधाता दुर्योधन इत्यादि हैं उन्हें आघात करने का अवसर प्राप्त न हो, ऐसा सोचो, विचारो। उन्होंने कहा नहीं मातेश्वरी! ऐसा नहीं होगा। माता ने अपने पुत्रों की अन्तरात्मा में जो धारणा थी उसको समझकर यह कहा, हे मेरे पुत्रों! तुम वास्तव में मेरे पुत्र हो। क्षत्रिय माताएँ, क्षत्रिय पुत्रों के लिए कदापि भी कायरता की वार्ता नहीं करती। वे सदैव साहस देती रहती है और वीरता के, कर्त्तव्य के अपने विचार प्रकट कराती रहती है।

माता कुन्ती ने अपने प्यारे पुत्रों को गर्भाशय में ही इतना बलिष्ठ बनाया था। तुम्हें प्रतीत होगा, जिस समय अर्जुन माता के गर्भ में था तो उन्होंने इन्द्र की उपासना की थी, कर्म देवता को उपासना की, वायु की उपासना की। जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर माता के गर्भस्थल में था तब उसने नौ माह तक धर्म का आचरण किया। सत्यवादी रही, सदैव दर्शनों एवं उपनिषदों का अध्ययन करती रहीं। विचार-विनिमय यह कि जब माता इस प्रकार की होती है तो उन्हें

संग्रामों से भी कोई भय नहीं होता। वे क्षत्रिय होती हैं। ऊर्ध्वागति में उनका गर्भाशय हर्ष ध्वनि करता है। पुत्र का जिस वाणी से, जिस महत्ता से निर्माण किया, उस महत्ता को वह वह सदैव दृढ़ता को प्राप्त होते हैं। मेरे प्यारे! ऐसा कहा जाता है उस समय भीम और अर्जुन ने यह कहा कि माता! जो कुछ हम कर पाएगें वह हमारा विषय है, आपका विषय नहीं, जब तुम ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा करा सकती हो और वेद को प्रदान कर सकती हो तो क्या माता हम स्वयंवर में आ करके शान्त हो जाएँ, यह कैसे हो सकता है?

यह वार्ता हुई और वह वहाँ से भ्रमण करते हुए स्वयंवर में आ पहुँचे, जहाँ राजा बारी-बारी से मछली का छेदन करने का प्रयास कर रहे थे। कर्ण ने यह विचारा कि मैं इसे छेदन करूँगा। महारानी द्रौपदी ने यह कहा कि ''हे कर्ण! तुम्हें इसका अधिकार नहीं है।'' महारानी कन्या की वार्ता श्रवण करने के पश्चात् कर्ण ने कहा कि ''हे देवी! यह तुम क्या उच्चारण कर रही हो? मुझे क्यों अधिकार नहीं है?'' उन्होंने कहा ''क्योंकि तुम्हारा जो जन्म है, उसका प्रतीत नहीं कि तुम किस प्रकार उत्पन्न हुए हो? इसलिए तुम्हें यह अधिकार नहीं दूँगी। जब विदुषी ने यह वार्ता प्रकट की तो उन्होंने वहीं अपने अस्त्रों को त्याग दिया और क्रोधित होकर अपने कक्ष में जा विराजे।

(चौबीसवाँ पुष्प, 27 अक्टूबर 1973)

उस समय उन्होंने भरी सभा में कर्ण को यह कहा था ''अग्रित

वृत्तां देवाः'' तुम प्रिय नहीं हो, तुम्हारी वाणी मे कषैलापन है। तुम्हारे लिऐ मैं नहीं हूँ। मेरे विचार में तुम्हारे विचार, तुम्हारा मस्तिष्क और प्रवृत्तियों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि तुम अपने जीवन में पराधीन रहोगे।'' उन्होंने षस्त्रों से दूर कर दिया कर्ण को।

(इक्कीसवाँ पुष्प, अमृतसार, 21 अप्रैल, 1979)

जब कोई क्षत्रिय ऐसा न रहा जिसने मछली छेदन का प्रयास न किया हो, तो महाराजा दुरपद ने नाना वार्ताएँ प्रकट की। उस समय भीम ने विधाता धर्मराज युधिष्ठिर से कहा कि अब नहीं रहा जाता कि मैं इस मछली का छेदन न करूँ। अर्जुन ने भी यही शब्द कहा और जब धर्मराज की वार्ता को न स्वीकार करते हुए, उन्होंने उस तरकश को अपने आँगन में धारण कर लिया, जिसे महाराज कर्ण ने सभा में त्याग दिया था। उसे ले करके जब मछली को छेदन करने के लिए जल में निहार रहे थे और मछली का चक्र ऊर्ध्वागति में चल रहा था। तब उन्होंने अपने अस्त्रो-षस्त्रों का प्रहार किया तो मछली का छेदन हो गया। छेदन हो जाने के पश्चात् महाराजा दुर्योधन ने यह विचारा कि ये तो पाण्डव हैं। दुर्योधन के दल के साथ उनका संग्राम होने लगा। पाँचों पाण्डवों ने सर्व राजाओं को परास्त कर दिया। परास्त करने के पश्चात् महारानी द्रौपदी को अपनी स्थली पर ले आए जहाँ माता कुन्ती विराजमान थी। माता कुन्ती द्रौपदी को देखकर हर्ष ध्वनि करने लगी। उन्होंने कहा, पुत्र तुमने वही किया,

जो मेरी इच्छा थी। उन्होंने कहा कि माता! यह तो वास्तव में तुम्हारी इच्छा नहीं थी। परन्तु हमारे जो प्रारब्ध हैं, हमारे जो संस्कार हैं उसे कैसे नष्ट किया जा सकता है?

राजा द्रुपद ने यह जान लिया कि ये पाँचों साधु हैं। जो ऋषि रूप में विराजामान हैं। उनके स्थल को, उनके वस्त्रों को दृष्टिपात किया गया। प्रातःकाल में पाँचों विधाता आते और महाराजा दुरपद की सभा में विराजमान होते और सायंकाल को चले जाते। परन्तु यह निर्णय करना उनके लिए दुष्कर हो गया कि यह कौन है? मैं उनको जान नहीं पाता। कुछ समय के पश्चात् वहाँ महाराजा कृष्णा आ पहुँचे। महाराजा कृष्णा ने कहा, तुमने अब तक नहीं जाना। ये वहीं पाँचों पाण्डव पुत्र हैं। इतना उच्चारण करके उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया। महाराजा दुरपद जब उनसे परिचय लने लगे तो उन्होंने कहा "मुझे धर्मराज करते हैं। अर्जुन ने कहा मुझे अर्जुन कहा जाता है। बारी-बारी से सबने अपना परिचय दिया। माता कुन्ती को राष्ट्र गृह में प्रविष्ट कराया गया। निमन्त्रण दे करके द्रौपदी का संस्कार हुआ।"

केवल अर्जुन की पत्नी

महारानी द्रौपदी का जो संस्कार था वह अर्जुन के साथ हुआ। परन्तु आजकल उसको पाँचों पाण्डवों की अर्धांग्नि भी कहा जाता है। पाँचों पतियों का अभिप्राय हमारे यहाँ प्रारम्भ से ही माना जाता है पति उसे कहते हैं, जो रक्षा करने वाला हो, वे पांचों ही उसकी रक्षा

करते थे। वह अत्यन्त विदुषी थी, और वेद की महत्ती में रमण करने वाली थी। उन्होंने महर्षि सामन्तक महाराज से वेदों की शिक्षा का अध्ययन किया था। वह विदुषी सदैव अपनी मानवता में रमण करती रहती थी। मेरे प्यारे! कहा जाता है "पांचों ही द्रौपदी की रक्षा करते थे, परन्तु पत्नी वह केवल अर्जुन की कहलाती थी क्योंकि अर्जुन के साथ उनका संस्कार हुआ था उनकी प्रतिभा भी उन्हीं के साथ रमण करती रहती थी। (चौबीसवाँ पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 27 अक्टूबर, 1963)

उसके पश्चात् राजकीय अपमान के कारण उनकी (कर्ण कौरवों की) धाराएँ परिवर्तित हो गयी। दुर्योधन इत्यादियों का यह विचार बना कि अब हमें क्या करना है? इसके पश्चात् इतना द्वेष, इतनी भयंकर अग्नि, हस्तिनापुर के कण कण में व्याप्त हो गयी थी, उस अग्नि को कोई शान्त नहीं कर सकता था। (इक्कीसवाँ पुष्प, अमृतसार, 21 अप्रैल, 1979)

महारानी द्रौपदी ने सदैव अर्जुन की पत्नी बन करके अपने जीवन को त्याग और तपस्या में परिणत किया। मेरे पुत्र ने मुझे एक समय वर्णन कराया कि वह पाँचों पाण्डवों की पत्नी कहलाती थी। परन्तु यह पाँचों पाण्डवों की पत्नी है ऐसे उच्चारण किया, तो मुझे बड़ी हंसी आयी, कि मेरे पुत्र क्या उच्चारण कर रहे हैं। परन्तु जो इतनी विदुषी हो, जिसने अपने पति के विधाताओं को अथवा किसी द्वितीय पुरुष

को भी पिता या पुत्र ही दृष्टिपात् किया। पति के चारों विधाताओं ने पुत्री भाव से तथा मातृभाव से द्रौपदी की रक्षा की। परन्तु आज उनके प्रति ऐसे अशुद्ध शब्दों को हमे श्रवण करना भी नहीं चाहिये। (इक्कीसवाँ पुष्प, अमृतसार, 21 अप्रैल, 1979)

मुनिवरो! हम महारानी द्रौपदी की चर्चाएँ कर रहे थे। परन्तु आधुनिक काल में द्रौपदी की ऐसी कल्पना है कि इसके पाँच पति थे और वह पाँचों पतियों की एक ही अर्धांग्नि कहलाती थी, विचारा नहीं जाता यह अज्ञान मानवां में कहाँ से आ गया? यह अज्ञान रूढ़िवाद से उत्पन्न हुआ करता है। जब मानव रूढ़िवादी बन जाता है रूढ़िवाद में ब्राह्मण समाज भी उन्हीं रूढ़ियों में परिणत हो जाता है और जन्म से ब्राह्मण बन जाता है जिससे जातीयता का प्रसार हो जाता है। जब जातीयता और रूढ़िवाद पूर्ण ऊर्ध्वगति के शिखर पर चले जाते हैं उस समय धर्म और मानवता का ह्रसहो जाता है। वास्तव में पाण्डव द्रौपदी के सरंक्षक थे। उनकी संरक्षता में वह विचरण करती थी। (चौबीसवाँ पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 27 अक्टूबर, 1973)

विदुषी एवं तपस्विनी नारी

द्रौपदी के बाल्यकाल से लेकर मृत्यु पर्यन्त एक भी दिवस ऐसा नहीं रहा जिस दिवस प्रातःकाल में वह याग न करती हो, एक भी दिवस ऐसा नहीं जब वे वेदों का अध्ययन नहीं करती थी। मुझे

स्मरण आता रहता है जब पाण्डवों को वन प्राप्त हुआ था, उस समय जब तक वे वन में रहे, जैसा वेद में आया ''अभ्रवा गोत्रा नमो ब्रह्मचर्य व्रताः'' उसके अनुसार वह विदुषी बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करती रही और अर्जुन से भी यह कहा हे भगवन्, हमारा जीवन ब्रह्मचर्य युक्त होना चाहिये। पाण्डव भंयकर बनों में, वेदों का अध्ययन करते थे, वेदों की प्रतिभा में रमण करते रहते थे। वह साहित्य कहाँ चला गया। आज इतिहास में मिलावट से ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह महाभारत जैसा संग्राम साक्षात् हुआ प्रतीत नहीं होता।

द्रौपदी सदैव तप में रत रहती थीं। उनका आदर ऋषि-मुनि भी करते थे। जिसमें तप नहीं होता उसका कोई ऋषि-मुनि आदर नहीं करते। भगवान् कृष्ण भी उन्हें पूज्या स्वीकार करते थे। वह वेदों का अध्ययन करती थी,, वे अनुसन्धानवेत्ता थीं, इसीलिए ऋषि लोग महारानी द्रौपदी का स्वागत करते थे। भगवान् कृष्ण भी उनके चरणों का स्पर्श करते थे। यह द्रौपदी के तप का प्रभाव था। (चौबिसवाँ पुष्प, नई दिल्ली, 28 अक्टुबर, 1963)

पवित्र-आहार

जब किसी मानव को, मन को पवित्र बनाना हो तो उसका अन्न इतना पवित्र होना चाहिए कि मन संकल्प करके ही पवित्र हो जाए। बेटा, द्रौपदी कैसा भोजन करती थीं? बाल्यकाल से वह स्वयं परिश्रम

करती थी उस परिश्रम से प्राप्त द्रव्य से भोजन करती थी। हमारे यहाँ मानव दर्शन मानवता का अंग बन करके मानवों के मस्तिष्क में पनपता रहा है, ऋषि-मुनियों की आभाओं में और उनके वायु-मण्डल में भी पनपता रहा है। महारानी द्रौपदी भी सदैव कला कौशल करती थी, वे कला में पारायण थीं। कला कौशल से पुष्पों संग्रह करती थीं, उनके बदले जो द्रव्य आता था, उससे वह जीवन निर्वाह करती थीं। माता कुन्ती ने द्रौपदी से यह कहा कि हे पुत्री! तुम ऐसा क्यों करती हो? द्रौपदी ने कहा इससे मेरा मन पवित्र होता है, मैं अपने मन को पवित्र रखना चाहती हूँ। इस संसार का यह जो तुम्हारा राष्ट्र है, यह अशुद्ध बन गया है। इस हस्तिनापुर की स्थली में अग्नि प्रदीप्त हो गई है। मैं इसमें कोई वाक्य उच्चारण नहीं कर सकती इसलिए मेरे कार्य में तुम बाधक मत बनों। मेरे पुत्रों, वे भयंकर वनों में रही और वहाँ भी स्वयं परिश्रम करती थी। (आत्मलोक 29 अप्रैल, 1979)

वनवास में भी अतिथि याग

वन में द्रौपदी ने ऋषि-मुनियों की सेवा की, कन्दमूल अर्पण किए जिससे प्रसन्न होकर ऋषियों ने कहा ''हे विदुषी! तुम क्या चाहती हो?'' तो उन्होंने कहा ''प्रभु! मैं चाहती हूँ कि यहाँ भयंकर वन में अतिथि सेवा कर सकूँ। जो अतिथि मेरे द्वार पर आए उनकी मैं सेवक तो बनूँ। संसार में प्रत्येक प्राणी सेवक है। मानव-मानव का सेवक है। कोई प्रभु का सेवक बन जाता है परन्तु द्रौपदी ऋषियों से

कहती है, मैं अतिथियों की सेवक बनाना चाहती हूँ। तब ऋषि-मुनियों ने उन्हें एक पात्र दिया जो एक संकल्पमयी-शक्तिवादी बटलोई कहलाती थी। उस बटलोई में यह विशेषता थी कि उसमें कुछ अन्न प्राप्त होता और जब तक महारानी द्रौपदी अन्न नहीं ग्रहण करतीं, तब तक अन्न उसमें समाप्त नहीं होता।

हमारे आचार्यो ने वैदिक साहित्य में संकल्प-शक्ति को एक महान् शक्ति माना है उनका संकल्प तप और निष्ठा के साथ होता और वह (द्रौपदी) संकल्प शक्ति के द्वारा ही अतिथियों की सेवा करती रही। उससे नाना प्रकार का भोज्य आता रहता। भगवान् कृष्ण भी उनकी सहायता करते रहे। भयंकर वनों में द्रौपदी अतिथि सेवा करती रही। कोई भी अतिथि आ जाता, ऋषि-मुनि आते, भोज्य प्राप्त करते, द्रौपदी प्रसन्न होती रहती। बेटा! देखो, वह मेरी पुत्री कितनी सौभाग्यशाली होती है जो गृह में सदैव प्रसन्न रहने वाली है। उसके गृह में द्रव्य समाप्त नहीं होता, उनके गृह में सदैव प्रसन्नता रहती है। अतिथि सेवा करना मेरी पुत्रियों का कर्त्तव्य कहा जाता है परन्तु ऋषि कहते है, आचार्यो ने यह भी कहा है कि हमारी प्रभु से प्रार्थना है कि हमारे गृह में ऐसे अतिथि होने चाहिएं, जो बुद्धिमान हों, जो सुचरित्र हो, जिनके विचारों की सुगन्धि हमारे गृह में प्रवेश हो करके हमारा गृह भी पवित्र बन जाए। (आत्मलोक 29 अप्रैल, 1976)

द्रोपदी की बटलोई

द्वापर काल में ऐसा कार्य हुआ कि महाराजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों की आज्ञा पा करके पाण्डवों को बारह वर्ष का वन दे दिया था। देखो, महाभारत के वन पर्व में एक वार्ता आती है। जब पाण्डव वन में विराजमान थे। 'महाकेन्यतिथि ऋषि' महाराज ने उन्हें एक बटलोई दी, जिसमें बेटा! उनके लिए बड़ा सुन्दर और विचित्र भोजन उत्पन्न होता था। विचित्र होने के कारण मुनिवरों! उस समय भी उनके स्थान पर नित्य प्रति 999 व्यक्ति भोजन किया करते थे। आह! उनका कैसा सुन्दर धार्मिक चिन्ह चलता था। बड़ा ही सुन्दर आचर्यजनक कार्य था। उस काल में मुनिवरो! महाराजा युधिष्ठिर बड़े आनन्दित होकर भोजन कराया करते थे। उस भण्डारे का नियम था कि जिस समय द्रौपदी भोजन कर लेती थी उसके पश्चात् उसमें भोजन नहीं रहता था, भोजन उत्पन्न नहीं होता था।

एक समय सभी ऋषि-मण्डल भोजन करके महाराजा दुर्योधन के समक्ष जा पहुँचे और महाराजा दुर्योधन ने कहा कि आओ, विराजो, कैसे आये? कहाँ से विराज रहे हो? उन्होंने उस समय कहा कि महाराज, हम महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में से पधार रहे हैं। दुर्योधन आश्चर्य से बोले क्या, उनके यज्ञ में से? हाँ महाराज उनके यज्ञ में से आ रहे हैं।' अरे, उन कंगालों के यहाँ इतना द्रव्य कहाँ से आ गया, जो आज वन में भी उनका इस प्रकार का यज्ञ चलता है। दुर्योधन के लिए बड़ा आश्चर्यजनक वाक्य बन गया। उस समय दुर्योधन चाहता

था कि मैं पाण्डवों का किसी न किसी प्रकार विनाश कराऊँ। विनाश कैसे कराया जाए? ऐसा प्रतीत होता है जैसे अर्जुन के अस्त्रो-षस्त्रों ने और भीम की गदा ने राजाओं के द्रव्य को इस मार्ग में विराजमान कर दिया है। परन्तु दुर्योधन कुछ कर नहीं सकता था। सायंकाल का समय था सब ऋषि-मण्डल अपने-अपने स्थान को चले गये, परन्तु सारी रात्रि दुर्योधन के मन में संकल्प-विकल्प होता रहा और वह यह सोचता रहा, ''मुझे पाण्डवों का विनाश करना है तो कैसे करना है।'' मुनिवरो! हमने यह सुना है, कि महाराजा दुर्योधन को रात्रि में यह विचार आया कि कल मैं महर्षि दुर्वासा के द्वार जाऊँगा और उनसे प्रार्थना करूँगा कि वह उनके यज्ञ को नष्ट भ्रष्ट कर आये जिससे आगे के लिए उनका यज्ञ न चले। दुर्योधन उनके विनाश की योजना बनाता रहा।

दुर्वासा कन्या याग के ज्ञाता

रात्रि के मध्य चरण मे जब स्वाति नक्षत्र और मूल नक्षत्र का मिलान होता है। उस समय माता जब अपने गर्भ में एक शिशु को स्थापित करती है तो वह माता संसार में धन्य हो जाती है इस विद्या को महर्षि दुर्वासा जानते थे, उसका अध्ययन किया करते थे। (चित्त की वृत्तियों का निरोध, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 20 मई, 1991)

महर्षि दुर्वासा उसी को कहते हैं जो अपने जीवन में महान हो और पुत्रेष्टियाग का ज्ञाता हो, उस विद्या को लेकर के वह तप करता

है और तपस्या के द्वारा मन बुद्धि, मन मस्तिष्क को एकाग्र करता है और एकाग्र करके उसमें अपनी आभा को पुट लगा देता है। उसके पश्चात् वह तपस्या में परिणत हो करके इस विद्या को पुत्रियों को प्रदान करता है। (चित्त की वृत्तियों का निरोध, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 18 मई, 1991)

मुझे महर्षि दुर्वासा जी का जीवन स्मरण है। दुर्वासा एक उपाधि चली आ रही है। महर्षि दुर्वासा मुनि महाराज इस शिक्षा के बड़े परायण थे और वे उस विद्या को प्रदान करते। वेद मन्त्रों में उद्गीत गाते और प्राण सखा को जानते। प्राणों का जो विषय है, वह बड़ा अनुभवी कहलाता है। प्राण, अपान को मिलाना और मिला करके समान में प्रवेश कर देना, समान को उदान से समन्वय करते हुए प्राण में प्रवेश हो जाना। मेरी प्यारी माताएँ इस योग के द्वारा अपने अन्तरात्मा में जो शिशु विद्यमान है, उससे प्राण के माध्यम से, आत्मा-आत्मा का मिलान करके परमात्मा की चर्चा करती रही है और वे माताऐं, पुत्रियाँ अपने गर्भ की आत्मा से चर्चा करती रही हैं। (चित्त वृत्तियों का निरोध, लाजपन नगर, 18 मार्च, 1991)

हमारे यहाँ द्वापर के काल में देखों महाराजा दुर्योधन के गुरू वह दुर्वासा जी आयुर्वेद के मर्म को जानते थे, आयुर्वेद की विद्या को बहुरुपेण मंथन करते थे। जहाँ वह रहते थे आधुनिक काल में तो यवनों के, मौहम्मद के मानने वालों में उनका गृह चला गया है।

परन्तु वे आधुनिक जगत् में अपने को आर्य पद्धति का उच्चारण करते है परन्तु प्राणियों में उस पुरानी प्रतिभा को न ला सके। उसे द्वापर के काल में आर्यतन कहते थे फिर वही ईरान बन गया, आधुनिक काल में उसको ईरान की पद्धति उच्चारण करते हैं। (वनस्पतियों से दीर्घ आयु, जोरबाग, 17-7-1984)

जिस काल में महाराजा दुर्वासा की पताका थी। महाराजा दुर्वासा विज्ञान के ज्ञाता कहलाए जाते थे। वह यहाँ से, जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है पृथ्वी मण्डल पर वह महाराजा दुर्योधन के पूज्य गुरु होते थे। उनके द्वारा क्रोध की मात्रा तो थी, परन्तु उनका विज्ञान बड़ा सार्थक कहलाया जाता था। आज उनकी उसी भूमि पर साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों का द्योतक बन रहा है। इसका कारण क्या है कि राष्ट्र में स्वार्थवाद है और राष्ट्र के स्वार्थवाद में धर्म की एक रूढ़ि, एक इकाई बन करके मानव-मानव का भक्षण कर रहा है। (यज्ञ एवं औषधि, जोरबाग, नई दिल्ली, 19 दिसम्बर, 1982,)

दुर्योधन-दुर्वासा की योजना

मुनिवरों देखों! सारी रात्रि संकल्प-विकल्प में समाप्त हो गई। प्रातःकाल आ गया। प्रातःकाल होते ही वह महर्षि दुर्वासा के द्वार पहुँचे। उस समय वह सन्ध्या में विराजमान थे। वह परमात्मा का चिन्तन कर रहें थे। परमात्मा का चिन्तन समाप्त होने पर दुर्योधन ने उनके चरणों का स्पर्श किया। महर्षि दुर्वासा ने कहा कहिए, दुर्योधन!

किस कारण आना हुआ। उन्होंने कहा, ''गुरुदेव! आपसे याचना करने आया हूँ आज्ञा दें तो उच्चारण करूँ।'' दुर्वासा ऋषि ने कहा उच्चारण करो, जो आप कहोगे वह मैं अवश्य पूरा करने का प्रयत्न करूँगा। दुर्योधन ने उनसे तीन वचन लिए और कहा कि ''महाराज! मैं तो यह चाहता हूँ कि पाण्डवों का जो वन में यज्ञ चलता है उसको किसी न किसी प्रकार नष्ट कराओ। तो दुर्वासा ने कहा कारण? तब दुर्योधन ने कहा महाराज! मैं इस कारण को तो जानता नहीं।' आह! बेटा! दुर्वासा मुनि सोचते रहे। मध्यम काल आ गया, सोचते रहे कि अब मुझे क्या करना है? उसी समय वह मार्ग में आ गए जहाँ ऋषि मण्डल यज्ञ में से भोजन पाकर आ रहे थे। दुर्वासा मुनि ने देखा, झुंड का झुंड शिष्य-मण्डल आ रहा है। उन्होंने उनसे कहा कि अरे, कहाँ से आ रहे हो? उन्होंने उत्तर दिया महाराज! महाराजा युधिष्ठिर के यहाँ यज्ञ चल रहा है उस यज्ञ में से भोजन पाकर आ रहे है। धन्य हो! अच्छा, किस समय तक 'भोजन' मिलता है? उन्होंने कहा कि जब यह सूर्य शिखा पर से अलग हो जायेगा उसी काल में द्रौपदी भोजन कर लेगी और उसके पश्चात् बटलोई में भोजन उत्पन्न नहीं होगा। मुनिवरो, ऐसा सुना जाता है कि दुर्वासा मुनि सोचते रहे कि अब मुझे क्या करना है। उसने अपना बहुत सा शिष्य-मण्डल एकत्रित कर लिया और योगबल से देख लिया, कि द्रौपदी ने भोजन कर लिया है और अब भोजन नहीं रहा है। दुर्वासा मुनि अपने शिष्य-

मण्डल को लेकर उस स्थान में पहुँच गए जहाँ मर्यादा वाली महारानी द्रौपदी विराजमान थीं। देखो, उस समय पाण्डव भी भोजन पाकर मार्ग में भ्रमण कर रहे थे, वहाँ जाकर महाराजा दुर्वासा विराजमान हो गए।

महारानी द्रौपदी ने दुर्वासा मुनि से कहा कि भगवन् किस प्रकार आना हुआ। उन्होंने कहा देवी! मैं आज तुम्हारे दर्शनों के लिए आया हूँ। कहिए, भगवन्! आप हस्तिनापुर से विराज रहे है। हे ऋषि! क्या वह दुर्योधन अब भी नग्न देवकन्याओं को सभा में नचाने का कार्य करता है या नहीं? दुर्वासा लज्जित होकर बोला कि नहीं, देवी! अब तो नहीं करता। 'अच्छा, शान्त हो करके द्रौपदी ने कहा, कहिए, दुर्वासा जी, आप 'भोजन' पायेंगे या आप भोजन पा आए है? दुर्वासा ने कहा कि पुत्री! मैं तो 'भोजन' पाने आया हूँ। अहा! द्रौपदी मर्यादा वाली थी। उनके हृदय में वार्ता आ समाई कि यह पापी, मेरे पतियों को शाप देने के लिये आया है, उनका यज्ञ नष्ट करने आया है। यह कोई न कोई ऐसी योजना सोचेगा। अब मैं इससे अपने पतियों का अपमान नहीं देखना चाहती। उनके लिए कोई अशुद्ध वाक्य नहीं सुनना चाहती। मुझे अपने प्राणों को शान्त कर देना चाहिए। महारानी द्रौपदी ने महाराजा दुर्वासा से कहा तो अच्छा, भगवन्! आप सरयू में स्नान कर आइए और मैं आपके लिये भोजन नियुक्त कर रही हूँ। उसी काल में महर्षि दुर्वासा मुनि महाराज वहाँ से अपने शिष्य-

मण्डल को लेकर सरयू में स्नान को चल दिए और द्रौपदी ने एकान्त स्थान में, जहाँ महाराजा अर्जुन के अस्त्र-शस्त्रयुक्त हो रहे थे, पहुँच कर अपने पर अस्त्रों को नियुक्त किया और मन में प्रभु से प्रार्थना कर रही थी 'हे विधाता! मैंने बहुत कष्ट पाया है, मैं अपने प्राणों को शान्त करने जा रही हूँ। मैं अपने पतियों का अपमान नहीं देखना चाहती। आज दुर्वासा मुनि उन्हें नष्ट-भ्रष्ट करने आ पहुँचा है, मैं यह नहीं देखना चाहती।''

श्री कृष्ण द्वारा संकल्प से भोजन

मुनिवरो! द्रोपदी यह याचना कर ही रही थी कि इतने में योगीराज कृष्ण वहाँ आ पहुँचे और द्रौपदी से पूछा ''भौजाई! आप क्या कर रही है? उन्होंने कहा विधाता! अपने प्राण शान्त कर रही हूँ। ''क्यों शान्त कर रही हो?'' योगीराज कृष्ण ने पूछा, तो द्रौपदी ने कहा दुर्वासा   मुनि शाप देने आया है। मैं अपने पतियों का अपमान नहीं देखना चाहती।'' महाराजा कृष्ण ने कहा ''देवी। कैसे आया है?'' द्रौपदी ने कहा ''विधाता! भोजन पाने आया है, परन्तु भोजन है नहीं, न मिलेगा और न देंगे और वह यहाँ से शाप दे करके चला जाएगा।'' अहा! उसी समय मुनिवरो! महाराज कृष्ण ने कहा, ''देवी! तुम्हारे द्वारा भोजन नहीं है तो क्या, हमारे द्वारा भी नहीं? हमारे द्वारा तो भोजन है।''

बेटा! मन का संकल्प बड़ी योजना वाला होता है। योगीराज ने

षोडश कलाओं को जाना था। षोडश कलाओं को जानकर मानव के द्वारा क्या-क्या प्रदीप आ जाते है, कैसा अपने जीवन का प्रदर्शन करने वाला मानव बन जाता है। महाराजा कृष्णा ने कहा, ''तुम्हारी बटलोई में कुछ भोजन भी है?'' द्रौपदी व्याकुल होकर बोली, ''महाराज! बटलोई में भोजन होता तो दुर्वासा को न दिया जाता।'' परन्तु उस बटलोई में, एक किरका लगा हुआ था, उस एक किरके का उन्हांने आहार किया और मन के संकल्प से दुर्वासा और उनके शिष्य-मण्डल सब की तृप्ति हो गयी। यह मन का एक प्रदीप ऐसा है जिस मन को जानने से मानव को प्रतीत हो जाता है कि यह क्या-क्या कर देता है। आज हमें विचारना है, कि यह मन क्या पदार्थ है जिस मन के संकल्प से तृप्ति हो जाती है, जिसको यौगिक क्रियाओं से, षोडश-कलाओं से जाना जाता है।

इतने में देखो, पाण्डव मार्ग में से आ पहुँचे और महाराजा कृष्णा से बोले कि महाराजा! आप कैसे आ पधारे? महाराजा कृष्णा ने कहा कि ''जब कंठ किया जाता है तभी आ पहुँचते है।'' वह विराजमान हो गए, महारानी द्रौपदी ने भीम से कहा कि महर्षि दुर्वासा सरयू में स्नान करने गए है, उन्हें ले आइए। उनके लिए भोजन नियुक्त हो गया है। महाराजा भीम अपनी गदा सहित सरयू पर जा पहुँचे जहाँ, 'स्नान, ध्यान' हो रहा था। महाराजा भीम ने दुर्वासा मुनि से कहा कि महाराज! महारानी द्रौपदी आपको भोजन के लिए कंठ कर रही है,

भोजन नियुक्त हो गया है। दुर्वासा के मन में विचार आया कि अरे, भोजन नियुक्त हो गया है। अतः मेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं होगी। आज तू वचनों से मिथ्या बन जायेगा, अब करना क्या है? भोजन नियुक्त हो गया है। उसी काल में दुर्वासा ने कहा मुझे भोजन की इच्छा नहीं, मैं भोजन नहीं चाहता। महाराज भीम ने कहा महाराज या तो आप भोजन करने चलें अन्यथा मैं अपनी गदा से आपके ऊपर प्रहार करूँगा। अब दुर्वासा मुनि को चिन्ता आ पहुँची कि आज तो तुम्हारी मृत्यु भी आ गयी।

मुनिवरो! दुर्वासा को गदा का भय नहीं था, परन्तु दुर्वासा मुनि के हृदय ने जो पाप था उसी का प्रहार था और वह उस काल में उस पाप का एक महान् प्रदर्शन कर रहा था। दुर्वासा मुनि जब उनके मध्य मार्ग में आये तो कहा ''भीम! मुझे भोजन की इच्छा नहीं है।'' भीम ने तब भी यही उत्तर दिया कि चलिए, नहीं तो भुजाओं में गदा है मैं इसका आपके ऊपर प्रहार करूँगा। महर्षि दुर्वासा मार्ग में विचारते चले जा रहे थे कि कौन-सा पदार्थ पाना चाहिए। जो पदार्थ मुझे मिलेगा उसे ग्रहण कर लेने से इच्छा पूर्ण नहीं होगी इसलिए मुझे वह पदार्थ लेना चाहिए जो आज न मिले और जब वह पदार्थ न मिलेगा तो तू यहाँ से अपनी इच्छा पूर्ण करके चले जाना। दुर्वासा मुनि के हृदय में संकल्प विकल्प दौड़ते चले जा रहे थे। दुर्वासा के लिए महारानी द्रौपदी ने बड़ा ऊँचा आसन लगाया और उस आसन

पर दुर्वासा मुनि विराजमान हो गए।

मुनिवरो! महारानी द्रौपदी महाराजा कृष्णा के द्वारा जा पहुँची और योगीराज से कहा "महाराज! दुर्वासा मुनि तो आ पहुँचे, भोजन कहाँ है?" महाराजा कृष्णा ने कहा कि उनसे पूर्व यह प्रश्न करके आओ कि वह क्या भोजन करेंगे? देखो, दुर्वासा मुनि जो अपने मन में संकल्प किये बैठा था कि आज बिना ऋतु का आम का फल मँगाऊँगा जिसे यह न दे सकेंगे और तू शाप दे करके चला जायेगा। दुर्वासा यह विचार रहा था कि महारानी द्रौपदी आ पहुँची और कहा कहिये, भगवन्! आप क्या भोजन करेंगे? दुर्वासा ने कहा पुत्री! मैंने तो आज एकादशी का व्रत किया है, आज मैं अन्न तो पाऊँगा नहीं देखो, मुझे आम का फल चाहिए। मैं बिना ऋतु का फल पाया करता हूँ।

अहा! द्रौपदी व्याकुल हो गई और कहा कि अरे, यह तो हमारे जीवन को नष्ट करने आया है। कृष्णा से कहा महाराज! वह तो हमारे जीवन को नष्ट करने आया है, वह बिना ऋतु का आम का फल चाहता है। महारानी द्रौपदी से कृष्णा ने कहा, "उच्चारण करके आओ, कि कच्चा आम खायेंगे या पक्का आम पायेंगे।" वहाँ से जाकर द्रौपदी ने दुर्वासा से कहा, "कहिये, महाराज! कच्चा आम पायेंगे या पक्का।" अब दुर्वासा मुनि को बड़ी चिन्ता हुई कि अरे! इनके द्वारा तो आम का फल भी है। यदि तूने कच्चा माँग लिया तो कहीं इनके

द्वारा कच्चा ही श्राम न हो श्रौर पक्का माँग लिया तो कहीं पक्का ही न हो, वह बड़ी चिन्ता में पड़ गया। दुर्वासा मुनि ने कहा कि पुत्री! मैं तो दोनों ही प्रकार के श्राम खाऊँगा। जब दुर्वासा ने ऐसा कहा तो द्रौपदी महाराजा कृष्णा से बोली कि महाराज वह तो दोनों प्रकार का उच्चारण कर रहा है श्रौर एक वाक्य श्रौर कहा कि यदि मेरे मुख में श्रा करके पड़े तो पाऊँगा श्रन्यथ नहीं पाऊँगा।

महाराज कृष्णा सभी योगों को जानते थे। भुष्ट-योग को भी जानते थे जिसको मुनिवरों! ''प्रह्ना भवन्ति श्रश्चते श्रापन्ति रूपगृधेय भ्रष्टमोकृधे मनश्चति'' महाराजा कृष्णा ने कहा कि द्रौपदी! जाश्रो, श्रौर कहो कि मुँह ऊपर को बहा करके विराजमान हो जाये। उसी समय द्रौपदी ने दुर्वासा से कहा कि महाराज श्राप ऊपर को मुँह बहा करके विराजमान हो जाइए श्रापके लिए फल श्राने वाला है।

श्रहा! दुर्वासा ऊपर को मुँह बहा करके विराज गए। महाराज कृष्णा ने महान् यौगिक क्रियाश्रों से, योग सिद्धियों से उन्होंने दुर्वासा मुनि को एक चमत्कार दिखाया श्रौर बेटा! क्षण समय में श्रन्तरिक्ष में एक श्राम का वृक्ष लग गया। दुर्वासा मुनि ने कुछ ही समय में देखा, कि श्राम के वृक्ष पर पुष्प श्राने लगे, कुछ समय में देखा, फल भी श्राने लगे, कुछ काल में देखा, कि कुछ श्राम कच्चे है कुछ पक गए है। श्रब मुनिवरो! उसी काल में एक वायु चली जिससे बेटा! श्रब कच्चे पक्के दोनों श्राम झड़ने लगे। श्रब दुर्वासा मुनि के जो कच्चा श्राम

लगता तो वज्र के तुल्य और जो पका आम आता था, उससे उसके सब वस्त्र भ्रष्ट हो जाते थे। दुर्वासा मुनि व्याकुल हो गए और व्याकुल हो करके कहा 'पुत्री! मुझे मेरे प्राणों का दान दो। मैं अपने प्राणों का दान चाहता हूँ, मैं आपका फल नही चाहता। दुर्वासा मुनि का छोटा-सा मुख उन आमों के लगने से बहुत बड़ा मुँह बन गया और उस समय द्रौपदी महारानी मग्न होने लगी और महाराज कृष्णा से कहा महाराज वह तो ''शान्तमक्रियश्चते'' शान्ति को कह रहा है। उसी काल में महाराजा कृष्णा ने कहा ''उच्चारण करके आओ, उन्हें कोई बेल पत्र तो नहीं चाहिए।'' मुनिवरो! द्रौपदी जी वहाँ से बहती गयी और दुर्वासा मुनि से कहा ''महाराज! आज आपने एकादशी का उपवास किया है बेल पत्र तो नहीं चाहिए।'' दुर्वासा मुनि बोले ''पुत्री! यदि मेरे शरीर में इस प्रकार बेल पत्रों ने आक्रमण किया तो मेरे प्राणान्त हो जायेंगे। मैं तो प्राणों का दान चाहता हूँ, मुझे प्राणों का दान दीजिए।'' दुर्वासा मुनि व्याकुल हो गए। महारानी ने कृष्णा से कहा, ''महाराज! शान्तं भवतो अश्वते।'' महाराजा कृष्णा ने शान्ति का प्रदर्शन किया।

मुनिवरो! उसी काल में दुर्वासा मुनि ने दुर्योधन को कहा अरे दुर्योधन! तू धर्मात्माओं को सताना चाहता है, नष्ट करना चाहता है जा तेरा संसार में विनाश हो जाएगा और पाण्डवों की विजय हो जायेगी यह दुर्वासा मनि ने कहा, परन्तु आज निर्णय करा देते है कि

महाराजा दुर्वासा मुनि के इतना कहने से उनके सात जन्मों का पुण्य समाप्त हो गया। सात जन्मों का पुण्य समाप्त होने से दुर्वासा मुनि वहाँ से बहते हुए अपने शिष्य मण्डल में जा पहुँचे। शिष्य मण्डल ने कहा कहिए, भगवन्! आप आनन्दित तो है। दुर्वासा ने कहा ''आनन्द कहाँ'' आज मेरे जीवन के सभी पुण्य दुर्योधन विनाश करा चुका है। आज मेरे सात जन्मों का पुण्य समाप्त हो चुका है। आज मैं पाण्डवों को नष्ट करने की योजना बना करके गया परन्तु मेरे ही सात जन्मों के सब पुण्य कर्म समाप्त हो गये।''

मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहेंगे कि महाराजा कृष्णा ने यह आम का फल कैसे पान कराया और अन्तरिक्ष से कैसे आये, परन्तु बेटा! यह तुम्हें निर्णय करा देते है ''वास्तविकं भुवने अश्वते'' यह वास्तविक आम का प्रदर्शन नहीं था केवल तुम्हें एक वाक्य निर्णय कराने के लिए कि महाराजा कृष्णा ने उस समय एक प्रतीक दिया। यदि मानव मर्यादा से पृथक् चलता है तो उसके पुण्य कर्म भी समाप्त हो जाते है। दुर्वासा मुनि को चाहिए था कि वह पाण्डवों को सुख पहुँचाते क्योंकि वे राजा होते हुए भी आपत्ति में फंसे थे। केवल अपने मान में आकर वे राज सम्मान के लिये पाण्डवों का विनाश करने गए, अपने सात जन्मों के पुण्य को समाप्त कर बैठे। जिन सात जन्मों के पुण्य से उन्हें ऋषि की उपाधि मिली थी, वह ऋषि उपाधि ही समाप्त हो गई। वह पुण्य ही समाप्त हो गये, देखो, यह मानव की

प्रकृति है, बेटा! दुर्वासा मुनि ही नहीं, मर्यादा वह पदार्थ है जिस मर्यादा में चल करके, यह सारा समाज का समाज सुधर जाता है और अपने कर्त्तव्य पर आ जाता है। (आठवाँ पुष्प, महरौली, नई दिल्ली, 6 नवम्बर, 1962)

याज्ञिक द्रौपदी और कृष्ण संवाद

एक समय भगवान् कृष्ण ने भंयकर वनों में याग करते हुए द्रौपदी से कहा कि हे देवी! वेदों में तुम रमण करती रहती हो, सदैव भंयकर वनों में भी तुम्हारे द्वारा यागों की प्रतिभा चलती रहती है, तो याग का स्रोत क्या है? याग किसे कहते हैं? उस समय द्रौपदी ने कहा कि महाराज आप इतने महान् हैं और आप मुझसे प्रश्न कर रहे हैं। क्या मेरी परीक्षा ले रहे हैं? उन्होंने कहा कि नहीं, देवी! मैं तुम्हारी परीक्षा नहीं ले रहा हूँ, परन्तु मेरा तो प्रश्न है। उस समय द्रौपदी ने कहा कि याग का अभिप्राय है कि हम हवि देते है और किसे हवि देते हैं? हवि हम देवताओं को प्रदान करते है। देवता वह वस्तु त्यागते है और हमारे लिए अन्न की वृद्धि के लिए वृष्टि करते है। याग से पर्जन्य (बादल) होता है उसी पर्जन्य से वृष्टि होती है, उसी वृष्टि से अन्न की उत्पत्ति होती है। उसी को हम पान करते है, हमारे जीवन का संचार होता है। हे भगवन्! आप तो सब जानते हैं, इसको देव पूजा कहते हैं। देव पूजा का अभिप्राय यह है कि देवताओं में जो गुण है, ऐसे ही गुणों को हमें धारण करना चाहिए। जैसे अग्नि है वह

प्रदीप्त रहती है, जब तक वह प्रदीप्त रहती है तो चाहे कोई मृगराज हो, कोई प्राणी हो वह अग्नि के समीप नहीं आ पाता। इसलिए मानव को काम, क्रोध, मद, लोभ व मोह से इतना दूर रहना चाहिए, ज्ञान रूपी अग्नि का इतना संचार हृदय में रहना चाहिए जिससे काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह इस मानव के ज्ञान रूपी अग्नि के समीप न आ सकें, जैसे मृगराज अग्नि के समीप नहीं आते, नाना प्राणी नहीं आते, इसी प्रकार मानव के हृदय में इतनी अग्नि प्रदीप्त रहनी चाहिए।

रहा यह कि जैसे आपो है वह शीतल है, जो सोम कहलाता है। यह जो संसार है वह जल रूप माना गया है। जल से संसार की उत्पत्ति है, जब हम यह विचारते हैं कि जलों से ही संसार की उत्पत्ति है, माता के गर्भ-स्थल में बालक का निर्माण होता है, वह भी एक जल स्वरूप माना जाता है। वह जल स्वरूप माता के गर्भ में स्थापित हो जाता है, सूर्य की नाना किरणों के द्वारा, चन्द्रमा की कान्ति के द्वारा, अग्नि के द्वारा उसे शुष्क बनाया जाता है। उन कणों को, उन परमाणुओं को जो परमाणु विद्यमान हैं, उन परमाणुओं का निर्माण किया जाता है, वे परमाणु जहाँ भी है उन्हें वहीं की स्थली पर स्थिर किया जाता है। तो हे प्रभु! वह जल स्वरूप अपने आप ही स्वतः सुगाठित हो जाता है। नाना प्रकार के परमाणुओं को ले करके, नाना प्रकार की धातुओं को ले करके माता के गर्भस्थल में हमारी जैसी बुद्धियों का निर्माण हो जाता है। हमें भी संसार में इन्हीं गुणों

को धारण करते हुए, संसार में अपनी वाणी के द्वारा संसार को सुगठित करना चाहिए।

इसी प्रकार जैसे अन्तरिक्ष है, उसमें सर्व वस्तु, सर्व परमाणु लय हो जाते हैं, इसी प्रकार मानव के यहाँ सर्व-ज्ञान लय होना चाहिए, सर्व-शब्दावली रहनी चाहिए, सर्व-विज्ञान रहना चाहिए जिससे वह अन्तरिक्ष के विज्ञान को जान सके और उसके सूक्ष्म से साकार रूप को लाने का प्रयास करें। देवताओं के गुणों को अपनाना है, जैसे सूर्य प्रकाशमान रहता है, चन्द्रमा सौम्य बन करके रहता है, मानव को उन गुणों को धारण करते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहिए। विचार-विनिमय क्या कि सर्वत्र देवताओं को हम धारण करें। हवि देने का अभिप्राय यही है कि हम अपने में स्वतः अपनेपन को जानते हुए, इस संसार-सागर से पार होते हुए हम नम्र बनें, त्यागी बनें, तपस्वी बनें। क्योंकि त्याग और तपस्या में आनन्द है और उसी को प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या संसार में चाहता है और वह आनन्द उसी काल में प्राप्त हो सकता है। जैसे प्रभु आनन्दयुक्त हैं उसी प्रकार हे मानव! तू अपनी आत्मा में भी आनन्द के लिये सदैव उत्सुक रहता है। अपनी आत्मा को आत्म-आनन्द में विचरण करने लगता है। उसी आनन्द को प्राप्त होते हुए इस संसार रूपी सागर, जो मान-अपमान वाला जगत् है, उससे मानव को पार हो जाना चाहिए।

महारानी द्रोपदी ने यह कहा कि महाराज मैं तो याग को ऐसा ही जानी हूँ कि जब मानव अपनी प्रवृत्तियों का अनुसरण करता है उन पर अनुशासन करता है तो वह याज्ञिक पुरुष होता है। हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के याग है। याग कहते है, सुचरित्र को। जब मानव चरित्र वान् बनता हुआ, अनुशासन में रहता हुआ अपने जीवन की हिंसा से रहित होकर कर्म करता है उसका नाम याग कहलाया जाता है। (चोबीसवाँ पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 27 अक्टूबर, 1973)

वेदों की ज्ञाता

वह जो विदुषी द्रौपदी थीं। वह सदैव वेदों का गान गाती रहती थी। रात्रि का समय था, अर्जुन और द्रौपदी दोनों विराजमान थे, उन्होंने एक वेद मन्त्र उच्चारण किया और अर्जुन से कहा कि प्रभु! आप को प्रतीत है कि यह मन्त्र क्या कह रहा है? उन्होंने कहा कि देवी! मैं तो नहीं जानता। तब उन्होंने कहा कि यह मन्त्र कह रहा है कि ''हमें वैज्ञानिक बनना चाहिए, संसार में विज्ञान के तत्त्व को जानना चाहिए। अर्जुन ने इन वाक्यों का श्रवण किया। द्रौपदी ने कहा कि यह मन्त्र कह रहा है कि हे मानव! तू वैज्ञानिक बन कर अग्नि का अग्न्याधान कर, जब अग्न्याधान करेगा तो वे जो परमाणु अन्तरिक्ष में जाते हैं वे नम्र बनकर के देवताओं की हवि बनते हैं, अग्नि को जानता हुआ तू संसार में वैज्ञानिक बन। वे सदैव उपदेश करती रहती

थी और उसका परिणाम यह हुआ कि उस विदुषी पत्नी ने, अर्जुन को वैज्ञानिक बना दिया। पति पत्नी का संसार में कोई उपदेश है तो वह उसकी महत्ता, ऊँचा वैज्ञानिक बनना, मानवता में परिणत होना तथा जीवन में क्रियात्मकता आ जाना ही उनका कर्त्तव्य है। (चौबीसवाँ पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 27 अक्टूबर, 1973)

द्रौपदी चीर हरण

दुर्योधन इत्यदि सब हस्तिनापुर में आने के पश्चात् अपने-अपने कक्ष में गति करते थे। विश्राम में रहते हुए अपने कार्यो का, कर्त्तव्यों का पालन भी करते रहते। विचार बना कि अब हम इन पाण्डवों को विजय करना चाहते हैं। पाण्डवों को विजय कैसे किया जाए? पाण्डवों को विजय करने के लिए उन्होंने शकुनि को आगे किया और शकुनि से कहा तुम, जुए में उनको विजय करो। बेटा, षड्यन्त्र रचा गया और पाण्डवों को जुए में विजय कर लिया परन्तु यह अप्रिय घटना हुई। जब विनाश का समय आता है तो बुद्धियाँ भी परिवर्तित हो जाती है, बुद्धि में विषाँकुर हो जाते हैं। शकुनि तो यह कहता रहा कि विधाता और विधाताओं के गृह में कोई हार-जीत नहीं होती, कोई नीचा और कोई ऊँचा नहीं होता, हम तो ऐसे ही यह बनावटी कार्य कर रहे हैं। हम कोई ऐसे नहीं हैं, जो तुम्हें पामर (नीचा) करना चाहते हों। मुनिवरों! स्वभाव से युधिष्ठिर भोले-भाले थे, उनकी विचारधारा यह रही कि वह मिथ्या उच्चारण नहीं कर रहे हैं और जब

सब कुछ हारने के पश्चात् द्रौपदी को भी उन्होंने अर्पित कर दिया, तो वे वचनबद्ध हो गए।

बेटा! वचन-बद्ध होने के पश्चात् जो अगला दिवस आया, तो महारानी द्रौपदी ने स्नान भी नहीं किया था रजो (रजस्वला धर्म) में परिणत थी, दुर्योधन ने अपने विधाता को, यह कहा कि उस विदुषी को जो विदुषी बन रही है उसको हम सर्व सभा में नग्न दृष्टिपात् करना चाहते हैं। यह कितनी भंयकर अग्नि थीं। यह कितना भयंकर विचार था राष्ट्र के लिए, राष्ट्रीयता के लिए और कुटुम्ब का विनाश होने के लिये। यह भयंकर अग्नि, विचारों की अग्नि थी, जिस अग्नि को कोई भी शान्त नहीं कर सका। जब मानव में धृष्टता आती है, तुच्छता आती है, विनाश का क्षण आता है, तो मुनिवरों, उसके विचारों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, और वह अग्नि दूषित हो जाती है। मेरे पुत्रों! जब महाराजा दुर्योधन ने अपने विधाता जरयोधन (दुःशासन) से कहा, जाओ, उस रज वाली पाचाली को ले आओ, मैं उसे नग्न रूप में दृष्टिपात् करूँगा, यह विचार उनके उस सभा में पूर्व से ही बन गए थे।

जब द्रौपदी को सभा में लाया गया तो महारानी गान्धारी ने भी कहा 'यह तुम क्या कर रहे हो? माता कुन्ती ने भी कहा परन्तु इस वचन को स्वीकार करने वाले उस सभा में थे कौन? गुरु द्रोण भी विद्यमान थे और देवव्रत भीष्म भी विद्यमान थे और देखो, सब

आर्यवर विद्यमान थे, मामा, जो शकुनि मामा कहलाते थे वह भी थे। परन्तु ''विनाशां विकृति जयताः''। मुझे स्मरण है, द्रौपदी को नग्न करने के लिए महाराजा जरयोधन (दुःशासन) उन्हें सभा में ले आए परन्तु सभा में किसी का यह साहस नहीं बना कि विदुषी के वस्त्रों पर कोई अपने भुजों का आक्रमण भी कर सके। अस्त्रां-षस्त्रों से वहाँ कोई उस पर आक्रमण नहीं कर सका। जरयोधन (दुःशासन) तो उसे आज्ञा के अनुसार ले आया और वह उस सभा में आ गई। वहाँ महाराजा दुर्योधन ने कहा, हे विदुषी! तू विदुषी कहलाती है, आज हमें तेरे विदुषीपने को नष्ट करना है। परन्तु देवी द्रौपदी कहती है, हे दुर्योधन! तुम्हें यह प्रतीत है कि मैंने किस पूज्यपाद के द्वारा अध्ययन किया, तुम्हें यह भी प्रतीत है कि मेरे जीवन में ब्रह्मचर्य-व्रत है तुम्हें यह भी तुम्हे प्रतीत है कि मेरा संसार में एक ही पति है। और तुम्हें यह भी प्रतीत है कि मैं दुष्टों का संहार भी कर सकती हूँ। क्योंकि दुष्टों का संहार अपराध नहीं होता, तुम क्यों मृत्यु के मुख में अपने को परिणत करना चाहते हो?

द्रौपदी ने कहा, जहाँ देवव्रत जैसे हमारे पिता विद्यमान हों, द्रोणाचार्य विद्यमान हो, इन सबके रक्त में दूषितपना आ गया है। जहाँ मेरे पति के सहित पाँचों विधाता विद्यमान हों, उनके रक्त में निराशा आ गई है। उनके रक्त में शीतलता आ गयी है। आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा हैं दुर्योधन! कि तुम्हारी हस्तिनापुरी की स्थली पर

अग्नि की वृष्टि होने वाली है।

अब मुनिवरो! देखो, दुर्योधन कोई शब्द उच्चारण नहीं कर रहा है। दुर्योधन कहता है कि मैं नग्न कैसे करूँ? जरयोधन (दुःशासन) कहता है कि मैं नहीं करूँगा और नाना विधाता कहते हें कि हम में इतना साहस नहीं है। विदुषी सभा में विद्यमान है। देवव्रत से द्रौपदी ने कहा, हे पितामह! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं स्वतः नग्न हो सकती हूँ। परन्तु इन दुष्टों में साहस नहीं है, ये पामर है, इन पामरों में आत्मबल नहीं है। आत्मबल के साथ में प्रभु का आश्रय होता है, प्रभु की प्रतिज्ञा होती है। जिसमें द्वितीय स्त्री को नग्न करने की प्रवृत्ति बन जाती है, उसमें आत्म-बल और साहस कहाँ और कैसे रह सकता है। एक विदुषी भरी सभा में बोल रही थी जहाँ नाना बुद्धिमान थे, वे सब सभा से अपने-अपने गृह को प्रस्थान करने लगे।

मुझे स्मरण है, मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय में यह कहा है कि द्रौपदी को नग्न करने के लिए उसके वस्त्रों को खींचा गया। पर मुझे तो ऐसा प्रतीत है कि हस्तिनापुर की स्थली पर कोई प्राणी ऐसा नहीं था जो उसके वस्त्रों को स्पर्श करने वाला हो। इतना ऊँचा उनका संकल्प, इतना साहस उनमें था। क्योंकि मेरी पुत्री में जब इतना साहस हो जाता है तो कोई भी उसका अप्रिय नहीं कर सकता। बेटा! तुम्हें त्रेता काल का प्रतीत होगा राजा रावण के यहाँ माता सीता लगभग वर्ष भर अशोक वाटिका में रहीं। महाराजा रावण

का साहस नहीं था कि माता सीता के शरीर को स्पर्श करे। क्योंकि शरीर का स्पर्श तब तक नहीं होता जब तक दोनों की अनुकूलता प्रतीति नहीं होती। स्पर्श या तो पुत्र कर सकता है या दुरिता में, दोनों की दुरित-भावना कर सकती है। उनके (द्रौपदी) वस्त्रों का भी स्पर्श हस्तिनापुर की स्थली पर नहीं हुआ। दुर्योधन का यह साहस नहीं था। परन्तु उस समय पाँचों पाण्डवों ने अपनी-अपनी प्रतिज्ञाएँ की, वह प्रतिज्ञा पूर्ण होकर ही रही।

उसके पश्चात् महापिता देवव्रत, उन्हें भीष्म भी कहते थे, उन्होंने द्रौपदी को मन ही मन नमस्कार करके अपने आसन को त्याग दिया, द्रोणाचार्य ने भी त्याग दिया। इसके पश्चात् यह कुछ वार्ता महाराजा धृतराष्ट्र के विचारों में आयी। उन्होंने अपने मन्त्री से कहा कि हस्तिनापुर की स्थली पर यह क्या हो रहा है। जब संजय से कहा गया तब संजय बोले महाराज! क्या चाहते हो? तो धृतराष्ट्र ने कहा कि मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। मेरे हृदय मे अशुद्ध संकल्प जागरूक हो रहे हैं। मेरा हृदय यह कह रहा है कि तेरे जीवन मे अग्नि ही अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। अब मुझे सभा में ले चलो जहाँ से मेरे श्रोत्रों में कुछ वार्ता आ रही है। मुनिवरों! संजय उस नेत्र हीन राजा को उस सभा में ले आये। राजा ने कहा, यह क्या है इस सभा में? संजय ने कहा महाराज! महारानी द्रौपदी विद्यमान है और सभा शून्य है। सभा में कोई वाक्य उच्चारण नहीं किया जा रहा है और

उसके वस्त्रों को मानों एक लेखनी लगी हुई है, द्रौपदी को नग्न करने का एक दूषित विचार बना हुआ है। तो राजा ने कहा, ‘‘प्रभु ब्रह्म कृति देवाः’’, मुझे द्रौपदी के द्वार पर ले चलों। मेरे पुत्रों! द्रौपदी के द्वार पर आकर के राजा ने भिक्षा में देवी से कहाः हे पुत्री! मुझे भिक्षा दो। (द्रौपदी) हे प्रभु! हे भगवन्! मैं आपको क्या भिक्षा दूँ? (धृतराष्ट्र) जो मैं चाहता हूँ! (द्रौपदी) देव मैं कोई भिक्षा नहीं दे सकती, आज मैं किसी योग्य नहीं हूँ। मैं तो वीरांगना हूँ और संसार मे मेरा संकल्प और मेरे प्रभु ही मेरे सहायक है। संसार में कोई प्राणी मेरा नहीं। इस सभा में मैं क्या आपको अर्पण कर सकती हूँ? मेरे द्वारा क्या है? मेरा संकल्प ही मेरे द्वारा है, और मैं संकल्प को आपको प्रदान नहीं कर सकती।

जब द्रौपदी ने ऐसा कहा तो धृतराष्ट्र के नेत्रों से जल की वर्षा होने लगी। धृतराष्ट्र ने कहा, हे पुत्री! मुझे यह प्रतीत नहीं था कि अग्नि का काण्ड हस्तिपुर की स्थली पर हो रहा है। अन्यथा मैं यही आ विराजता यह अकृतां देवाः, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे होते हुए संसार में मेरा वंश सूर्य की भांति समाप्त हो जाएगा। हे पुत्री! तुम विदुषी हो, मैं यह चाहता हूँ, कि तुम मुझे मेरे वंश की भिक्षा दो, मैं अपने वंश के लिए भिक्षा चाहता हूँ, उन्होंने कहा प्रभु! मैं आपको यह भिक्षा प्रदान नहीं कर सकती। मेरे द्वारा और कोई वस्तु ही नहीं है और यह संकल्प तो मेरे मस्तिष्क में आ गया है। यह तो प्रभु की

अनुपमता है। जब मानव दर्शन के ऊपर जाओगे तो तुम्हे प्रतीत होगा कि जो किसी की कन्या को, देवी को, अनायास ही बिना कारण के कारण बनाता जाता है जानो कि अग्नि में उसके जीवन की आभा नष्ट होने वाली है। हे प्रभु! मैं क्या उच्चारण कर सकती हूँ? मेरे द्वारा उच्चारण करने के लिए न तो शब्द है और न अर्पित करने के लिए कोई वस्तु है।

मेरे पुत्रों, धृतराष्ट्र मौन हो गए और मौन हो करके कहा कि देवी! तुम क्या चाहती हो? उन्होंने कहा कि ''मैं, पति और पति के जो विधाता हैं इन सबको मुक्त चाहती हूँ, उन्होंने कहा ''तथास्तु।'' द्वितीय वचन मैं यह चाहती हूँ कि ''मेरे पति और उनके विधाताओं को सब अस्त्र-शस्त्र प्रदान हो जाने चाहिए।'' उन्होंने कहा ''तथास्तु।'' परन्तु दुर्योधन की स्वार्थपरता यहाँ आडे आती है। पुत्रों! यहीं स्वार्थपरता हस्तिनापुर का अग्नि काण्ड का कारण बनी। दुर्योधन ने कहा, ''हे पिता! एक वचन मेरा भी हैं। पिता ने कहा ''तुम क्या चाहते हो?'' मैं पाण्डवों के लिए 12 वर्ष का बनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास चाहता हूँ। उस समय पाण्डव कहीं भी दृष्टिपात् न हों। दुर्योधन के ऐसा कहने पर राजा ने कहा अच्छा, पुत्र, यह भी तथास्तु।

मेरे पुत्रों! तथास्तु कहते ही महाराजा धृतराष्ट्र भूमि में अर्पित हो गए और उन्होंने कहा कि यह ममता मेरे द्वारा नहीं होती, तो यह

हस्तिनापुर मेरे समीप अग्नि का काण्ड नहीं बनता। यह अग्नि-काण्ड बन करके रहेगा क्योंकि ममता ने मेरी आभा को नष्ट कर दिया है। मेरे पुत्रों! मुझे स्मरण है, उस काल की वार्ता, वह कितना क्षुद्र काल आया। उस काल को कहा तक उच्चारण करूँ? परन्तु मेरी पुत्रियों में संकल्प-शक्ति द्वारा? कितना साहस रहा है, कितनी आभा रही है कोई उसके वस्त्र को भी स्पर्श नहीं कर सका। ऐसी विद्वत सभा में, ऐसी राज्य-सभा में दुर्योधन का साहस नहीं बन पाया। क्योंकि जो मानव दूसरों को नष्ट करना चाहता है वह स्वतः नष्ट हो जाता है। जो दूसरों के प्रति अपनी आभा में आभा को नहीं चाहता, उसका संकल्प अशुद्ध बन करके उसके लिए मृत्यु का मूल कारण बन जाता है। (आत्मलोक अमृतसर 21 अप्रैल, 1979)

भीष्म पितामह पर रोष

पितामह भीष्म के हृदय में यह अज्ञान आया और यह अज्ञान कैसे आया? मानो देखो, न प्रतीत यह क्यों आया? मोह के कारण आया? या राष्ट्र के कारण आया? मुनिवरो! जिस समय वे बाणों की शैय्या पर विद्यमान थे, तो उस समय उन्हें उत्तरायण की प्रतीक्षा थी। तो मुनिवरो देखो, महारानी द्रौपदी उन्हें नित्य प्रति गायत्री का जप करती हुई, अन्न को तपाती थी और उस अन्न को अपने बाबा पितामह भीष्म को प्रदान करती थी। उनको यह स्वतः भोज्य कराती थी। क्योंकि वह उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे।

एक समय वह उपदेश दे रहे थे कि मानव को इस ब्रह्म याग में रमण करना चाहिए, यह ब्रह्मयाग ही एक महान् याग कहलाता है। हम काली मां मानों, देवी के उस स्वरूप को जानने वाले बने जो अष्टभुजाओं वाली है। आठों भुजाओं में कोई न कोई प्रतीक माना गया हैं किसी में शंख माना है, किसी में चक्र माना है किसी में स्वाति माना है, किसी में पदम् की प्रतिभा मानी है परन्तु देखो, किसी में गदा मानी है और त्रिशूल भी इसके भुजों में रहता है। मानों देखो, इस आभा में हमें रमण करना चाहिए और ब्रह्म की आभा में, ब्रह्म चिन्तन में रमण करना चाहिए। पितामह भीष्म यह उपदेश दे रहे थे। (पैतिसवाँ पुष्प, कलकत्ता, 28 सितम्बर, 1969)

द्वापर के काल में महाभारत का संग्राम समाप्त हो गया था और महाराजा युधिष्ठिर राजस्थली पर विराजमान हो गए। देवव्रत ब्रह्मचारी जो पाण्डवों के महापिता कहलाते थे, जो पितामह भीष्म के नाम से जाने जाते; वे वाणों की शैय्या पर विद्यमान है और उनका उपदेश हो रहा है। युधिष्ठिर द्रौपदी इत्यदि वहाँ आते हैं और उनका ब्रह्म का उपदेश प्रारम्भ रहता। वह उच्चारण करते रहते कि यह ब्रह्माण्ड क्या हे? यह उत्तरायण क्या है? यह ब्रह्म क्या है? संसार में सबसे महान् आश्चर्य जो मानव के जीवन में बना हुआ है, इस शरीर को त्यागना है, क्योंकि प्रत्येक मानव यह जानता है कि यह शरीर नश्वर है परन्तु जीवन पर्यन्त इससे बचने का प्रयास करता है। अन्तिम परिणाम यह

होता है कि शरीर से विच्छेद हो जाता है। शरीर से विच्छेद क्यों होता है? भीष्म जी कहते हैं कि हे द्रौपदी! जिस वस्तु का निर्माण होता है, उस वस्तु का विच्छेद अनिवार्य है। इसी प्रकार वे उच्चारण कर रहे थे, हे देवी! मानव को अपने जीवन में महान रहना चाहिए और तटस्थ रहना चाहिए। अपने कर्त्तव्यवाद में इतना पारंगत रहे कि उसके प्राण चले जाएँ परन्तु कर्त्तव्य को नहीं त्यागना चाहिए। कर्त्तव्यवाद में ही संसार निहित रहता है। प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ में संसार का निर्माण किया, परन्तु प्रत्येक लोक-लोकान्तर उसी के नियन्त्रण मे कार्य कर रहा है। कर्त्तव्य करना तो मानव का जन्मासिद्ध अधिकार है। माता के गर्भस्थल में परमाणुओं का जो मिलान होता है वही कर्त्तव्यवाद की एक वेदी है। वही कर्त्तव्यवाद इस ब्रह्माण्ड में हो रहा है।

जब भीष्म इन वाक्यों को प्रकट कर रहे थे तब महारानी द्रौपदी कहती है, महाराज! एक वाक्य मैं आपसे जानना चाहती हूँ कि जिस समय महाराजा दुर्योधन ने यह चाहा कि दुःशासन के द्वारा इस देवी को नग्न किया जाए तो उस सभा में आप, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि-आदि जो महान् बुद्धिमान थे, ब्रह्मवेत्ता कहलाते थे, सब उपस्थित थे। परन्तु उस सभा में मुझे नग्न कराने की भावना थी। जिस समय मुझे नग्न करने के लिए दुःशासन चलता है, तो माता गान्धारी ने उससे कहा ‘‘हे दुष्टचर! यह क्या कर रहा है तो उसका साहस नहीं बना

क्योंकि माता गान्धारी में पतिव्रता का बल था, प्रभाव था। पतिव्रता का जो धर्म होता है, कर्त्तव्य होता है वह महान है। जिस समय धृतराष्ट्र से गान्धारी का संस्कार हुआ था और उन्होंने विचारा कि मेरा पतिदेव संसार को दृष्टिपात् नहीं कर सकता, इसलिए माता गान्धारी ने भी अपने नेत्रों पर एक वस्त्र की पट्टी बांधकर अपने को पतिव्रत में परिणत कर लिया। जिससे वह संसार को दृष्टिपात् न कर सके। यह कैसा पतिव्रत धर्म था, कैसी महत्ता थी। उनका (गांधारी) तप इतना महान् था कि जब उसने अपना एक वाक्य प्रकट किया तो दुःशासन का यह साहस नहीं बन पाया कि द्रौपदी को नग्न किया जाए। परन्तु जब मुझे सभा में ले जाया गया, तो मैंने आपसे यह याचना की थी कि आप हमारे पूज्य हैं, महान् हैं, प्रबल हैं, और मुझे नग्न किया जा रहा है, मेरी रक्षा करों। तो उस समय किसी ने रक्षा नहीं की। उस समय आपका ब्रह्मज्ञान और तप कहाँ चला गया था? मृत्यु के समय हमें कर्त्तव्य का उपदेश दे रहे हैं।

दुःशासन जब मेरे वस्त्रों से मुझे नग्न करना चाहता था उस समय मैंने एक वाक्य कहा था कि हे दुःशासन! जिस माता के गर्भ से तुमने जन्म लिया है वह माता कितनी कर्त्तव्य-परायण है, वह कैसी महामना माता है, जो दूसरों के पुत्रों की रक्षा करती है, वह पतिव्रता कर्त्तव्य में कितनी पारायण है? किन्तु उसके गर्भ से जन्म लेने वाले इस राष्ट्र को कलंकित कर रहे है। जब मैंने इन वाक्यों को कहा था

तो तुम्हें प्रतीत होगा, वह मेरे वस्त्र, मेरे शरीर से दूर नहीं कर सका। उसमें इतना साहस नहीं हुआ कि उस भरी सभा में वह वस्त्रों को मेरे अंग से दूर कर सके। उस समय मेरा कोई सहायक नहीं था, सहायक केवल मेरे किसी जन्म का कोई तप था या इसी जन्म का कोई तप हो सकता है। जिससे उसका साहस नहीं हुआ। विदुषी कन्या को संसार में कोई नग्न नहीं कर सकता, मेरा यह दृढ़ संकल्प बन गया था, उसी संकल्प के आधार पर राज्य सभा मे मेरा एक आसन था। राष्ट्रीपता में सब अपने-अपने आसन पर विद्यमान थे और मैं भरी सभा में एक अबला विद्यमान थी जहाँ आप जैसे ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हों।

उस समय भीष्म व्याकुल हो गए और बोले हे पुत्री? 'उस समय मैं क्या कर सकता था?' द्रौपदी ने कहा 'आप सब कुछ कर सकते थे। आप राष्ट्र पिता थे, राष्ट्रपिता क्या नहीं कर सकता। उन्होंने कहा पुत्री! मैं क्या करता मैंने राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण किया था और वह राष्ट्रीय अन्न मेरी मनोभावनाओं में ओत-प्रोत था और उस अन्न को पान करके मेरी बुद्धि भ्रमित हो रही थी। अब अर्जुन के तीखे बाणों से मेरे शरीर से रक्त बह रहा है, जितना रक्त बह रहा है उतना विशुद्ध मेरा विचार बनता चला जा रहा है। हे देवी! मेरा विचार विशुद्ध बन गया है, महान् बन गया है; इसलिये मैं ब्रह्म की चर्चा कर रहा हूँ। जिस समय मैंने ब्रह्मज्ञान को पाया था उस समय मैंने अपने

कर्त्तव्य का पालन किया और पिता के लिए मैंने यह प्रतिज्ञा की कि संसार में संतान उत्पन्न नहीं करूँगा संस्कार नहीं कराऊँगा। उस समय मैं एक सूक्ष्म-सी कृषि करता था उसका अन्न ग्रहण करता था स्वयं कला कौशल कर अन्न पान करता बुद्धि का कार्य और योगाभ्यास किया करता था। उस समय मैंने ब्रह्मज्ञान को पाया वही ब्रह्म का ज्ञान ज्यों का त्यों बना रहा। परन्तु जब मैंने राष्ट्रीय अन्न का पान किया तो मेरी बुद्धि भ्रमित हो गयी पुत्री! अब मेरी बुद्धि फिर से सात्विक बन रही है। तुम्हारा जो अन्न है वह पवित्र है, उस अन्न में इतनी महान् शक्ति है कि वह मेरे विचारों को पवित्र बना रही है। हे देवी! मैं अपने शरीर को त्यागूँगा, परन्तु उस समय त्यागूँगा जब यह सूर्य उत्तरायण हो जायगा।

पूर्णिमा के पश्चात् प्रतिपदा, द्वितीयपदा, तृतीयपदा आती है और एक समय अमावस्या आ जाती है जब प्रकाश का एक अंकुर भी नहीं रह पाता, वह प्रकाश से शून्य हो जाता है। हे मानव! यदि द्वितीयपदा, तृतीयपदा, चतुर्थपदा से अन्धकार में चला जाए, अज्ञान आ जाए तो तुझे निराशा नहीं होनी चाहिए क्योंकि वह तेरी मृत्यु का प्रतीक माना गया है और यदि अमावस्या से ले करके द्वितीयपदा, चतुर्थपदा प्रकाश का आता रहे, प्रकाश से मानो पूर्णिमा दिवस, सोम का पान करने लगे तो तेरे में अभिमान नहीं आना चाहिए क्योंकि वही अभिमान तुझे मृत्यु के क्षेत्र में ले जाएगा।

आज का विचार-विनिमय क्या कि उस समय द्रौपदी ने पितामह भीष्म से कहा कि हे पितर! मैं यह जानना चाहती हूँ कि ब्रह्मचरिष्यामि अस्तं सम्हे, मानो ब्रह्मचर्य क्या है? उन्होंने कहा हे पुत्री! ब्रह्मचर्य शब्द ब्रह्म को चरने से बना है कि कोई भी मानव ब्रह्म को चरना चाहता है तो वह वीर्यवान् हो करके ब्रह्म की आभा को चर सकता है इसीलिए उसे ब्रह्मचरिष्यामि कहा गया है, उसे ब्रह्मचारी कहा जाता है। हमारे यहाँ ब्रह्मचर्य के परमाणुओं की ऊर्ध्वागति बनाने के लिए ऋषि-मुनि प्राणायाम करते रहते हैं, मेरी प्यारी माताएँ प्राणायाम करती रहती हैं, क्योंकि देवता उसी काल में बनता है जब उसकी गति ऊर्ध्वा में रमण करने लगती है। ऊँचा चिन्तन हो, प्राणायाम की गति ऊँची हो तो ऊर्ध्वा देवव्रत को प्राप्त होता रहता है। मेरे प्यारे! उस समय महारानी द्रौपदी ने पुनः कहा कि "भगवन्! मैं जानना चाहती हूँ कि उस समय तुम्हारा यह ब्रह्मचरिष्यामि कहाँ गया था? जब सभा में आप विराजमान है और दुशासन मुझे नग्न करना चाहता था? उस समय तुम्हारा ज्ञान और ब्रह्मज्ञान कहाँ गया था?

उस समय भीष्म कहते है, हे पुत्री! तुम यह वाक्य न उच्चारण करो क्योंकि उस समय जब सभा में तुम्हें नग्न किया जा रहा था तो मैं राष्ट्रीय बंधन में बन्धित हो रहा था। मैंने राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण किया था, पापाचार का जो अन्न मैंने ग्रहण किया था, वह रक्त मेरे विचारों में, मेरी बुद्धि में रमण कर रहा था। उस रक्त ने मेरी बुद्धि

को भ्रमित कर दिया था और मेरी बुद्धि कार्य नहीं कर पाई। इसलिए मैंने संकल्प किया है कि जब तक मेरा जीवन उत्तरायण नहीं हो जायेगा तब तक मुझे इस शरीर को त्यागना नहीं है। जिस समय में बाल्यकाल में परशुराम जी के द्वार अध्ययन करता था, वह मेरे आचार्य थे, तो उन्होंने मुझे इन दोनों पक्षों की चर्चाएं की थी। मैं उत्तरायण और दक्षिणायन दोनों पक्षों को जानता हूँ। उत्तरायण करते हैं प्रकाश को और जिसे दक्षिणायण कहते हैं वह अन्धकार है। मैं अपने शरीर को अन्धकार में नहीं त्यागूँगा। अन्धकार किसे कहते हैं? हे पुत्री! तुम्हें प्रतीत है जिस समय यह राज्य संग्राम हो रहा था उस समय मेरा यह शरीर बाणों की शैय्या पर स्थिर हो गया वह मेरे जीवन का मानो दक्षिणायन पक्ष कहलाता था क्योंकि मेरे में अभिमान की मात्रा भी थी, मेरे में अशुद्ध प्रतिज्ञा भी थी। मेरे में से जो रक्त बह रहा है मानों मेरी अशुद्ध प्रतिज्ञाओं का हनन हो रहा है। समय आएगा तब मेरा जीवन प्रकाश में आ जायेगा। प्रकाश में आत्मा, उदान प्राण और चित्त को ले करके जब यह शरीर त्यागा जायेगा तो मैं देवलोक को प्राप्त हो जाऊँगा, देवताओं के लोक मैं प्रवेश कर जाऊँगा। महारानी द्रौपदी इन वाक्यों का श्रवण करके शांत हो गई और कहा, "धन्य है, पितर! आपका जीवन तो धन्य है। आपके जीवन में पितरता आई है और मुझे बहुत प्रभावित कर रही है, भगवन्! अब हमारे लिए कोई उपदेश दीजिए जिससे हम अपने

जीवन को ऊँचा बनाएँ। उन्होंने कहा, हे पुत्री! तुम्हारे लिए एक ही उपदेश है कि तुम भी अपने जीवन को उत्तरायण बना करके स्वेच्छा से शरीर को त्याग देना क्योंकि संसार में मुझे कोई सार प्रतीत नहीं हुआ है, मैंने अपने पिता से ले करके पौत्र तक इस संसार की आभा को दृष्टिपात् किया है। मुझे कोई तथ्य प्रतीत नहीं हुआ है, केवल यह ही है कि मानव को देवता बनना है, मानव को देवता बनना चाहिए।

मुनिवरो! देखो, मैं कृष्ण-पक्ष और शुक्ल-पक्ष दोनों की विवेचना करने के लिए आया हूँ, वह विवेचना क्या है? मेरे प्यारे! जिसमें काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि दैत्य मानव के जीवन में खिलवाड़ करते रहते हैं उस काल तक मानव का जीवन दक्षिणायन कहलाया जाता है और जिस काल में देवी-देवता बनने की प्रेरणा रहती है तो मेरे हृदय में देवत्व रहता है तो मेरा जीवन दर्शनों से गुथा हुआ और मिलान से गुथा हुआ सा प्रतीत हो करके उसे आत्म-ज्ञान है, उसी आत्म-ज्ञान को प्राप्त होता हुआ मानव अपने शरीर को त्यागता रहता है।

मुझे स्मरण आता रहता है कि वह द्रौपदी से बोले तुम्हें यह प्रतीत है कि जब माता मदालसा अपने शरीर को त्यागने लगी तो माता मदालसा ने यह विचारा था कि मैं अपने गर्भस्थल से महान पुत्रों को जन्म देना चाहती हूँ। उन्होंने अपने गर्भस्थल में देवी सम्पदा का पूजन करके उन्होंने आत्म-ज्ञान अपने गर्भस्थल में प्रवेश करा

दिया था, लोरियों का उन्हें पान कराती और उन्हें ब्रह्म का उपदेश देती रहती। जब यह ब्रह्म का उपदेश पूर्ण हो गया तो पांच वर्ष के पश्चात् वह बालक ब्रह्मवेत्ता बन करके, माता के चरणों को छू करके गृह को त्याग रहे हैं, माता दैवी सम्पदा का पूजन कर रही थी, ब्रह्मवेत्ता बन करके पुत्रों को ब्रह्मवेत्ता बना रही है। उसका यह हृदयग्राही बन गया था कि इस संसार में मुझे कोई तथ्य दृष्टिपात् नहीं आ रहा है। मेरे गर्भस्थल से उत्पन्न होने वाला पुत्र ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए, ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाला हो और दर्शनों की उड़ान उड़ने वाला हो और जब राजा ने यह कहा, 'देवतन्ब्रह्मे वृत्ताः' हे देवी! राष्ट्र का उद्धार कैसे होगा? राष्ट्र कैसे महान बनेगा तो वह कहती है, हे राजन! मैं एक सन्तान को जन्म दे सकती हूँ उसके पश्चात् मुझे सन्तान का अधिकर नहीं रहेगा। न मैं सन्तान को संस्कार दे सकूंगी। मेरे प्यारे! देखो, यह चतुर्थ बालक राज्य वंश को प्राप्त हुआ, राजस्वी बन गया। वह माता का संकल्प था कि मुझे अपने जीवन को उत्तरायण बनाना है। वह बालक गायत्री माता की गोद में प्रवेश कर और गायत्री छन्दों के सहित पठन-पाठन, दर्शनों का अध्ययन करते। जब सूक्ष्म बालक बारह वर्ष का हो गया तो राजा को अपने समीप विद्यमान करके देवी बोली राजन्! अब मैं अपने शरीर को त्याग रही हूँ। वह बोल "हे देवी! तुम इस शरीर को क्यों त्याग रही हो?" उन्होंने कहा कि मैं इसलिए त्याग रही हूँ क्योंकि मेरे जीवन का

उत्तरायण आ गया है। मेरे जीवन में दक्षिणायन नहीं रहा हैं आपको प्रतीत है मैंने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया है। मैंने ब्रह्म में अपने को लीन होने के लिए ब्रह्मचरिष्यामि मानो ब्रह्म की आभा को प्राप्त किया है, अब मैं अपने शरीर को त्यागना चाहती हूँ। राजा ने कहा हे देवी! मेरा यह गृह शून्यता को प्राप्त हो जाएगा। उन्होंने कहा हे भगवन्! यह तो मेरी प्रतिज्ञा थी। मैंने जब आचार्य से और आप से यह कहा था कि पांँच वर्ष तक मेरे संरक्षण में बालक का पालन-पोषण, शिक्षा होनी चाहिए परन्तु आपने वाक्य को स्वीकार नहीं किया। मैं बारह वर्ष तक अपने जीवन को उत्तरायण बना करके अपने शरीर को त्यागना चाहती हूँ।

मुनिवरों! उस समय पितामह भीष्म कहते हैं देवी! उस माता मदालसा ने गायत्री की गोद में प्रवेश करके अपने शरीर से प्राणायाम किया और प्राण की गति के द्वारा उदान, आत्मा और चित्त, तीनों का समन्वय करके इस शरीर को उदान प्राण के द्वारा अन्त में त्याग दिया। त्याग देने के पश्चात् वह द्यौ लोक को प्राप्त हो गयी। उसे मोक्ष की प्राप्ति हो गयी। इसी प्रकार मानव का जीवन उत्तरायण में होना चाहिए। उत्तरायण किसे कहते है? आत्म ज्ञान का जब प्रकाश हो जाता है, आत्मा प्रकाशित हो जाती है। तब उसे ब्रह्म की आभा प्राप्त हो जाती है, वह दैवी सम्पदावादी बन जाती है। हे माँ! तू वैदिक सम्पदावादी बन करके शरीर को त्याग देती है और अपने गर्भ में

बालक को महान् बना देती है। तू कैसी पवित्र देवी है, तू कैसी महान है। मेरे प्यारे। तेरे विचार भी महान् पवित्र तम् होने चाहिए तो उस समय पितामह भीष्म कहते हैं देवी! जो मानव अपने जीवन को उत्तरायण बना लेता है, महान बना लेता है उसी को नाना प्रकार के लोक प्राप्त होते हैं। वह देवव्रत लोकों को प्राप्त होता रहता है।

आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है कि हम परमपिता की आराधना करते हुए, अपने जीवन को महान बनाते हुए माता वसुन्धरा की गोद में प्रवेश करते रहें। हमारे जीवन में श्रद्धा होनी चाहिए क्योंकि श्रद्धा ही तो दैवी सम्पदा लाती है। श्रद्धा ही तो अखण्ड देवी बन करके मानव के जीवन को सुन्दर बना देती है। मानव को पवित्र बना देती है, मननशील बना देती है। सरस्वती जब मानव के कंठ में विराजमान होती है तो मानव का कंठ सुशोभित हो जाता है। हे मां! तेरा जो कंठ है वह नाना आभूषणों से सुशोभित नहीं होता। कंठ सुशोभित होता है जब विद्या रूपी आभूषण मानव के समीप होते हैं और वह जो विद्या रूपी आभूषण है वहीं मानव को सुशोभित बना देता है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब चाक्राणी गार्गी और याज्ञवल्क्य मुनि महाराज दोनों का शास्त्रार्थ होता था। वह काल भी स्मरण आता रहता है जब चाक्राणी ब्रह्मचर्य काल में थी और सिंहराज उनके चरणों को छू कर नमस्कार करते थे। वहीं तो दैवी सम्पदा है जिससे हिंसक प्राणी भी देवता बन करे उनके

चरणों में ओत-प्रोत हो जाते हैं। (यज्ञ एवं औषधि विज्ञान, जोर बाग, 19 दिसम्बर, 1982)

८ राजसूय यज्ञ

युधिष्ठर का संकल्प

जब द्वापर के काल में इन्द्रप्रस्थ का निर्माण हुआ तो निर्माण के पश्चात् एक समय वहाँ पाण्डव पुत्र विराजमान थे, तो पाण्डव पुत्रों ने यह विचारा कि इन्द्रप्रस्थ में एक याग होना चाहिए। महाराजा युधिष्ठिर अपनी स्थली पर विद्यमान हैं प्रातःकाल का समय है, महाराजा कृपाचार्य और द्रोणाचार्य और ब्रह्मचारी व्रतकेतु (पितामह भीष्म जिनको कहा जाता है) राष्ट्रपिता के नामों से उनकी शब्दों में ध्वनियाँ होती रहती थीं और भगवान् कृष्ण और भी नाना बुद्धिमान जैसे महर्षि व्यास मुनि महाराज, यह सब अपनी-अपनी स्थली पर विद्यमान थे। प्रातःकालीन यह विचार आया, महाराजा युधिष्ठिर ने कहा कि हे भगवन्! आप सब याज्ञिक पुरुष हो, आप किन्हीं न किन्हीं रूपों में याग करते रहते हो। इस इन्द्रप्रस्थ में एक राजस्वी याग की मेरी इच्छा है, आप अपने-अपने विचारों को व्यक्त करें, यह होना चाहिए या नहीं।

इस पर महान् ब्रह्मयोगी भगवान् कृष्ण ने यह कहा कि तुम्हारे हृदय में राजन्! यह याग की प्रेरणा कहाँ से उत्पन्न हुई है? उन्हांने कहा कि यह याग की जो प्रेरणा है यह हमारे अन्तःकरण से उत्पन्न होती है, यह जो अन्तःकरण है यह भी एक प्रकार का याग है और वह बाह्ययाग की हमें प्रेरणा दे रहा है। उन्हें जब उत्तर प्राप्त हो गया,

तब उन्होंने कहा, यह जो राजस्वी याग होते हैं उन्हें वह राजा करते हें जो राजा इस संसार में, इस पृथ्वी मण्डल पर जितने राजा होते हैं, उन सब को जब विजय कर लेते हैं, चाहे वह अस्त्रो-षस्त्रों के द्वारा विजय होते हों, चाहे वह विचारों से विजयी होते हों, परन्तु उस काल में यह याग का आयोजन किया जाता है। राजसूय याग का यह क्रिया-कलाप है अथवा यह उसका कर्मकाण्ड है। उन्होंने कहा बहुत प्रिय भगवन्! कोई राजा ऐसा नहीं है इस पृथ्वी पर, जो यह स्वीकार न करे कि याग नहीं होना चाहिए, उनकी सदैव यही इच्छा है कि एक याग होना चाहिए। राजसूय याग में कोई ऐसा तत्त्व नहीं है। जब युधिष्ठिर ने यह वाक्य कहा तो भगवान् कृष्णा ने कहा, बोलो, हे पितामह भीष्म! उद्गीत गाओ, कि यह क्या कहते हैं तुम्हारे पौत्र, उन्हांने कहा पहले यह अपना जो एक पारिवारिक समूह जीवन है उनसे भी इस वाक् को हम स्वीकार करायें। देखो, दुर्योधन इत्यादि सभी इन्द्रप्रस्थ मे विराजमान थे, उन्होंने सबकी एक गोष्ठी प्रारम्भ की और उसमें महाराजा युधिष्ठिर ने कहा कि मेरी इच्छा ऐसी है कि हम एक याग करना चाहते हैं, राजेश्वरी याग होना चाहिए। दुर्योधन ने अपने कंठ मुख से उसकी सराहना की, सभी ने उसकी सराहना की कि हमें याग करना चाहिए, हमारा बहुत-सा वंश समाप्त हो गया है तब से हमारे यहाँ राजसूय याग नहीं हुआ। वैसे याग तो नित्य प्रति होते रहते हैं क्योंकि यह तो हमारी नित्यप्रति की जीवनचर्या का एक

स्रोत है, यह तो हमें प्रायः करना चाहिए। परन्तु राजेश्वरी याग होना है इससे हमें बड़ी प्रसन्नता है। यह वाक्य स्वीकार हो गया। कृपाचार्य जी ने और द्रोणाचार्य जी ने सभी ने मुनिवरो! देखो, अपने हृदय से सराहना की, कि यह विचार बहुत प्रिय है।

भगवान् कृष्ण ने भी इस वाक्य को स्वीकार कर लिया, परन्तु देखो, उन्होंने यह कहा कि हे युधिष्ठिर! इसमें कुछ बाधाएँ आ सकती है। किसी प्रकार की ''आव्राहवेदं सतिप्रहा'' तुम्हारे राजेश्वरी याग में कुछ क्रोधाग्नि भी जागरूक हो सकती है। तुम्हारे पाँचों विधाताओं में मग्न-विलग्नम् नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा 'बहुत प्रिय' उन्हांने महारानी द्रौपदी से यह कहा कि हमारे यहाँ राजेश्वरी याग होने वाला है, उन्होंने कहा प्रियतम, होना चाहिए। मुनिवरो! देखो, यह विचार होते ही उन्होंने निमन्त्रण देना प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि राजेश्वरी याग था, ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया, ऋषि-मुनियों को भी निमन्त्रण दिया। जब महर्षि वेद व्यास अपने आसन पर विराजमान थे, महाराजा युधिष्ठर वेद व्यास से बोले महाराज! हमारे यहाँ अब याग होना चाहिए, तुम्हारी सहमति चाहिए। उन्होंने कहा बहुत प्रिय, वेदों का उद्गीत गाने में भी मैं तत्पर हूँ, जिस प्रकार का भी वेदों का गान गाना हो मैं उसी प्रकार का गान अवश्य गाऊँगा, उसी प्रकार के गान में मेरी निष्ठा रहती है। तो मुनिवरो! देखो, यह सभी ने स्वीकार कर लिया। उसके पश्चात् राजा महाराजाओं को निमन्त्रित किया गया।

राजसूय याग में सब राजाओं का उनके निमन्त्रण के कथनानुसार इन्द्रप्रस्थ में आवास का कृति हो गया। वे नाना कृति भोजों में परिणत हो गए। तो सर्वत्र राजाओं के भिन्न-भिन्न कक्ष हैं और उसी प्रकार के कक्ष हैं जिस प्रकार का राजा हो। तो महाराजा दुर्योधन इत्यादि सब उनके स्वागतार्थ में लग गए, जब याग का साकल्य एकत्रित हो गया, और याग के साकल्य के एकत्रित हो जाने के पश्चात् यज्ञशाला का निर्माण हो गया। शिल्पकारों ने बड़ी प्रिय यज्ञशाला का निर्माण किया, जिसने भी यज्ञशाला को दृष्टिपात् किया वह उसे प्रिय प्रतीत हुई। इतनी प्रिय यज्ञशाला पुष्पों से सजी हुयी, देवताओं के चित्रों से सुसज्जित करके यज्ञशाला को सजातीय किया और "अग्निम् ब्रह्मा ब्रह्मवहे" नाना ब्राह्मण अपनी-अपनी स्थली पर विद्यमान हो गए। अब निर्वाचन का क्रिया-कलाप होने लगा।

याग हेतु निर्वाचन

सबसे प्रथम देखो, भगवान् कृष्णा से युधिष्ठिर ने कहा कि भगवन्! अब निर्वाचन होना चाहिए, यज्ञशाला का निर्वाचन हो और देखो, बाह्य जो सेवा हो उसका भी निर्वाचन होना चाहिए। तो ऐसा कुछ मुझे प्रतीत है कि जितना कोष था, दक्षिणा इत्यादि का तो दुर्योधन को उसके स्वामीत्व का निर्वाचन किया गया। अश्वभार के यहित आए राजाओं के निमन्त्रण उनके आहार का प्रबन्ध है, आहार की पवित्रता है वह दुर्योधन के ही रूप में परिणत की गयी। तो

निर्वाचन हो गया। अब युधिष्ठिर से कहा कि महाराज! आप तो इस यज्ञशाला के यजमान् हैं, आप यज्ञशाला में विराजिए, वह अपनी यज्ञशाला में विराजमान हो गए और नकुल, सहदेव को कहा कि तुम अश्वों की सेवा करो और भीम से कहा कि तुम इनके अस्त्रों-षस्त्रों को निश्चित स्थान पर नियुक्त करो और अर्जुन को कहा गया कि भगवन्! तुम इनकी सेवा में ''अन्नं ब्रहे'' भोजनालय में भोजन को संचार रूप से, क्रिया में लाने का प्रयास करो। सब का निर्वाचन हो गया, निर्वाचन हो करके ब्राह्मणों का निर्वाचन किया, व्यास जी का उस याग के ब्रह्मा में निर्वाचन हुआ और महर्षि जैमिनी और महर्षि श्वेत तुन्डुक ऋषि महाराजा दोनों उस याग के उद्गाता बने और ''उद्गातं ब्रहे सम्भवा'' कृपाचार्य जी उस याग के अर्ध्वयु बन करके याग को सुचारू रूप से संचालित करने लगे। गुरु द्रोणाचार्य उस याग के पुरोहित नियुक्त किए गए। याग सुचारू रूप से प्रारम्भ हो गया और यजमान के रूप में महाराजा युधिष्ठिर को निर्वाचन किया गया। जब यजमान का निर्वाचन हुआ तो भगवान् कृष्ण को युधिष्ठिर ने यह कहा भगवन्! अब सबका निर्वाचन हो गया है, तो आप का क्या क्रिया-कलाप होगा, आप का भी तो कोई आसन होना चाहिए। भगवान् कृष्ण ने उस समय यह कहा कि हे युधिष्ठिर! मेरा तो एक ही क्रिया-कलाप रहा है बाल्यकाल से, अब तक, कि जो बाहर से आगन्तुक आते हैं उन आगन्तुकों के चरणों को जल से स्पर्श करके उस जल

का आचमन करूँगा। भगवान् कृष्ण ने जब यह कहा तो युधिष्ठिर अपने में बहुत ''नम्रं वृति आव्रहे'' आश्चर्य करने लगे। उन्होंने कहा नहीं भगवन्! उन्होंने कहा 'नहीं, ऐसा ही होगा।'

राजसूय याग

राजसूय याग का सुचारू रूप से क्रिया-कलाप प्रारम्भ हो गया। जब याग का प्रारम्भ हुआ तो मुनिवरो! देखो, प्रारम्भ में यज्ञ में आहुति देने और यजमान् के यज्ञ को सफल बनाने के लिए अपने में देखो, ''यज्ञं ब्रह्मा'' वेद का उद्गीत गाने वाले महाराज वेदव्यास ने कहा, आओ, हे होतागणों तुम आओ और मेरे यजमान् की वाणी को पवित्र करो क्योंकि वाणी ही उद्गाता है, वाणी ही ब्रह्मा है, वाणी ही अन्तरिक्ष में जाती है और वाणी ही द्यौलोक में जाती है। यह वाणी पवित्र होनी चाहिए, वाणी ही उद्गीत गाने वाली है। वेद व्यास ने यह प्रार्थना की, तो सब अपनी-अपनी स्थलियों पर वेद का यशोगान गाने लगे, जब वेदों का यशोगान गाने लगे तो कहीं से भ्रमण करते हुए महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज अपने कुछ शिष्यों के सहित यज्ञशाला में पधारे। तो वहाँ एक प्रसंग ऋषि के समीप आया, जैसे उन्होंने कुछ विराम दिया तो वेद व्यास से ऋर्षि विभाण्डक ने यह कहा कि महाराज मैं यह चाहता हूँ कि यह जो यज्ञ आपका प्रारम्भ हो रहा है इसमें जो वेदों का उद्गान गाया जा रहा है, वेद मंत्रों के उच्चारण करने का इस याग से क्या समन्वय है? उन्होंने कहा कि याग से तो

वेद के मन्त्रों का समन्वय रहता है, क्योंकि संसार का जितना भी देवत्ववाद है वह सर्वत्र वेदों में निहित रहता है, कहीं इन्द्र के समबन्ध में कहीं और देवताओं के सम्बन्ध में देखा, जितने भी सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान हैं, आध्यात्मिकवाद है, जितना भी विज्ञान आभाओं में रत हो रहा है एक-एक वेद मन्त्र उसका उद्गीत गाता रहता है, इसीलिए मैं वेदों का उद्गीत गाने के लिए तत्पर हो रहा हूँ। तो वह ऋषिवर मौन हो गए और विभाण्डक मुनि अपने शिष्यों के सहित यज्ञशाला में विद्यमान हो गए। कुछ समय के पश्चात् ''ब्रह्मणा व्रत्ते देवाः'' कहीं-कहीं मध्यम् ''ब्रह्मा लोकां हिरण्यं वृथा'' याग का प्रारम्भ होता रहा, याग की प्रतिक्रिया में एक श्रोत्रिय आभा में समाज रत होता रहा। क्योंकि यजमान का आहार लवण युक्त है और ब्राह्मणजनों का आहार भी लवण युक्त है, अतः सात्विक पदार्थ और सात्विक विचार रखना उद्गीत गाने वालों के लिए बहुत अनिवार्य है। तो मुनिवरो! देखो, इस प्रकार उन्होंने अपनी आभा अप्रतों में नियुक्त की।

याग से हमारा परम्परागतों से संगतिकरण रहा है। परम्परा क्या, ऋषि-मुनियों का एक यह व्रत है, सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक, यह एक याग हमारे यहाँ एक आत्मीय क्रिया-कलाप कहा जाता है जिससे राष्ट्र और समाज, वायुमण्डल, अपने में पवि बनता है राष्ट्र की राष्ट्रीयता भी इसी से उद्बुद्ध होती रहती है। हमारे यहाँ एक राजसूय याग ही नहीं होते नाना प्रकार के याग राष्ट्रों

में होते रहते हैं। देखो, जैसे यह राजश्री याग हे यहाँ राजश्री याग में राजा के यहाँ यज्ञशाला में एक निर्वाचन होता है यह राजश्री याग का एक क्रिया-कलाप माना गया है। अश्वमेघ याग में प्रजाओं का एक प्रतिनिधि होता है और उस प्रतिनिधि का देवत्व ब्राह्मण स्थली पर विराजमान हो करके निर्वाचन करते हैं। उसके पश्चात् देखो, वह जो अजामेध याग है, अजामेध याग में याग के पश्चात् किसी वीर का निर्वाचन करते हैं क्योंकि जिससे वह ''अजामेध'' वह अजा को प्राप्त होने वाला हो वह विजयवेत्ता बन जाए। ऐसा हमारे साहित्यों में हमारे यहाँ वैदिक मन्त्रार्थों में भी इस प्रकार की प्रक्रिया आती रही हैं। परन्तु हमारे यहाँ और भी नाना प्रकार के यागों का चयन परम्परागतों से एक विचित्रता में माना गया है।

यह याग प्रारम्भ रहा, इस याग का मुझे कुछ ऐसा स्मरण है कि इक्तीस दिवस तक यह याग होता रहा। इक्तीस दिवस के पश्चात् वह पूर्णता को प्राप्त हो गया। जब उस याग का कर्मकाण्ड सम्पन्न हुआ तो सम्पन्न होने के पश्चात् मुनिवरो! देखो, राजश्री याग में किसी एक महापुरुष का निर्वाचन होता है, तो वहाँ जब निर्वाचन का प्रसंग आया तो ब्राह्मणों से कहा, कि किसका निर्वाचन होना चाहिए? उन्होंने कहा युधिष्ठिर आप निर्णय कर सकते हैं, उन्होंने कृपाचार्य और द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म इत्यादि सबको एकत्रित किया। जब वह सब विराजमान हो गए तो उन्होंने कहा कि महाराज राजश्री याग

सम्पन्नता के आँगन में पहुँच गया है, अब एक महापुरुष का निर्वाचन होना है। राजश्री याग में ऐसा कौन पुरुष है, जो इन राजाओं में से प्राप्त किया जाए। सब राजा यज्ञशाला में विद्यमान हैं, जब निर्वाचन का प्रसंग आया तो निर्वाचन में पितामह भीष्म ने कहा, ''मेरे विचार में इस समय यह आता है, और वह तुम्हारे विचार में भी आ जाएगा। इस समय जितने राजा हैं इस पृथ्वी पर, उनमें सबसे श्रेष्ठ क्रिया-कलाप जो है वह भगवान् कृष्णा का है, इसलिए इनका निर्वाचन होना चाहिए।'' जब वह वाक्य आया, तो सब राजा शांत हो गए, हर्ष-ध्वनि करने लगे और राजाओं ने कहा 'बहुत प्रिय'। शिशुपाल भी उस यज्ञशाला में विद्यमान था।

तब शिशुपाल अपनी स्थली से उठे और उन्होंने कहा हे युधिष्ठिर! तुम्हारा याग सम्पन्न हुआ है यह बहुत प्रिय है। मुझे महान् प्रसन्नता है क्योंकि राजश्री याग हुआ है, ऐसे याग राजाओं के यहाँ होने चाहिए, परन्तु यह जो तुम कृष्णा का निर्वाचन कर रहे हो, यह प्रिय नहीं है। तुम्हारे यहाँ पितामह भीष्म, द्रोणा जैसे और भी राजा हैं, यह तुम्हारे महापुरुष हैं इनका निर्वाचन होना चाहिए, इसका (श्रीकृष्णा) निर्वाचन नहीं होना चाहिए। मैं सदैव इसके विरोध में रहता हूँ। महाराजा युधिष्ठिर ने कहा यह तो मैंने शिशुपाल स्वीकार कर लिया, परन्तु जो व्यक्तिगत अपना विवाद रहता है उससे देखो, जो सामूहिक क्रिया-कलाप होते हैं, उनसे उनका कोई समन्वय नहीं रहना

चाहिए। तुम्हारा हृदय इनसे कुंठित हो रहा है, यह मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु देखो, यह सामूहिक समाज है, सामूहिक जो जगत् होता है उसमें व्यक्तित्व, द्वेष का स्थान नहीं होना चाहिए। अपनी अन्तरात्मा की उस वाणी में घृणात्मक विचार नहीं बनाने चाहिए। जब कि तुम घृणात्मक विचार बनाते हो, यह प्रिय नहीं है। महाराजा शिशुपाल ने जब यह वाक्य श्रवण किया तो शिशुपाल ने कहा कि भगवन्! सदैव मेरी अन्तरात्मा में इसके प्रति घृणा है। तो उन्होंने कहा, घृणा यहाँ स्वीकार नहीं की जाएगी, तुम्हारे घृणात्मक वाक्यों को नहीं स्वीकार किया जाएगा। तो शिशुपाल मौन हो गए, मौन हो करके उन्होंने पितामह भीष्म से भी यही वाक्य कहा तो उन्होंने कहा, ''सम्भवा लोकाम्'' यह विचार मैं किसी अन्य काल में प्रकट करूँगा, यह संघर्ष का एक विचार है। परन्तु देखो, विचार केवल यह है कि हमारे यहाँ राजश्री यागों के कर्मकांड में बड़ी विचित्रता रहती है और विचित्रता यही रहती है कि उनमें निर्वाचन इसलिए होती है कि राष्ट्र मे एक निधिपति ऐसा होना चाहिए जिससे राष्ट्र में शांति बनी रहे और मानवों के हृदयों में पवित्रता बनी रहे और मानव के हृदय में याग के प्रति एक भावना बनी रहे। उनका हृदय विचित्र बना रहे।

(चौवनवाँ पुष्प, बरनावा, 1 नवम्बर, 1968)

महर्षि विभाण्डक और महर्षि श्रृंगी को निमन्त्रण

महाराजा युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में एक याग की रचना की थी।

उस याग की रचना करते हुए उन्होंने अपने को बहुत आकृतियों में रमण कराया था।

जिस समय याग प्रारम्भ हुआ, संगतिकरण हुआ याग के उद्घोष की चर्चाएँ जैसे ही सम्पन्न हुई तो बेटा! सम्पन्न होने के पश्चात् एक शंख ध्वनि होती है, उस ध्वनि में मानव अपने में शून्यता को प्राप्त हो जाता है और वह ध्वनि उस रूप में नहीं हुई, जिस ध्वनि से वह उद्घोष होने वाला था। तो महाराजा युधिष्ठिर भगवान् कृष्ण के समीप पहुँचे। भगवान् कृष्ण से बोले, महाराज! मेरा याग तो सम्पन्न हो गया है, परन्तु वह जो शंख ध्वनि होनी थी, वह नहीं हुई। ध्वनि न होने के कारण मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा याग सम्पन्न नहीं हुआ है। मेरे याग का प्रियता में उद्घोष नहीं हुआ है। भगवान् कृष्ण ने कहा, यह तो यथार्थ है, परन्तु मेरे विचार में ऐसा आता है कि महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज अपने में शान्त मुद्रा मे ंविद्यमान है और महर्षि विभाण्डक के समीप कुछ प्रतिभाषित ऋषि भी हैं। तुम्हारा जो याग है, उसका उद्घोष, शंख ध्वनि महापुरुषों को प्रिय न हुई, क्योंकि तुमने महापुरुषों को निमन्त्रित नहीं किया। महर्षि विभाण्डक, पावेश्वत ऋषि को तुमने निमन्त्रित नहीं किया। इसके मूल में क्या था? युधिष्ठिर ने कहा, प्रभु! इसके मूल में यह था कि यह राष्ट्रीय यज्ञ था, जिनते भी संसार के राजा है, मैंने सबको सदा प्रसन्न किया है, किसी को अपने प्रभाव से, किसी को अपने विचारों से, किसी को ईश्वरीय

याग का उद्घोष करके मैंने प्रसन्नता में लाने का प्रयास किया है। तो इसीलिए मैं आदरणीय आभा में ले जाना नहीं चाहता हूँ इसीलिए मैंने महर्षि विभाण्डक को निमन्त्रित नहीं किया क्योंकि उनके आश्रम में महर्षि श्रृंगी जी रहते हैं और दोनों ऋषि वाजपेयी याग के ऊपर विवेचना करते रहते हैं। वह अग्निष्टोम याग की चर्चा करते रहते हैं, कहीं वह अश्वमेघ याग में रत रहते है कहीं वह वृष्टि याग की विवेचना करते रहते हैं। इसीलिए मैंने इन्हें निमन्त्रित नहीं किया। भगवान् कृष्ण ने यह कहा कि तुम्हें दोनों ऋषियें को निमन्त्रण दे करके उन्हें याग में लाना चाहिए और याग में तुम्हारी वह जो शंख ध्वनि है अथवा उद्घोष वह उसी काल में हो सकेगा। जब तक उनका स्वागत न हो जाए वह शंख ध्वनि नहीं हो सकती।

युधिष्ठिर महाराज ने अप्रतम देवः महाराजा भीम को लेकर के वहाँ से गमन किया। नकुल, सहदेव भी उनके साथ भ्रमण करते रहे। महाराजा युधिष्ठिर भगवान् कृष्ण से बोले, प्रभु! आप महान् हैं, इस समय आपका भी हमारे साथ रहना अनिवार्य है। भगवान् कृष्ण ने कहा जाओ, तुम्हीं उनको निमन्त्रित करो। उन्होंने कहा प्रभु! आप इस याग के अधिपति हैं, आपका गमन करना बहुत अनिवार्य है। भगवान् कृष्ण ने कहा; मैं तुम्हारे विचारों से सहमत हूँ। परन्तु मैं उन ऋषियों के समीप नहीं जा सकूँगा। युधिष्ठिर ने जब यह कहा कि इसके मूल में क्या है? उन्होंने कहा कि मुझे प्रथम उन्हें निमन्त्रण देना चाहिए

था। उन्होंने भगवान् कृष्णा को त्याग दिया और वहाँ से गमन करते हुए वह कजली वनों में जा पहुँचे। कजली वनों में दोनों ऋषियों का विचार विनिमय हो रहा था कि यह जो वाजपेयी याग है, यह क्या है? इस याग को कौन करता है? विभाण्डक मुनि ने यह कहा कि वाजपेयी याग करने का हमारे यहाँ राजा को अधिकार है। क्योंकि राजा उसकाल में वाजपेयी याग करता हैं, जिस काल में राजा के राज्य में जो कृषक है वह शून्यता को प्राप्त हो जाता है। वह जो कृषक है वह आलस्य प्रमाद में रहता है, वह भूमि के गर्भ में बीज की स्थापना न करता हुआ आलस्य में रहता है। उस समय राजा का कर्त्तव्य है कि वह वाजपेयी याग करे और वह याग में ऐसे साकल्य को प्रदान करे और यजमान को ऐसेविचार देने चाहिए जिस साकल्य और विचार को ले करके वायु-मण्डल पवित्र हो जाए और वायुमण्डल पवित्र होने से व्रतासुर की उद्घोषता होने लगे, व्रतासुर से जब मेघों की वृष्टि हो तो उस समय कृषक पवित्र बने।

उनका विचार-विनिमय हो रहा था और वह चारों नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर और भीम शान्त मुद्रा में विद्यमान थे और यह विचार रहे थे कि यह किस काल में अपने वक्तव्य को शान्त करें और हम इन्हें निमन्त्रित करें। परन्तु उनका विचार ऐसा विचारणीय था कि वह अपने चिन्तन में मगन थे। महर्षि विभाण्डक ने श्रृंगी ऋषि से यह कहा कि महाराज! तुम्हें ये प्रतीत होगा कि एक समय महाराजा जनक के

यहाँ कृषक निष्क्रिय बन गए थे तो उन्होंने स्वर्ण के एक हल का निर्माण किया और उसमें गौ के बछड़ों को ले करके वह अपनी भूमि में अपना क्रिया-कलाप करने लगे। तो उस समय कृषकों ने यह विचारा कि तुम निष्क्रय वन गए हो। उस समय राजा जनक के उच्चारण करते ही सर्वत्र कृषक जागरूक हो गये। जिससे राज्य सम्पन्न बन गया, अन्न से परिपक्व बन गया। माता वसुन्धरा के गर्भ में बेटा! कौन-सा ऐसा पदार्थ है जो माता वसुन्धरा नहीं दे सकती? जैसे माता का प्रिय पुत्र होता है तो माता उसे लोरियों का आलिंगन कराती हुई अपने कण्ठ में धारण कराती हुई अपने बालक की क्षुधा को शान्त कर देती है। इसी प्रकार वह जो ममत्व को धारण करने वाली वसुन्धरा है, इस वसुन्धरा के गर्भ में नाना पदार्थ विद्यमान हैं। नाना प्रकार की आभाएँ विद्यमान रहती है। यह माता क्या नहीं दे सकती इस संसार को? ममत्व को धारण करने वाली, हे वसुन्धरा! तू जैसे ही पुत्र का उद्घोष होता है उसके साथ ही उसे शान्त कर देती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ राजा जनक ने वाजपेयी याग किया था। वाजपेयी याग का अभिप्राय क्या कि वैदिक ध्वनियाँ हो रही है, और साकल्य का सुगन्ध परमाणु-परमाणु को भेदन कर रहा है, वह अग्नि उन परमाणुओं का भेदन कराती हुई उन परमाणुओं को वायु में प्रवेश करा देती है। दोनों ऋषियों की परस्पर यह चर्चा हो रही थी।

जब वह शान्त हुए तो महाराजा युधिष्ठिर ने कहा, हे प्रभु! मैंने

आपकी साहित्यिक चर्चाओं को श्रवण किया है। यागों का चयन भी मैंने श्रवण किया है। प्रभु! हमारी इच्छा यह है कि हमने इन्द्रप्रस्थ में एक याग किया है। हम उस याग में आपको निमन्त्रित करने आए हैं। याग तो सम्पन्न हो गया है परन्तु आपका आशीर्वाद और चाहते हैं। महर्षि श्रृंगी ने कहा यह वाक्य तो तुम्हारा यथार्थ है परन्तु महापुरुषों को, याज्ञिक पुरुषों को प्रारम्भ में ही निमन्त्रित करना चाहिए, यदि प्रारम्भ में निमंत्रित नहीं करते हो तो पश्चात् में नियन्त्रित करने का कोई मूल्य नहीं रहता। महाराजा युधिष्ठिर बोले हे प्रभु! यह जो राष्ट्रीय भाव होता है, राष्ट्रीय विचार होता है, इसमें मानव की स्मरण शक्ति का ह्रस भी हो जाता है। प्रभु! हमारी बुद्धि का, स्मरण शक्ति का ह्रस हो गया था। अब हम आपको निमन्त्रण देने आए हैं। आप हमारे याग में चल करके आशीर्वाद दीजिए। महर्षि विभाण्डक ने कहा बोलो, तुम क्या चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु! जैसी आपकी इच्छा हो। तो मुनिवरो! दोनों ऋषियों ने वहाँ से गमन किया। क्योंकि ऋषियों का जो हृदय होता है वह उदार होता है। जैसे माता का हृदय पुत्र के लिए उदार होता है, जैसे भक्त और भगवान् प्रभु का हृदय व्यापकता में रत रहता है। इसी प्रकार जो तपस्वी होते हैं, गायत्राणी छन्दों का पठन-पाठन करते हैं, जो अपने में महत्ता की घोषणा करते रहते हैं उनका हृदय भी प्रायः उदार होता है। उनके हृदय में उदारता की प्रतिभा होती है।

तो मेरे प्यारे! दोनों ऋषि वहाँ से गमन करते हुए अपने में हर्षित होते हुए, वह भ्रमण करते हुए इन्द्रप्रस्थ में आ गए। इन्द्रप्रस्थ में आ करके जहाँ याग की रचना हुई थी याग में जहाँ ब्रह्म-भोज हो रहा था ब्रह्म-भोज में जा कर दोनों ऋषि अपने में प्रति आकृत हो गए। ब्रह्म-भोज का कुछ अन्न उन्होंने पान किया, जैसे उन्होंने अन्न का पान किया वह घोषणा हो गई वह शंख ध्वनि हो गई जिस ध्वनि के लिए वह याग में प्रतिष्ठित होना चाहते थे। मुझे स्मरण आता रहता है वह शंख ध्वनि होने लगी, जैसे शंख ध्वनि हुई तो मुनिवरो! भगवान् कृष्ण प्रसन्न हो गए। भगवान् कृष्ण ऋषि-मुनियों के द्वार पर जा करके उनसे भिन्न-भिन्न प्रकार की वार्ताएँ प्रकट करने लगे। जब वार्ताएँ प्रकट होने लगीं तो महर्षि विभाण्डक ने कहा हे प्रभु! आप को तो हमने श्रवण किया है आप तो इन यागों के क्रिया-कलापों मे रत रहे हैं। आप तो इन यागों में अध्यक्षवत् प्राप्त हुए हैं। उन्होंने कहा प्रभु! यह आपकी ही महिमा है। आप ही जैसे पुरुषों ने मुझे जिस पद की नियुक्ति कराई मैंने उसे ग्रहण किया है, दायित्व को ग्रहण करना यह मानव का कर्त्तव्य है। क्योंकि मानव अपने में अपनत्व को प्राप्त होता हुआ प्रभु को प्राप्त होता है। भगवान् कृष्ण से उनकी विवेचना होने लगी। उन्होंने कहा यह याग तुमने कैसे कराया है? तुम किस कार्य के अध्यक्ष बने हो? उन्होंने कहा प्रभु! मैंने इस याग की अध्यक्षता इसीलिए की है क्योंकि याग एक शुभ कर्म है। देव-पूजा में

आता है। देवताओं का पूजन है जितने भी जड़ अथवा चेतन्य देवता है उनकी पूजा होती रहती है उस पूजा की मैंने अध्यक्षता की है। उस समय महर्षि विभाण्डक और महर्षि श्रृंगी दोनों ने, एक प्रश्न किया, हे कृष्ण! तुमने इस यज्ञ की अध्यक्षता क्यों की है? उन्होंने कहा, यह मैंने इसलिए की है क्योंकि यह संसार संगतिकरण में परिणत रहता है।

संगतिकरण

मैं जब भी किसी काल में इसके ऊपर विचार-विनिमय प्रारम्भ करता हूँ तो मुझे यह संसार संगतिकरण में दृष्टिपात् आता है। उन्होंने कहा संगतिकरण से आपका क्या अभिप्राय है? भगवान् कृष्ण ने कहा कि संगतिकरण का यह अभिप्राय है कि एक संग विद्यमान हो करके मानव अपने विचारों का उद्घोष कर सके, अपने विचारों को व्यक्त कर सके और अपने विचारों को अग्नि के परिणत करता हुआ द्यौलोक को प्राप्त कराए। उन्होंने कहा यह तो वाक्य तुम्हारा यथार्थ है। हम यह जानना चाहते हैं कि संगतिकरण के ऊपर और कौन-सी प्रतिभा होती है? उन्होंने कहा महाराज! मुझे तो संसार का प्रत्येक कार्य संगतिकरण ही दृष्टिपात् आता है। भगवान् कृष्ण ने कहा मुझे स्मरण है मैंने उद्दालक गोत्रीय ऋषिओं का जीवन कहीं अध्ययन किया है। उनके अध्ययन से कुछ ऐसा प्रतीत हुआ है कि वह अपने विचारों में संगतिकरण करते रहते थे। उनके अध्ययन से मुझे ऐसा

प्रतीत हो रहा है कि जैसे प्रत्येक वस्तु को संगतिकरण से कटिबद्ध कर दिया हे। जैसे तारा-मण्डल है, लोक-लोकान्तर हैं, आत्मा-परमात्मा है, पति-पत्नी है, माता-पुत्र है, राजा-प्रजा है प्रत्येक प्राणी को एक-दूसरे से कटिबद्ध करके वह संगतिकरण दृष्टिपात् आता रहता है। पृथ्वी के परमाणुओं को, रज को ले करके जब जल से मन्थन किया जाता तो वह संगतिकरण कहलाता है। मैंने यह श्रवण किया है, उद्दालक गोत्र में एक श्वेतकेतु ऋषि हुए हैं, श्वेतकेतु ऋषि महाराज एक समय अपनी पत्नी से यह कहने लगे हे प्रिय! आओ, हम देव पूजा करेंगे। तो उनकी पत्नी और वह देव पूजा में संलग्न हो गए। देव पूजा के पश्चात् बोले कि आओ, अब हम संगतिकरण करेंगे। तो दोनों संगतिकरण में परिणत हो गए।

संगतिकरण का जो परिणाम हुआ वह पुत्र बना, क्योंकि माता-पिता जब संगतिकरण करते हैं, विचारों को सुगठित कर लेते हैं तो उनका गृह प्रकाश में आ जाता है। अन्धकार के आँगन से प्रकाश को प्राप्त हो जाता है। मेरे पुत्रों! भगवान् कृष्ण ने जब यह गाथा प्रकट करायी कि यह संसार संगतिकरण में आ रहा है, एक वैज्ञानिक अपनी स्थली पर विद्यमान हो करके परमाणुओं का मिलान कर रहा है। वह परमाणुओं को एक-दूसरे से पिरो रहा है तो वह संगतिकरण कर रहा है। जैसे माला का निर्माण करने वाला सूत्र और मनके दोनों का संगतिकरण कर लेता है तो वह माला बन जाती है। जैसे

परमपिता परमात्मा ने इस संसार का सृजन किया है, जड़ और चेतन दोनों का संगतिकरण हुआ तो सृष्टि की उत्पत्ति हो गई और तृतीय शब्द की रचना हो गयी। उस रचना का नाम ही मेरे प्यारे! सृष्टि कहलाती है। इसी प्रकार जैसे वैज्ञानिक अपनी विज्ञानशाला में विद्यमान हो करके परमाणुओं का संगतिकरण करता है अग्नि के परमाणुओं को लेता है, जल के परमाणुओं को लेता है और उसमें अग्नि की पुट लगा करके परमाणुओं का संगतिकरण हुआ तो यन्त्र की उत्पत्ति होती है नाना प्रकार की चित्रावालियों की उत्पत्तियाँ हो जाती हैं।

भगवान् कृष्ण ने एक समय कहा था "सूक्ष्म सा मेरा आसन है, एक समय मैं सन्ध्या के काल में विद्यमान था। मेरी देवी रुक्मिणी ने कहा हे भगवन्! आओ, आज परमाणुओं का हम संगतिकरण करना चाहते हैं, तो उन्होंने संगतिकरण के लिये मुझे प्रेरित किया। मैं उससे पूर्व संगतिकरण कर गया था। मैंने परमाणुओं को एकत्रित किया था और वह परमाणु कृति भाषित कहलाते थे। उन परमाणुओं को ले करके सूर्य के परमाणुओं से उनकी पुट लगाई, चन्द्रमा के परमाणुओं को ले करके उनको कृति भाषित बनाया। वह एक ऐसा यन्त्र बन गया उन परमाणुओं का जो दिवस को रात्रि बना देता है। तुम्हें स्मरण है मैंने उस यन्त्र का निर्माण किया है जो सूर्य के ऊपर आच्छादित हो जाता हैं। मेरी पत्नी ने संगतिकरण के लिए मुझे प्रेरित

किया। जिससे मैंने मन्त्रों का निर्माण किया।''

तो संगतिकरण का अभिप्राय केवल यह है कि यह एक-दूसरे का मिलान है, एक-दूसरे की प्रतिभाषिता है जैसे परमपिता परमात्मा का यह जगत् है जिसमें एक तरंग दूसरे में पिरोई हुई है। एक-दूसरे में पिरोई हुई होने के नाते यह जगत् संगतिकरण कहलाता है। तो ऋषि ने कहा यह याग है और याग के तीन स्तम्ब कहलाते हैं जैसे मानव के शरीर में रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण तीन गुण धारण हो करके यह शरीर क्रिया-कलाप कर रहा है। यह नाना प्रकार के व्यंजनों की उत्पत्ति कर रहा है। इसी प्रकार याग के तीन स्तम्ब माने जाते हैं। सबसे प्रथम देवपूजा उसके पश्चात् संगतिकरण और दानेषु यह तीन स्तम्ब कहलाते हैं यह सर्वत्र जगत् एक संगतिकरण में परिणत हो रहा है। मेरे पुत्रो! ब्रह्मास्त्र है, वरुणास्त्र है जितने भी अस्त्रों-षस्त्रों का निर्माण किया जाता है वह संगतिकरण कहलाता है। माता अपने में पुत्र वती बनती है तो वह भी संगतिकरण कहलाता है। संगतिकरण का अभिप्राय यह है कि हम समूह में विद्यमान हो जाएँ।

भगवान् कृष्ण ने यह कहा, महर्षि विभाण्डक और महर्षि श्रृंगी से कि यह संगतिकरण ही संसार का मूल कहलाता है। परमपिता परमात्मा ने भी जगत् को संगतिकरण में ला करके रचना की है। संगतिकरण से वैज्ञानिक मन्त्रों की रचना कर लेते हैं, माता अपनी प्रीतियों का संगतिकरण करके पुत्र को लोरियां का पान करा देती है।

राजा, प्रजा का संगतिकरण करके प्रजा और राष्ट्र को स्वर्ग बना देता है। ब्रह्मचारियों के समीप विद्यमान हो करके आचार्य अपने विचारों का संगतिकरण करके ब्रह्मचारियों को पवित्र बना देता है और उनको बुद्धियुक्त बना देता है। इसी प्रकार यज्ञशाला में विद्यमान हो करके उद्गीत गाने वाला उद्गाता उदगान गाता है तो परमाणुओं का संगतिकरण हो करके उसका छन्द बन जाता है और छन्द बन करके वहीं एक ध्वनि बन जाती है और वह ध्वनि राष्ट्र को और समाज को ऊँचा बना देती है।

शंख ध्वनि न होने का कारण

भगवान् कृष्णा ने यह वार्ता ऋषियों को प्रकट कराई। ऋषिवर, बोले, धन्य है। उस समय भगवान् कृष्णा ने एक वाक्य कहा ऋषियों से कि यहाँ इतना सुन्दर याग हुआ है और याग में जब तक तुम्हारा पदार्पण नहीं हुआ तब तक प्रसन्नता नहीं आई, यह ध्वनि नहीं हुई। इसके मूल में क्या है? महर्षि विभाण्डक ने यह कहा कि हम यागों के कर्म-काण्ड को जानते हैं, हम यागों के क्रिया-कलाप को जानते हैं। ऐसे राजा के याग में जब ऐसे कर्म-काण्डियों, निष्पक्ष और विवेकी पुरुषों को निमन्त्रित नहीं किया गया, क्योंकि यागों में विवेक की धारा अनिवार्य होती है। इसीलिए ऐसे जो याग हैं, राजेश्वर याग हैं इसमें ध्वनि तभी हो सकती है जब राष्ट्र का प्रत्येक प्राणी प्रसन्न हो जाए। यदि राजा के राष्ट्र में प्रसन्नता नहीं रहेगी तो याग चाहे कितना

ही ऊँचा बन जाए उसमें ध्वनि नहीं होती। हमने इस याग में सम्मिलित होने के लिए विचारा, परन्तु आ नहीं सके, निमन्त्रित नहीं किए गए। अब हम निमन्त्रित होकर के यहाँ नियुक्त हो गये है। हमने विचार लिया कि बुद्धियुक्त, वेद युक्त याग हुआ है प्रसन्नता हो गयी। इसलिए तुम्हारी ध्वनि बन गई है यह उच्चारण कर दोनों ऋषि मौंन हो गए। (चवालिसवाँ पुष्प, नई दिल्ली, 27 अप्रैल, 1984)

राजसूय यज्ञ और नेवले का प्रसंग

मुनिवरों! देखो, त्रेता काल में जिस समय रघु राज्य किया करते थे, एक समय वृष्टि न हुई। अकाल पड़ गया। पृथ्वी विष उगलने लगी। सब राजा व्याकुल हो गए। उस समय महर्षि उदांग ऋषि ने नाना सामग्री, नाना साकल्य एकत्रित करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा सुना जाता है कि उन्होंने वह साकल्य लगभग पन्द्रह दिवस एकत्रित किया। उस साकल्य से उन्होंने उस महान् विशाल वन में एक यज्ञ किया। यज्ञ करते ही देवता प्रसन्न हो गए फलस्वरूप उस समय वृष्टि प्रारम्भ हो गई। मुनिवरो! यज्ञ के स्थान पर एक नेवला रहता था। उस नेवले ने यज्ञ शेष में जाकर स्नान किया। उस यज्ञ शेष से उसके केवल आधे शरीर का स्नान हुआ जिससे उसका वह आधा शरीर स्वर्ण का बन गया। ऐसा सुना जाता है कि उसके पश्चात् वह नेवला ऐसे ही चलता रहा और प्रतीक्षा करने लगा कि किसी अन्य स्थान में ऐसा यज्ञ हो कि जिसके यज्ञ शेष में स्नान करने से शेष आधा शरीर

भी स्वर्ण का हो जाये। धीरे-धीरे द्वापर आ गया।

द्वापर काल में मुनिवरो! देखो, महाराजा युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ किया। इस यज्ञ में सब राज्य सम्पत्ति लगा दी गई। ऐसा सुन्दर यज्ञ था कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। उस समय वह नेवला भी उस यज्ञशाला में जा पहुँचा और यज्ञ शेष में जा स्नान किया किन्तु उसका शरीर स्वर्ण का न हुआ। नेवला व्याकुल होने लगा। उस समय महाराजा युधिष्ठिर ने नेवले से कहा, अरे नेवले, तुम शोकयुक्त क्यों हो रहे हो? उस समय नेवले ने कहा मैं शोकयुक्त इसलिए हो रहा हूँ क्योंकि एक समय उदांग ऋषि महाराज ने यज्ञ किया था जो सूक्ष्म-सा यज्ञ था, परन्तु यज्ञ के होने से वृष्टि हो गयी थी और उस यज्ञ शेष में मेरे आधे शरीर का ही स्नान हुआ और वह स्वर्ण का बन गया। हे महाराज! आपने इतना बड़ा यज्ञ किया है, मैंने इस यज्ञशेष में भी स्नान किया परन्तु मेरा शेष आधा शरीर स्वर्ण का न हुआ। इसका क्या कारण है? उस यज्ञ में क्या विशेषता थी? मैं इसलिए व्याकुल हो रहा हूँ। यह कैसा यज्ञ है जिससे मेरा आधा शरीर स्वर्ण का न बना? यह सुनकर महाराजा युधिष्ठिर व्याकुल होने लगे। उनकी व्याकुलता देखकर नेवले ने महाराजा युधिष्ठिर से कहा-हे महाराजा! आप क्यों व्याकुल हो रहे हो? महाराजा युधिष्ठिर में कहा-इसलिए व्याकुल हो रहा हूँ कि मैंने इतना महान् यज्ञ किया परन्तु इसका कोई महत्व नहीं, क्योंकि

आपका आधा शरीर सोने का होने से रह गया। यह यज्ञ तो न होने के तुल्य है।

उस समय महाराज कृष्णा ने, जो षोडश कलाओं को जानने वाले योगी थे, कहा अरे नेवले! शान्त रहो, आगे तो वह समय आ रहा है जब यज्ञ इतना भी नहीं रहेगा। आगे अन्धकार का काल आ रहा है जब संसार में नाना प्रकार की अज्ञानता छा जाएगी। मानव के जीवन का कोई विकास न होगा। उस समय तुम्हारा यह आधा शरीर जो स्वर्ण का हो गया है यह भी इस प्रकार का न रहेगा। आगे तो ऐसा समय आने वाला है कि शुभ कार्यो के लिए भी नाना प्रकार के संप्रदाय चल जाएँगे।

मुनिवरो! महाराजा कृष्णा ने जो कुछ कहा वह होकर रहा। क्या करें बेटा! महानन्द जी के कथनानुसार जैसा इन्होंने कई स्थानों पर वर्णन किया है, आधुनिक काल में तो कोई अपने को ब्रह्म माने बैठा है, कोई कहता है कर्म करने की आवश्यकता नहीं। कोई अपने को कृष्णा की आत्मा कह रहा है। कोई अपने को मोक्ष आत्मा कह रहा है। परन्तु यह वाक्य संसार को भ्रम में डाल रहा है। आज मानव को प्रकाश में पहुँचना है और अपने जीवन का कुछ महत्व संसार को देना है। हमारे शरीरों से तो क्या, बुद्धिमानों से संसार को कुछ मिलेगा। बुद्धिमान वह होता है जिसके रोम रोम से, सब इन्द्रियों से अमृत की धारा बहती हो। उस धारा को जो मानव ग्रहण करता है

वह अमृत तुल्य हो जाता है। बेटा! वह कौन-सी धारा है? वह वेद की धारा है। जब वेद का ज्ञान मानव के समक्ष रहता है उस काल में मानव अन्धकार में नहीं जाया करता है।

महाराज कृष्णा ने नेवले से कहा था हे नेवले, यह जो हमारा ज्ञान है आगे चलकर वह भी लुप्त हो जाएगा। कुछ साल आगे चलकर फिर इसका अन्त हो जाएगा। जिस काल में दोनों प्रकार का विज्ञान होता है उस काल का वास्तव में उत्थान हो जाता है। बेटा, दो प्रकार का विज्ञान कौन-सा है? आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान। जब यह दोनों विज्ञान साथ-साथ चलते हैं तो वह युग महान् कहा जाता है उस काल में मानव का उत्थान होता है। उस काल में मानव सब वार्ताओं को जानने वाला होता है।

मुनिवरो, नेवले ने महाराजा कृष्णा से प्रश्न किया हे महाराज! ऐसा सुना जाता है कि आप षोडश कलाओं के ज्ञाता है। आप इन षोडश कलाओं को कैसे जानते हैं? उस समय महाराजा कृष्णा ने षोडश कलाओं का वर्णन किया कि प्रत्येक मानव षोडश कलाओं से बना हुआ है। जो इन कलाओं को जान लेता है वह सोलह कलाधारी हो जाता है। मुनिवरो! मानव के शरीर में पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ होती हैं मन, बुद्धि चित्त, अहंकार होता है, और देखो, 'मधुवाता' होता है इन सबको मिलाकर सोलह कलाएँ होती है। जो इन्हें जान लेता है वह बेटा! महान योगी बन जाता है।

महाराजा कृष्णा प्रत्येक इन्द्रिय के विषय को अच्छी प्रकार जानते थे, उन्हें सोलह कलाधारी कहा जाता था।

मुनिवरो! आज हमें विचारना चाहिए कि वेद की विद्या क्या है? वेद की विद्या से मानव का उत्थान कैसे होता है? महानन्द जी के कथनानुसार आज का मानव बड़े अन्धकार में चला जा रहा है। मानव का विकास उसी स्थान में होगा जब वेद का प्रसार होगा, वेद की विद्या मानव के समक्ष होगी। आध्यात्मिक विद्या और भौतिक विद्या जब दोनों मानव के समक्ष होंगी तो मानव का वास्तविक उत्थान हो जाएगा। यह हमारा ही सिद्धान्त नहीं, आदि ऋषियों ने भी ऐसा ही वर्णन किया है। महाराजा कृष्णा के, द्वापर काल तक को तो हमने देखा है कि सब दार्शनिकों ने और सब ऋषियों ने आत्मा-परमात्मा को पृथक्-पृथक् ही माना है और आपत्तिकाल होने के नाते हमें प्रतीत नहीं इस कलियुग में क्या हुआ, क्या न हुआ। इसमें आत्मा परमात्मा को एक मान लिया या न माना। यह बेटा! अपने-अपने मार्ग हैं, इनसे हमें कोई अभिप्राय नहीं। हमें तो परमात्मा की उस विद्या से अभिप्राय है जो परमात्मा ने हम बालकों के लिए दी है। वह विद्या है वेद, जिसको पाने से मानव का विकास होता है। बेटा! हम यह नहीं कहते और न किसी काल में कहा है कि हमारे व्याख्यान सत्य हैं। हमने तो यह कहा है कि जो तुम्हें यथार्थ प्रतीत हो उसे ग्रहण करा लो और जो यथार्थ न लगे उसे त्याग दो। इससे

हमें कोई आपत्ति नहीं और न किसी बुद्धिमान को होनी चाहिए।

नेवले का वास्तविक अर्थ

मुनिवरो! आज मानव यह ही मान बैठा है कि वास्तव में नेवले का शरीर स्वर्ण का हो गया था, बेटा! उसका शरीर स्वर्ण का नहीं हुआ था, यह तो एक वैज्ञानिक वार्ता है। नेवले ने कहा था कि जब मैंने उस महान् यज्ञ शेष को पाया तो जहाँ तक उसका अंश पहुँचा वहाँ तक मेरा हृदय इतना पवित्र बन गया कि मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता। महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ शेष को भी मैंने ग्रहण किया परन्तु इसमें मुझे कोई आनन्द नहीं आया। उस समय मुनिवरो! महाराजा कृष्ण ने नेवले से कहा था "हे नेवले! तुम कैसी वार्ता उच्चारण कर रहे हो? तुम्हारा वाक्य महान् है, परन्तु अगला काल तो और व्याकुल होने का आ रहा है।" उस समय नेवले ने कहा "हे योगेश्वर! आप तो षोडश कलाओं के ज्ञाता है यह सतोयुग क्या पदार्थ है?" उस समय महाराज कृष्ण ने कहा था, सतोयुग उस काल को कहते हैं जिस काल में वेद की विद्या होती है, प्रत्येक मानव निर्द्वन्द रहता हैं, राग द्वेष किसी से नहीं करता, जिस काल में धर्म के चारों चरण हो उसे सतयुग कहते हैं। जिस काल में धर्म का एक पद समाप्त हो जाता है, जिस काल में अग्नि प्रचण्ड तो हो परन्तु कुछ सूक्ष्म हो। उसको हम त्रेता कहते हैं इसके पश्चात् द्वापर आ जाता है जिस काल में देव और दैत्यों की संख्या एक तुल्य हो जाती है, धर्म

के दो चरण शेष रह जाते है उसे द्वापर कहते है। जिस काल में धर्म की मर्यादा वृद्ध होने लगती है जैसे मानव का बाल्यकाल, युवा और मध्यम और उसके पश्चात् वृद्धपन आता है जिसमें आवरण ही शेष रह जाते है। उसी प्रकार यह कलियुग है जिसमें धर्म मर्यादा का केवल एक पद ही रह जाता है और अधर्म की मर्यादा बहुत अधिक होती है। रावण के पुत्र नरान्तक ने भी इसकी ऐसी ही व्याख्या की है। जिस काल में भौतिकता से ही कार्य होने लगता है, कलों से ही सब कार्य होने लगता है उस काल को कलियुग कहते है। यह नहीं कि सतोयुग, त्रेता और द्वापर में कलों से कार्य नहीं होता उनमें भी होता है।

उस समय नेवले ने कहा, भगवन्! यह वाक्य तो आपका यथार्थ हो गया परन्तु हम एक वार्ता और जानना चाहते हैं कि जब इस काल का नाम कलियुग है तो आपके काल को क्या कहा जाए जिसमें देखो, दुर्योधन इन पाण्डवों को नष्ट करना चाहता है? उस समय महाराजा कृष्ण ने कहा, हे नेवले! तुम्हारा यह वाक्य सत्य है परन्तु इसका तो यहाँ समाधान हो जाता है कि द्वापर के काल में देव और दैत्य दोनों एक तुल्य माने गए हैं। इसी प्रकार यहाँ आधी प्रजा एक-दूसरे को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली तथा आधी परोपकार करने वाली है। उस समय नेवले ने कहा, महाराज! यदि आप दुर्योधन को दैत्य मानेंगे तो आपका वाक्य कदापि सत्य नहीं होगा। (महाराजा

कृष्णा) ''अरे नेवले हम दुर्योधन को दैत्य नहीं मान रहे परन्तु वह दैत्य इसलिए माना जा रहा है क्योंकि वह हमारी वार्ताओं को स्वीकार नहीं करता और अपने विधाताओं (भाईयों) को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहता है। जो महात्माओं को नष्ट करता है उसको दैत्य कहा जाता है उसे धर्मात्मा कदापि नहीं कहा जाता है।''

मुनिवरो! इन प्रश्नों को स्वीकार करने के पश्चात् नेवला अपने स्थान को जाने लगा। उस समय महाराजा कृष्णा ने कहा, हे महान् नेवले! हे महान् ऋषि! आप अपने स्थान में जाकर परमात्मा का चिन्तन करो और यह चिन्तन न करो कि महाराजा युधिष्ठिर ने यह यज्ञ कुछ न किया। अब इतना तो हो भी रहा है, आगे वह काल आने वाला है जब यह सब कुछ भी न होगा। इन शन्तिदायक वार्ताओं को पा करके नेवला ऋर्षि अपने स्थान को चला गया। उस समय महाराजा युधिष्ठिर ने महाराजा कृष्णा से कहा मैंने यह यज्ञ कुछ नहीं किया, भगवन्! नेवला यहाँ से अशान्ति को प्राप्त होकर गया है। उस समय महाराजा कृष्णा ने कहा, 'हे महाराज युधिष्ठिर! यह सब कुछ यथार्थ है जो तुमने उच्चारण किया परन्तु वह काल उनके साथ था, आज का काल हमारे साथ है। आधुनिक समय की नीति तो यह है कि जैसा समय आए वैसा कार्य करो। उसी से मानव का विकास है। तब महराजा कृष्णा ने ऐसा कहा तो महाराजा युधिष्ठिर शान्त हो गए।

मुनिवरो! महाराजा कृष्णा ने कलियुग की जो व्याख्या की है वास्तव में वह यथार्थ है परन्तु यह वाक्य निश्चय नहीं कि उस काल (कलियुग) में सब अज्ञानी रहते हैं, उस काल में बुद्धिमान भी रहते हैं, दार्शनिक भी रहते है हर काल में हर प्रकार के मनुष्य रहते है। यह अवश्य हो जाता है किसी काल में धर्मात्मा बढ़ जाते है तो किसी काल में दैत्य। (तृतीय पुष्प, सरोजनी नगर, नई दिल्ली, 8 मार्च, 1962)

एक नवलेत्वर ऋषि थे परन्तु उस ऋषि को आधुनिक काल के साहित्य ने नेवला बना दिया। ऋषियों को नेवला बनाया परन्तु मेरे पूज्यवाद गुरुदेव ने जब नवलेत्वर ऋषि कहा तो मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा कि भगवन्! आधुनिक काल में कहते हैं कि एक ऋषि ने याग किया था, उस जल के पात्रों में जो शेष रह गया था, उसमें नेवले ने स्नान किया तो वह स्वर्ण का बन गया। परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने स्वर्णमयी की जो विवेचना की है वह ज्ञान और वेद की विवेचना की। आधुनिक काल का जो साहित्य है वह इसकी (स्वर्णमयी) विवेचना कर रहा है कि वह स्वर्ण का बन गया, धातुवृत्त बन गया, ऐसा समाज कहता है। परन्तु हे भोले प्राणियों! अपने साहित्य को विचार में नहीं लाने से तुम्हारा जीवन, तुम्हारा परम्परा, तुम्हारी जो जन समाज है, वह कदापि ऊँचा नहीं बन पायेगा। (चौवनवां पुष्प, विकासपुरी, नई दिल्ली, 18 अक्टूबर, 1987)

इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ करो

यह वह इन्द्रप्रस्थ की भूमि है जहाँ महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था। जिस यज्ञ में संसार के राजा महाराजा आज्ञा के अनुकूल आये थे। आज तुम्हें भी वह एक समय संसार में ला देना है। अब तुम्हारा वह समय आ जाना है, जब तुम ऐसे यज्ञ इन्द्रप्रस्थ में करते ही रहोगे। राजसूय यज्ञ करोगे तो आज्ञा के अनुकूल राजा-महाराजा नास्तिक से आस्तिक बनेंगे। वह समय तुम्हें लाना है। आज मेरे इस समाज में से कोई युधिष्ठिर भी अवश्य बनेगा, कोई अर्जुन और भीम भी अवश्य बनेगा। आज इस इन्द्रप्रस्थ में भगवान् कृष्ण भी सेवा करने के लिए आयेगे परन्तु उसके लिए, सदाचार जीवन में लाये, सदाचार के लिए यज्ञ समारोह करते रहे तो अवश्य आएँगे, यह निश्चित है। तुम्हारे ऊपर दयालु होकर के तुम्हारे राष्ट्र की रक्षा करेंगे, तुम्हारे जीवन की रक्षा करेंगे, तुम्हारी इस मातृभूमि और संस्कृति की रक्षा होगी। (आठवाँ पुष्प, विनयनगर, नई दिल्ली, 14 नवम्बर 1963)

इसी इन्द्रप्रस्थ में जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया तो यहाँ दुर्योधन आ गये और यह विचारा कि यह पाण्डवों का यज्ञ भ्रष्ट हो जाये। परन्तु देखो, जहाँ कोई प्राणी किसी को नष्ट करना चाहता है तो उसके नष्ट करने से वह प्राणी नष्ट नहीं होता परन्तु जब नष्ट होता है तो अपने कर्मो से ही नष्ट होता है। वह अपने प्रारब्ध से

ही नष्ट होता है, किसी के नष्ट करने से कोइ मानव नष्ट नहीं हुआ करता, यह विचार लो। (ग्यारहवाँ पुष्प, जोरबाग, 30 जुलाई, 1968)

संग्राम का मूल कारण

द्वापर के काल में यही 'शब्द' था जो महाभारत के संग्राम का मूल कारण बना। जब इन्द्रप्रस्थ में महाराजा युधिष्ठिर ने एक सुन्दर गृह का निर्माण किया। नाना शिल्पकारों ने उस गृह का निर्माण किया। तो इसमें ऐसी आभा प्राप्त होती थी, जहाँ जल था वहाँ ऐसा प्रतीत होता था जल नहीं है, जहाँ यह लगता था कि जल नहीं है वहाँ जल होता था। जब इन्द्रप्रस्थ में याग हुआ, याग के पश्चात् जब महाराजा दुर्योधन एक आभा में चले जा रहे थे, तो वह एक और जल की दिशा में चले गये और तब उनकी दशा ऐसी बन गई जिससे उस समय घृणात्मकता से महारानी द्रौपदी ने एक शब्द कहा था, ''कि अन्धे की सन्तान अन्धी होती है।'' बेटा! यही शब्द था, जिस शब्द ने उनके (दुर्योधन) अन्तःकरण में ऐसा स्थान बना दिया, ऐसी स्थली बन गयी कि उसे पाण्डवों से घृणा हो गयी। वहीं शब्द है जो मानव श्रोत्रों से श्रवण कर रहा है वही शब्द विनाश का मूलक बन गया। वहीं शब्द राष्ट्र के विनाश का कारण बन गया वैसे तो और नाना कारण बनते रहते है, उन नाना कारणों में एक कारण यह भी बना। शब्द की प्रतिभा, उस शब्द की आभा मानव के अन्तःकरण में

स्थली बना लेती है वही चित्त में विद्यमान हो जाती है और वह भी शब्द ही है जो मानव को दैत्य से देवता बनाते हैं। (आत्मलोक, अमृतसर, 4 जुलाई, 1978)

शब्द का प्रभाव

वह 'भानाब्रह्मे' वह जो शब्द है वह कहीं पाण्डित्य से हृदय में अग्नि बन करके रहता है और वह ही राजा के राष्ट्र में देखो, शुद्ध और अशुद्धियों में मानो अमृतात् होने लगता है। उसके ऊपर जब विचार-विनिमय किया जाता है, तो शब्द अपने में ऐसी भयंकर अग्नि है कि इससे राष्ट्र के राष्ट्र अग्नि के मुखारबिन्दु में चले जाते हैं। जब इन्द्रप्रस्थ की राजस्थलियों में देखो, राष्ट्र-गृह में ऐसा निर्माण किया गया था कि जहाँ जलाशय था वहाँ मानो देखो, ऐसा प्रतीत होता था कि वहाँ जलाशय नहीं है और जहाँ जलाशय नहीं था, वहाँ ऐसा प्रतीत होता था कि यहाँ जलाशय है; जहाँ जल है, वहाँ सृकृतियों में दृष्टिपात् आ रहा है। मानो देखो, द्वापर के काल मे वह भी तो एक शब्द ही था। देखो, यहाँ तो दुर्योधन अवृत्त हो गया, अपभ्रंश हो गया। तो उसी काल में द्रौपदी ने कहा था कि अन्धे की सन्तान मानो नेत्र हीन हो रही है। शब्द का कारण यह बना कि देखो, विधाताओं में विनाश का एक मूल बन गया।

स्वार्थता

यही शब्द मानो देखो द्रोणाचार्य के हृदय में परिणत होता रहा।

देखो, जब वे द्रुपद के यहाँ से हस्तिनापुर की स्थली पर आ गए तो शब्दों के कारण ही उनमें एक क्रान्ति आई और वह शब्द ही एक-दूसरे की मृत्यु के मूल में प्रवेश हो गए। देखो, जब हस्तिनापुर मे विद्या का क्षेत्र बना तो पितामह भीष्म ने कहा कि हे द्रोण! इस राष्ट्र में जो पुत्र ऋण है, यह राज-वृत्तियों में है, राजकुमार में हैं, इन्हें आप धनुर्विद्या की शिक्षा प्रदान कीजिए, बेटा! मुझे स्मरण है कि देखो, उन्होंने कहा कि विद्या तो (मैं उन्हें) तब दूँगा जब मैं इनका निर्णय करूँगा। तो निर्णय में यह आया कि सब विद्या पाने के अधिकारी तो नहीं हैं, परन्तु वह जो शब्दों की प्रतिज्ञाबद्ध हो करके दुरपद से आए थे, उसकी पूर्णता करनी थी, इसीलिए उन्होंने यह निर्णय स्वीकार नहीं किया। यह नहीं विचारा द्रोण ने कि इसका अन्तिम परिणाम क्या होगा? मानो, इस राष्ट्र-गृहों का क्या होगा? देखो, मुझे ऐसा स्मरण है कि उन्होंने सबको शिक्षा देना प्रारंभ कर दिया। इस अपनाति अप्रो' में, अपमान के प्रतिशोध में आकर के शिक्षा दी, क्योंकि उसको मुक्तिका में लाना है। परिणाम यह हुआ कि वह विद्या दी गई अनाधिकारियों को भी, जो अधिकारी न थे; अनाधिकार-चेष्टा हुई। उसका परिणाम यह हुआ कि एक-एक गृह में उत्पन्न घृणा से हस्तिनापुर का राष्ट्र अग्नि के मुखारबिन्दु में चला गया। हमें अपनी वाणी पर संयम करना है और देखो, जो यह अग्नि रुपी वाणी है, इस अग्नि के स्वरूप को अपने में धारण करना है,

क्योंकि यह शब्द, अग्नि के रूप में विद्यमान रहता है। यह शब्द ही देखो, वृत्त कहलाता है, मानो इन्द्रियों के ऊपर जब साधक संयम कर लेता है, अपने में संयमी बन जाता है तो संयम-आभा में प्रवेश हो करके उसके गुणों को अपने में धारण करने लगता है और गुणाधानम् बन करके वह मानव देखो, अग्निस्वरूप बन जाता है। वह साधना में प्रवेश कर जाता है। (इक्सठवां पुष्प, रामप्रस्थ, गाजियाबाद, 23 अगस्त, 1988)

बुद्धिहीनता

मेरे भद्र पुरुषों! आज तो महानन्द जी के कथनानुसार ऐसा प्रतीत हो रहा है कि संसार में वह समय बहुत निकट है जब यहाँ रक्त की धारा बह सकती है क्योंकि बुद्धिमानों ने अपने कर्त्तव्य को त्याग दिया है और वह द्रव्य के पीछे हैं। वैदिकता में सबसे पूर्व धर्म आता है, उसके पश्चात् द्रव्य आता है। धर्म के व्यापक सबसे अधिक बुद्धिमान वेदपाठी होता है और धर्म उनके साथ होता है। द्रव्य के स्वामी कौन होते हैं? राजा और वैश्य। जब सबसे प्रथम धर्म को त्याग दिया जाता है, ब्राह्मण समाज जो राजाओं के गुरु होते है, वह जब अपने धर्म को त्याग देते हैं तो क्या होता है? स्वार्थ की क्रांति होती है और रक्त की धारा व्यक्त होती हैं। मेरे भद्र पुरुषों! मुझे स्मरण है, जब महाभारत का संग्राम हुआ और रक्त की धारा बह गई। इसका क्या कारण था? स्वार्थता, बुद्धिहीनता। ब्राह्मण समाज

अपने कर्त्तव्यों को त्याग चुका था। दोनों विद्याताओं में संग्राम हुआ, संसार के प्राणी आये और रक्त की धारा बह गई। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ही समय के पश्चात् यहाँ संसार में पुनः से रक्त की धारा बहने वाली है। आज संसार को ऊँचा बनाना है तो वह ऊँचा बन सकेगा संगठन से, मानवता से और वैदिकता से। यदि आज वैदिकता को त्याग दिया जाता है अपनी मानसिक पद्धति को नष्ट किया जाता है, शिक्षा पद्धति को ऊँचा नहीं बनाया जाता तो क्या होता है? संसार अग्नि के मुख में चला जाता है। (आठवाँ पुष्प, ग्राम माजरा डबास, दिसम्बर, 1966)

जिस राजा के राष्ट्र में एक विचार, एक संस्कृति और उस संस्कृति के अनुकूल एक धर्म होता है, तो उस राजा के राष्ट्र की सीमा पर रक्त की धारा नहीं बहती। यहाँ और भी प्रश्न आते हैं, मैं ही उन तर्कों को किया करता हूँ कि महाभारत के काल में एक संस्कृति थी तो क्यों संग्राम हो गया? परन्तु वहाँ भी स्वार्थ था, वहाँ भी संस्कृति से दूर चले गये थे संस्कृति का अभिप्राय यह नहीं कि एक भाषा आ गई तो हम संस्कृतज्ञ बन गये। संस्कृति का अभिप्राय यह है कि उसके ऊपर हम स्वयं चालक बने और उसके अनुकूल हम अपने जीवन को चलाने का प्रयत्न करें जिससे आगे चल करके जीवन साहसी, विचारवादी और उच्चता को प्राप्त होता चला जाये। (छठा पुष्प, सरोजनीनगर, नई दिल्ली, 19 अक्टूबर, 1965)

९ वैज्ञानिक पाण्डव व उनके पुत्र

मुनिवरो! हमारे यहाँ दो प्रकार का विज्ञान कहा गया है, एक भौतिक विज्ञान और दूसरा आध्यात्मिक विज्ञान। भौतिक-विज्ञान वह कहलाता है, जिसमें नाना प्रकार के प्रकृति के अणुओं को, महाणुओं को एकत्रित किया जाता है। जिसके द्वारा द्वापर काल में भीम के पुत्र धटोत्कच, अर्जुन और महाराजा कृष्ण ने बड़े-बड़े मन्त्रों का आविष्कार किया। मुनिवरो! इस भौतिक विज्ञान से भी ऊँचा एक विज्ञान है जिस विज्ञान से इस संसार के रचयिता को, जिसने हमारे मनुष्य शरीर को रचा है पा लिया जाता है। वह है आध्यात्मिक विज्ञान। (चतुर्थ पुष्प, जम्मू, 19 अप्रैल, 1964)

वैज्ञानिक अर्जुन

ऋषि (वैज्ञानिक) समुद्र तट पर अपने में ऋषित्व को दर्शाते रहे हैं। वे समुद्रों से ऊर्जा को लेते और नाना प्रकार से अपने में साधक बन करके साधना को सिद्ध करके सूर्य की किरणों के साथ गमन करते हैं। एक योगी ही ऐसा है जो प्राण और अपान को मिला करके चन्द्रमा की कान्ति के साथ गमन करता है। वह सूर्य की आभा में भी रत हो जाता है। यहाँ नाना ऋषिवर इस प्रकार की लघुक्रिया को जानते थे। द्वापर काल में भी ऐसे महान वैज्ञानिक हुए है। महाराजा अर्जुन को तुमने दृष्टिपात् किया होगा, अर्जुन ने यह विद्या हिमालय में जाकर महाराजा शिव से प्राप्त की थी। अस्त्रों-षस्त्रों की विद्या को

पान करने के लिए, अध्ययन करने के लिए मंगल-मण्डल में जा पहुँचे क्योंकि मंगल-मण्डल का विज्ञान इस पृथ्वी मण्डल के विज्ञान से सौ वर्षों आगे रमण करता रहता था। (मोक्ष प्राप्ति का मार्ग, लाजपतनगर, नई दिल्ली 20 मई, 1991)

मुनिवरो! एक समय महाराजा अर्जुन ने महाराजा शिव के द्वारा देवयान और देवताओं की वाणी पान करने के लिए एक वैज्ञानिक यन्त्र को खोजा था। महाराजा अर्जुन ने महाराजा शिव से कहा था कि हे शिव! में देवयान के देवताओं की वाणी का श्रवण करना चाहता हूँ, उनको मन्त्रों में लाना चाहता हूँ। मुझे ऐसे यन्त्र बनाने की प्रक्रिया निर्णय कराइये। महाराजा शिव ने उस यंत्र का सब विवरण कह सुनाया। उसी समय अर्जुन ने वह यन्त्र बनाया। जब उसका प्रहार किया जाता था तो वह यन्त्र अन्तरिक्ष में रमण करता था और अर्जुन ने उस यन्त्र के द्वारा देवताओं की वाणी को श्रवण किया।

(चतुर्थ पुष्प, मालवीय नगर, नई दिल्ली 28 जुलाई, 1963)

महाराजा अर्जुन ने सूर्य विद्या पर नाना प्रकार की पोथियों का निर्माण किया। सूर्य की नाना प्रकार की किरणों के उपर जिनका अप्रेत होता रहता था। (सोलहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 1 अगस्त, 1970)

मुनिवरो! मुझे द्वापर का काल स्मरण है जब महाराजा अर्जुन लगभग तीन वर्ष तक मंगल मण्डल में रहे। तो मंगल में रहने का

उनका अभिप्राय क्या, कि नाना प्रकार के विज्ञान को जानने के लिए, उसी प्रकार अपने मानवत्व को विचित्र बनाने के लिए। इस महान विज्ञान को जानने के लिए हमें वास्तव में विचित्र बनना है। यह मेधावी क्षेत्र कहलाया जाता है। मेधावी क्षेत्र कहाँ तक है? एक मानव चन्द्रलोक को जा सकता हैं, मंगल में पहुँच सकता है, देखो, बुद्ध में जा सकता है। अपने-अपने क्रियाओं के द्वारा, मन्त्रों के द्वारा, नाना धातुओं के द्वारा मन्त्रों को स्थिर करके वह इन लोकों में रमण कर सकता है। नाना प्रकार के विज्ञान को जानता हुआ वह वायुयान और भी नाना प्रकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म मन्त्रों का विकास कर सकता है। बुद्धि का क्षेत्र और मेधावी का क्षेत्र कहाँ तक है? मेधावी का क्षेत्र इस परमाणुवाद में रमण करता है। सूर्य में नाना प्रकार की किरणें उत्पन्न होती हैं। उनमें किस-किस प्रकार के परमाणु है, कितनी उससे धारायें है? यह सब मेधावी का क्षेत्र है। मुनिवरो! अब बुद्धि और मेधावी के पश्चात् ऋतम्भरा पर आ जाओ। ऋतम्भरावादी कौन होता है? जो बेटा! ज्ञान और विज्ञान के द्वारा इन सबको जानता हुआ ऋतम्भरा के क्षेत्र में चला जाता है। ऋतम्भरा उसे कहते है, जहाँ योगी प्रकृति पर अपना शासन कर लेता है। प्रकृति पर जब विवेकी पुरुष का शासन हो जाता है तो यह जो परमाणुवाद है वह इसकी वास्तविकता को जान लेता है। (नवम् पुष्प, माधोगंज, 26 अक्टूबर, 1967)

वैज्ञानिक बभ्रुवाहन

महाराजा अर्जुन के पुत्र ब्रभ्रुवाहन ने एक यन्त्र को जाना। जो काकीक नाम का यन्त्र कहलाया जाता था। उस ''काकीक'' नाम के यन्त्र में ऐसी विशेषता थी कि मानव के रक्त की धारा के एक ही बिन्दु से जब वह चित्राण करता था तो मानव का चित्राण ज्यों का त्यों उसमें प्रायः आ जाता था। ऐसे यन्त्र को उन्होंने जाना। उसके पश्चात् उन्होंने एक ऐसे यन्त्र को जाना जैसे किसी भी लोक से कोई यन्त्र चलता है संसार के लिए, पृथ्वी मण्डल के लिए, द्वितीय लोक के लिए उसका चित्राण भी उस यन्त्र में उनके समीप आ जाता था। प्रायः उसको 'कोगा अनेक'' नाम का यन्त्र भी कहा जाता था। जैसे मंगल मण्डल से कोई प्राणी मन्त्रों से युक्त हो करके चलता उसका चित्राण उसमें प्रायः आ जाता था। आधुनिक काल में तो ऐसे मन्त्रों का प्रार्दुभाव ही नहीं हुआ है। (सोहलवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 1 अगस्त, 1970)

अर्जुन के पुत्र बभ्रुरवाहन इतने बड़े वैज्ञानकि थे कि उन्होंने एक ऐसे यन्त्र का विकास किया जो षत्रु की अठारह अक्षौणी सेना को समाप्त कर वह यन्त्र उनके द्वार पर पुनः वापस आ जाए। बभ्रुरवाहन ने भगवान् कृष्णा से प्रश्न किया कि भगवन्। मुझे परमात्मा में विश्वास नहीं होता और वह इसीलिए नहीं होता क्योंकि मैंने विज्ञान को जाना है और अब मैं इस प्रयत्न में लगा हुआ हूँ जिससे मन्त्रों द्वारा मैं

अन्तरिक्ष के ग्रहों को जान सकूँ। उस समय भगवान् कृष्ण ने एक वाक्य कहा था कि भई, इनको भी जानो और आत्मा को भी जानो। हे बभ्रुवाहन! संसार में एक को जानने से संसार जाना जाता है और एक को न जानने से किंचित जाना जाता है, सूक्ष्म जाना जाता है। जैसे वैज्ञानिक ने एक यन्त्र बनाया है, अणु महाअणु बनाये और वह यन्त्र बनाये जिनमें लोकों में रमण कर सकते हैं। परन्तु यह भौतिक विज्ञान है। जब हम उस आत्मिक और पारमात्मिक विज्ञान को जानते हैं तो उस पराविज्ञान को जानते हैं, जिससे वह जो चँचल मन है इसको हम शान्त करते हैं, बुद्धि से कार्य करते हैं, बुद्धि से आगे मेधावी बुद्धि से जो अन्तरिक्ष में रमण करने वाले वाक्य है, नाना प्रकार के भाव है, उन्हें जाना जाता है। मेधावी बुद्धि से आगे ऋतम्भरा बुद्धि है जो अन्तरिक्ष से भी ऊपर चली जाती है। उससे आगे प्रज्ञा बुद्धि है, जहाँ देखो, हम परमात्मा से मिलान करते हैं। जिस परमात्मा ने इस संसार में भौतिकवाद को रचाया है। इस प्रकृति को चेतना दी है, जिसको अपने अधीन करके हम शासक कहलाते है, परमात्मा रक्षक होता है और प्रकृति के अणु-अणु को जान लेते है कि क्या-क्या धातु इस प्रकृति में है और क्या क्या धातु इस चन्द्रमा और सूर्य मे हैं इन सबको जानकर हम पूर्ण वैज्ञानिक बन जाते हैं। हमें दोनों प्रकार के विज्ञान को जानना है।

(पांचवाँ पुष्प, भोगा भरडी, 20 अक्टूबर, 1964)

पाण्डवों के वैज्ञानिक पुत्र

आज का विज्ञान इकाई के क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है। परन्तु महाराज भ्रदीक, बभ्रुवाहन, और घटोत्कच महाभारत कालीन वैज्ञानिक हुए। हस्तिनापुर में एक वंश था, उस वंश में इनका जन्म हुआ। बभ्रुवाहन महाराजा अर्जुन का पुत्र था, भद्रीक भी उन्हीं का पुत्र था और यह घटोत्कच भीम के पुत्र कहलाते थे। तीनों विशेषज्ञ वैज्ञानिक थे। वह ऐसे महान् वैज्ञानिक थे कि वेद के अगाध समुद्र में जाकर के एक-एक वेद-मंत्र के ऊपर अन्वेषण करते हुए वह अपने में कृत्य करते रहते थे। उन्होंने अग्नि की धाराओं में, अणु की प्रतिभा में भ्रमण करते हुए कृतियों में एक यन्त्र का निर्माण किया था। एक समय उनके समीप महाराजा शमीक भ्रमण करते हुए भ्रदीक के आश्रम में पहुँचें। जब भद्रीक की विज्ञान-शाला में उन्होंने प्रवेश किया तो भद्रीक ने ऋषि का स्वागत किया। शमीक ऋषि ने कहा हे वैज्ञानिकों! तुम इस चिन्तन में भी किसी काल में पहुँच हो, कि मानव के नेत्रों में जो प्रकाश आता है उसका स्रोत क्या है? जैसे वेद का मन्त्र कहता है, कि मानव के नेत्रों को प्रकाशित करने वाला कौन है? माता के गर्भस्थल में उसके पुत्र के नेत्रों का निर्माण होता है, प्रत्येक इन्द्रियों का निर्माण होता है, निर्माणवेत्ता कौन है, और उनमें ज्योति प्रदान करने वाला कौन है? उस ज्योतिर्मय को हम जानना चाहते हैं। तो शमीक और जैमिनी ब्रही व्रतकेतु ऋषि महाराजा ने जब

यह प्रश्न किया तो उस समय तीनों वैज्ञानिक इस अनुसन्धान में लग गए। उन्होंने विचारा कि वेद का मन्त्र तो कहता है कि वह ज्योतिर्लिंग कहाँ से प्राप्त होता है? नेत्र वास्तव में किसी की सहायता से प्रकाश को प्राप्त होते हैं। उन्होंने कहा, इसका हम निर्णय दें सकेंगे। कुछ काल के पश्चात् हम इसके ऊपर अन्वेषण करेंगे। तो मुनिवरो! भद्रीक ने, बभ्रुवाहन ने और घटोत्कच तीनों वैज्ञानिक चिन्तन करते-करते भगवान् कृष्ण के द्वार पर पहुँचे।

भगवान् कृष्ण समुद्र के तट पर विद्यमान हो करके एक यन्त्र का निर्माण कर रहे थे जिसके, सूर्य के ऊपर छा जाने से परमाणुवाद रात्रि लिंग उत्पन्न हो जाए। रात्रि के तुल्य यह दिवस कृतियों में रमण करने लगा। भगवान् कृष्ण ने कहा, आओ, मेरे पुत्रो! वैज्ञानिकों आओ, वह विराजमान हो गए। भगवान् कृष्ण ने कहा, कहो, भद्रीक! तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? तुम तो तीनों ही महाविज्ञान के गर्भ में भ्रमण करते हो, आज यहाँ तुम्हारा आगमन कैसे हुआ? तो भद्रीक ने कहा, हे प्रभु! यह वेद-मन्त्र है और यह वेद-मन्त्र कहता है कि हमारे जो नेत्रों में प्रकाश आता है उसका स्रोत कौन हैं? क्योंकि मानव का निर्माण करने वाला प्रभु है, और निर्माण होता है माता के गर्भ से। क्योंकि वहीं उस की स्थली बनी हुई है तो वहीं निर्माण हो जाता है और जिस वस्तु का निर्माण होता है वह जड़वत् है। निर्माण करने वाला चैतन्य है। परन्तु हम यह जानना चाहते हैं उसमें ज्योतिर्लिंग

को कौन भरण करता है? तो मेरे पुत्रो! इस चिन्तन में भगवान् कृष्ण भी लग गए और भगवान् कृष्ण ने उस समय यह कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि यह जो 'अग्निं ब्रह्म वाचो' यह जो प्रकाश आता है वह एक अणु है, एक परमाणु है और एक अणु की कृतिका कहलाती है। वह प्रकाश अणु के गर्भ में एक आत्मा के रूप में विद्यमान है, उस अणु-कृति को हम आत्मा कहते हैं, कृतिका भी कहते हैं। वह भी इस शरीर में विद्यमान है और विद्यमान हो करके उस आत्मा का प्रकाश गति करता है। वही इस प्रकृति के परमाणुओं से मिलान करता हुआ अपने में साकार और सूक्ष्म रूप को धारण करता रहता है।

जब भगवान् कृष्ण ने यह उत्तर दिया, तब उन्होंने कहा, प्रभु! मैं विज्ञान की दृष्टि से दृष्टिपात् करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा, विज्ञान तो यही कहता है, वेद का मन्त्र भी तुमने दृष्टिपात् किया होगा। वेद-मन्त्र यह कहता है कि एक परमाणु है, परमाणु के गर्भस्थल में एक सूक्ष्म और परमाणु है। उस परमाणु में इतनी शक्ति है, जब उसका विभाजन किया जाता हे अथवा जब परमाणु उससे संघर्ष करने लगते हैं तो वह परमाणु अग्नि का चयन करते हैं। अग्नि का चयन करते हुए वहीं सूक्ष्मवत् बनते हुए आत्म-ज्योति के रूप में प्रकट होते रहते हें। वह आत्म-ज्योति कहलाते हैं जो अनुभव का विषय है। वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। प्रकृति का विषय नहीं है, तरंगों का विषय नहीं

है, वह समाधि और आनन्दवत् का विषय कहलाता है। जब वह वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो उन्होंने कहा, प्रभु! हमने एक यन्त्र का निर्माण किया है, मंगल और बुद्ध के मध्य में यन्त्र का निर्माण किया है, और उस यन्त्र का आयु लाखों वर्षों का है और उस यन्त्र से परमाणु गति प्रवाह होते रहते हैं, समुद्रों से उसका मिलन होता है तो उस मिलान में, दीपावली की छाया में जो भी यन्त्र आ जाता है वह भस्मीभूत हो जाता है। उस यन्त्र का एक कण भी प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह परमाणु इतने शक्तिशाली हैं, उनमें इतनी शक्तिशाली ऊर्जा है कि जिस ऊर्जा से सूर्य प्रकाश देता है, जिस ऊर्जा से द्यौ अपने में द्यौ बनी रहती है, जिस अग्नि से, जिन परमाणुओं से वह गति करने वाला जगत् एक सूत्र में गति कर रहा है, इस प्रकार का ऐसा यन्त्र हमने निर्माणित किया है। उसकी छाया पृथ्वी पर आती है और पृथ्वी पर भी समुद्र के एक भाग पर जाती है और समुद्र के जैसे ही भाग पर पहुँची, वहाँ से वह परमाणुओं को निगलना प्रारम्भ कर देता है। जब वह परमाणुओं का निगल लेता है जो आभा कृति नाम के परमाणु हैं, जिन परमाणुओं का समन्वय करके हमने अन्तरिक्ष में से एक यन्त्र णानम् वृत्त बनाया है और यह यन्त्र को अपने में निगल जाता है। अह! जब इस प्रकार के यन्त्र का उन्होंने निर्णय कराया तो भगवान् कृष्ण ने कहा, वाक्य तो तुम्हारा यथार्थ है। चलो, यन्त्र की दृष्टिपात् करते हैं। वह विज्ञानशाला में ले गए, विज्ञानशाला

में उन मन्त्रों को उन्होंने दृष्टिपात् किया। इस प्रकार का प्रतिपादन विज्ञान के युगों में प्रायः होता रहा है। (पैतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 9 मार्च, 1984)

भीम और घटोत्कच का चन्द्रयान

यहाँ भीम के पुत्र घटोत्कच की विज्ञानशाला थी। उनका जो अध्ययन था वह चन्द्रमण्डल और चन्द्र से ऊँचा जो बुध लोक हैं उस पर उनका प्रायः अनुसंधान रहा है। जिस समय उन मन्त्रों का प्रादुर्भाव करके उन्हें वायुमण्डल में त्याग देते थे तो ऐसा कहा जाता है, ऐसा कुछ श्रवण भी किया गया है कि वह आज भी चन्द्रमा के ऊपरले भाग में जहाँ बुध और मंगल दोनों की आकर्षण शक्ति का मिलान होता है, में वह भ्रमण कर रहे है। आज जब इस पृथ्वी मण्डल का प्राणी चन्द्रमा के कक्ष से चन्द्रमण्डल के ऊपरले भाग में पहुँचेगा, अकेति से उसकी आकर्षण शक्ति से उस समय उन्हें यह प्रतीत होगा कि ''अस्विति'' नाम का यन्त्र जो महाराजा बभ्रुवाहन ने निर्माण किया था और सोमाकृतिक' यन्त्र जो महाराजा घटोत्कच ने निर्माण किया था वह आज भी उसी प्रकार भ्रमण कर रहे है। महाभारत के संग्राम में इस प्रकार के यन्त्र वायु मण्डल में त्याग दिये गये थे। (सोलहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 1 अगस्त, 1970)

द्वापर के काल में महाराजा भीम और उनके पुत्र घटोत्कच्छ दोनों की चन्द्रशालाएँ थीं। वे शालाओं में विराजमान हो करके यानों का

निर्माण करते थे। उन्होंने ऐसे चन्द्रयानों का निर्माण किया जो चन्द्रमा से ऊपरले भाग में आज भी भ्रमण कर रहे हैं। आज का मानव जब चन्द्रयान से ऊर्ध्वागति को पहुँचेगा तो उस समय उन्हें वह यान प्राप्त हो सकते हैं। वह यान कितने विशाल हैं, कितनी उनकी ऊर्ध्वागति है। एक समय व्यास मुनि आश्रम में महाराजा घटोत्कच विराजमान थे और वह उनसे विनय कर रहे थे, हे भगवन्! मेरा विज्ञान विशालता को प्राप्त हो रहा है और चन्द्रमा से ऊँचे हमारे उपग्रह पहुँच चुके है। परन्तु आप केवल वेदान्त की चर्चा प्रकट करते रहते हैं। एक इसी की चर्चा करते है, तत्व में उसी की चर्चा प्रकट करते रहते है व्यास मुनि ने कहा, हे पुत्र! हमारा वेदान्त दर्शन चन्द्रमा की वार्ता नहीं जानता, यह तुम्हारे मन में विश्वास है। परन्तु यह वहाँ तक मानव को पहुँचाता है, और वहाँ जाने वाले यानों का निर्माण करता है, जहाँ यह नाना लोक-लोकान्तरों का निर्माण होता है, उस निर्माणवेत्ता की वार्ता का स्पष्टीकरण करता है। घटोत्कच आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने कहा, प्रभु यह कैसे हो सकता है? वेदान्त में ऐसा क्या है? ऐसा वाक्य आपने क्यों प्रकट किया? उन्होंने कहा, वेदान्त किसे कहते है? पुत्र ! तुम्हें यह प्रतीत है कि नहीं? वेदान्त कहते ह वेदों के रस को। वेदों के रस का नाम ही वेदान्त कहा जाता है। जिस प्रकार अन्तरिक्ष के रस का मन्थन किया जाता है जिस प्रकार नाना प्रकार की वनस्पतियों के रसों को धारण करने

वाला गौ नाम का पशु होता है। हमारे यहाँ उसके रस को गौ रस कहा जाता है। तुम वैज्ञानिक हो, गौ नाम पृथ्वी का है, इसका रस मन्थन करने के पश्चात, जब पृथ्वी को वैज्ञानिक मन्थन करता है तो खनिज पदार्थ और खाद्य पदार्थो को उत्पन्न करता है, वही तो इस गौ रूपी पृथ्वी का मधुमेह कहलाया जाता है। उसी को हमारे यहाँ धृत कहा जाता है। इसी प्रकार गौ नाम का पशु नाना पदार्थों को, वनस्पतियों को पान करके गौ रस देता है। जिससे यजमान यज्ञ करता है। मेरी प्यारी माता अपने पुत्र को उसी गौ रूपी रस से पनपा रही है। मुनिवरो! वही गौ रस कहाँ से आता है? उसका सम्बन्ध अग्नि से है जल से है वायु से है, अन्तरिक्ष से है, महत् तत्व से लेकर द्यौ मण्डल तक उसका सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार यह जो वेदान्त है यह वेदों का मंथन किया हुआ रस है और जो इसके अनुसार चलता है उस मानव को यह कहाँ ले जाता है? तुमने चन्द्रयान बना लिये है चन्द्रयान से ऊँचे जाने वाले मंगलयान बना लिए है यहाँ ध्रुवयान भी बना सकते हो, परन्तु उस प्रभु के द्वार पर जाने वाला तुमने कोई यन्त्र का निर्माण अभी तक नहीं किया है। मेरे प्यारे! हमने उस प्रभु के द्वार पर जाने के लिए, वह जो महान् वैज्ञानिक है जिसका विज्ञान नितान्त है महान् है उस महान् वैज्ञानिक के द्वार पर जाने का हमारे द्वारा कोई यन्त्र नहीं है। वह केवल एक यन्त्र अगर कोई है तो हमारी वाणी है वेदान्त, उसका मन्थन किया हुआ गौ धृत है उसको अपनाते

हुए उस यन्त्र पर विराजमान होकर के हम प्रभु के द्वार पर जा सकते है। माता अपने प्यारे पुत्र को उसी काल तक अपने हृदय में धारण करती है जब तक बेटा! इसके अनुकूल है और जब वह प्रतिकूल हो जाता है प्रकृति के आवेशों में हो जाता है तो माता से दूरी हो जाता है। इसी प्रकार बेटा! प्रभु मानव को उसी काल में अपनाता है जब वह उसके अनुकूल अपने आचरणों को बना लेता है उसके अनुकूल बन जाता है। (पन्द्रहवाँ पुष्प, झांवला, बरेली) 23 अगस्त, 1981)

उच्चारण करना केवल यह है कि मानवीय विज्ञान परम्परा से ऊँचा रहा है। परन्तु जब भौतिक-विज्ञान में आध्यात्मिकवाद की पुट नहीं होती, धर्म की मर्यादा नहीं होती, आध्यात्मिक विज्ञान नहीं होता तो उस विज्ञान को कोई निगलने वाला नहीं होता क्योंकि भौतिक-विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान का भोजन होता है। इसलिए हमारे ऋषि मुनियों ने यज्ञों को बहुत ही प्रधानता दी है और यह कहा है कि मानव को यज्ञ करना चाहिए क्योंकि यज्ञ के द्वारा आध्यात्मिकवाद से उसका मिलान होता है। इसलिए भौतिक विज्ञान उस आध्यात्मिकवाद का भोजन बन करके इस प्रवाह को शान्त किया जाता है। (सोलहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 4 अगस्त, 1971)

जब भीम और भीम के पुत्र घटोत्कच्छ दोनों विज्ञानशाला में विराजमान होते थे। विज्ञानवेत्ता बनकर के नाना प्रकार के अणुओं पर अपना आधिपत्य करते थे। भीम और उनके पुत्र घटोत्कच्छ ने एक

यन्त्र बनाया था जिसको ''चन्द्र विप्रति यन्त्र'' कहते थे। मानो यह यन्त्र चन्द्रमा के उपरले कक्ष में भ्रमण करने वाला था। आधुनिक काल का तो मुझे प्रतीत नहीं परन्तु मुझे द्वापर का काल भलीभांति स्मरण है। परन्तु जब वैज्ञानिक इस चन्द्रमा के कक्ष के ऊपरले भाग में पहुँचेंगे, तो वहाँ भीम और घटोत्कच के जो यन्त्र आज भी भ्रमण कर रहे हैं उन्हें देखेगें। उन्होंने लगभग इक्कीस प्रकार के मन्त्रों को अन्तरिक्ष में अप्रेत किया था। (उन्नीसवाँ पुष्प, लोधीपार्क, 20 मार्च, 1972)

भीम घटोत्कच की अन्य विज्ञानशालाएँ

द्वापर के काल में जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है वहाँ से लगभग पचास योजन की दूरी पर एक आश्रम था। जिस आश्रम में घटोत्कच और भीम दोनों अपनी विज्ञानशाला में विद्यमान रहते थे एक विज्ञानशाल उनकी इस स्थली पर थी, उनकी एक विज्ञानशाला वारणावत क्षेत्र में कहलाती थी। परन्तु उनकी एक विज्ञानशाला समुद्रतट पर भी रहती थी, जहाँ वे प्रायः अनुसंधान करते थे और अनुसन्धानशालाओं में विद्यमान हो करके अपने यानों का प्रादुर्भाव करते थे। उनके नाना यन्त्र चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में गति कर रहे हैं। आज के वैज्ञानिकों के वायुमण्डल में जो यान गति कर रहा है उसकी अधिकतम तीन हजार वर्षो की आयु है और घटोत्कच का यान जो गति कर रहा है। उसकी आयु एक लाख पिच्चासी हजार वर्ष

है। वह इतने वर्ष चन्द्रमा की परिक्रमा करता रहेगा। वह विज्ञान इतना शक्तिशाली है कि जब आज के विज्ञान से उसका मिलान किया जाता है। तो यह विज्ञान नष्ट होने के तुल्य माना जाता है और उस काल के यन्त्र का आज का वैज्ञानिक कुछ नहीं कर पाता, इस प्रकार की शक्तिशाली धातु है। आधुनिक जगत् के पृथ्वी मण्डल के वैज्ञानिकों का यान जब चन्द्रमा के कक्ष में गति कर रहा था और जब मानव कक्ष में जाने वाला था तो वह जो घटोत्कच्छ का यान था। दोनों का समन्वय हो गया तो उस यान को नीचे लाना पड़ा और घटोत्कच का यान चन्द्रमा के कक्ष में गति करता रहा। (तैतिसवाँ पुष्प, ग्राम ताजपुर, बुलन्दशहर)

बारमूड़ा के रहस्य का पटाक्षेप

महाराजा घटोत्कच, भीम श्वेतवाचक, बर्वरीक, और बभ्रुवाहन पाँचों ने एक यन्त्र का निर्माण किया था और समुद्र में आज भी उसकी छाया आती रहती है। आज से पाँच हमार पाँच सो वर्ष पूर्व इस यन्त्र का निर्माण हुआ था और वह यन्त्र अन्तरिक्ष में विद्यमान है। आधुनिक काल में यहाँ के वैज्ञानिकों का यन्त्र जब गति करता है और उसकी छाया में आ जाता है तो उस यन्त्र का एक एक अंकुर भी नहीं रह पाता, वह इस प्रकार का यन्त्र है। समुद्रों के तटों पर वैज्ञानिकों का समाज एकत्रित होता है। वह विचारता है कि यह कोई देव की ही कृति है। कोई कहता है, कि यह पूर्वकाल के वैज्ञानिकों

का क्रिया-कलाप है। आधुनिक काल में इस प्रकार के मन्त्रों का निर्माण नहीं हो सका है, जो उस यन्त्र की अग्नि को अपने यन्त्र की अग्नि से समावेश करा सके। परन्तु प्रत्येक राष्ट्र के वैज्ञानिक यहाँ लगे हुए हैं कि हम उस समुद्र के तट वाले विज्ञान को जानना चाहते हैं। परन्तु यह यन्त्र ऐसा है कि उसकी जहाँ भी छाया जाती है, चाहे वह जल में जाने वाला यन्त्र हो, चाहे वायु में गति करने वाला हो, जहाँ भी उसकी छाया आ गई वहाँ वह यन्त्र समाप्त हो जाता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिक को यह भी प्रतीत नहीं हुआ है कि वह जो हमारा यन्त्र भस्माभूत हो गया है उसका हम एक अंकुर प्राप्त कर लें। वह मौन हो जाते हैं। (छियालिसवाँ पुष्प, ग्राम खतौला, 14 अक्टूबर, 1984)

आधुनिक काल के जो भौतिक विज्ञानवेत्ता है वह समुन्द्र तट पर किसी-किसी काल में अपनी सलाह करते हैं। कि समुद्र के आंगन में दक्षिणी भू में एक स्थली इस प्रकार की है कि वहाँ जैसे ही भौतिक वैज्ञानिकों का यन्त्र गया वह यन्त्र समाप्त हो जाता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों का ऐसा मत है कि पूर्व काल के वैज्ञानिकों की यहाँ कोई स्थली बनी हुई थी। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि अन्य लोकों की किरणों कुछ इस प्रकार की आती है जो मन्त्रों को भस्मीभूत कर देती हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि समुद्र में एक अग्नि का भण्डार है जिसमें किसी काल में तरंगों का जन्म होता है। विषैली

तरंगों का जन्म हो करके वह यन्त्र को भस्मीभूत कर देता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिकों के सहस्रों यन्त्र अग्नि के मुख में चले गये है और आधुनिक काल के वैज्ञानिकों को प्रतीत नहीं हो रहा है कि मेरा यन्त्र कहाँ चला गया है? वह अग्नि के मुख में चला गया है या समुद्र की आन्तरिक गति में चला गया है या उसके अवशेष ऊर्ध्वा में गति कर गये है।

महाभारत काल में घटोत्कच और बर्बरीक ने भगवान् कृष्णा की सहायता से एक ऐसा यन्त्र पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच स्थिर कर दिया था जो इतना शक्तिशाली है कि उसकी छाया समुद्र में एक स्थान पर जा रही है। जो यान उस छाया के अन्तर्गत आ जाता है उसका एक अंकुर भी नहीं रहता। (छियालिसवाँ पुष्प, कासिमपुर खेड़ी, 14 अक्टूबर, 1984)

लगभग सहस्रों यन्त्र इस प्रकार के हैं जो इस अग्नि के मुख में चले गए हैं और आधुनिक वैज्ञानिकों को यह प्रतीत नहीं हो रहा कि वह मेरा यन्त्र कहाँ चला गया? वह अग्नि के मुख में चला गया या समुद्र की आन्तरिक गति में चला गया है या उसके अवशेष ऊर्ध्वा में गति कर गए है? दक्षिण ध्रुव के आँगन में एक स्थली है जहाँ जाने पर यन्त्र समाप्त हो जाते हैं। मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि द्वापर काल के कुछ वैज्ञानिकों की एक स्थली बनी हुई है। वहाँ एक यन्त्र विद्यामन है। (छियालिसवाँ पुष्प, मोदीनगर, 13 नवम्बर, 1983)

भगवान् कृष्णा, का भीम, घटोत्कच और भी जैसे महाराजा अर्जुन के पुत्र वभ्रुवाहन हुए, अर्जुन हुए और भी नाना वैज्ञानिक जैसे द्रोणाचार्य उनका विज्ञान बहुत ही विशाल रहा था। जब संग्राम होता था तो उन्होंने अपने मन्त्रों को चन्द्रमा के कक्ष से भी ऊपरी भाग में त्याग दिया। वे आज भी वहाँ भ्रमण कर रहे हैं। यह कोई आश्चर्य नहीं। यहाँ परम्परागतों इसी प्रकार का विचार रहता रहा है। यन्त्रलयों की परम्परागतों में भी प्रायः इसी प्रकार की धाराएँ रमण करती रही हैं। मन्त्रों के द्वारा संग्राम को दृष्टिपात् करना उनको कही से कहीं स्थान्तरित करना यह सदैव ही हमारे यहाँ रहा है। हमारे तो वैदिक साहित्य में इसकी मौलिकता प्राप्त होती रही हैं और यह हमारा जन्म सिद्ध अधिकार रहा है। चन्द्रमा से ऊपरले जो मण्डल हैं, द्वापर काल के भीम और घटोत्कच के यन्त्र अब तक वहाँ रमण कर रहे हैं। उससे ऊपर भी रमण कर रहे है। उन्होंने इससे ऊँचे अप्रत्यक्ष लोकों पर यन्त्र रमण कराया जिसको हमारे यहाँ ऋषि क्रातकेतु यन्त्र कहा जाता है जो सूर्य मण्डल के कक्ष से ऊँचा भ्रमण कर रहा है। (सोहलवाँ पुष्प, जोरबाग, 4 अगस्त, 1972)

भीम और उनके पुत्र घटोत्कच और एक व्रणीही नाम के वैज्ञानिक थे, जिनका यहाँ अनुसन्धान होता रहता था। भीम ने ऐसे मन्त्रों का निर्माण किया था जो यन्त्र वायुमण्डल में भ्रमण करते रहते हैं। आधुनिक काल में भी बहुत से यन्त्र जो भीम ने अन्तरिक्ष में त्याग

दिए थे, वह भ्रमण कर रहे हैं। (चित्त की वृत्तियों का निरोध, बरनावा, 8 मार्च, 1987)

भीम और घटोत्कच दोनों वैज्ञानिक अपनी विज्ञानशाला में विराजमान होते थे और मन्त्रों का निर्माण करके वायु मण्डल में त्याग देते थे। चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष के विभाग में वर्तमान के काल में आज भी वह यन्त्र परिक्रमा कर रहे हैं चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में गति कर रहे हैं। परिणाम क्या कि नाना प्रकार के प्राणत्व मनस्त्व को जानकर के मन्त्रों का निर्माण कर देते थे। उसमें इतनी प्राण शक्ति को परिणत कर देते थे कि यंत्र बनाकर के करोड़ों वर्षो का यान वैज्ञानिक निर्मारिणत कर देते थे। (इक्तिसवाँ पुष्प, कर्णवास, 6 जून, 1976)

इस स्थली (बरनावा) पर महाराणा भीम और घटोत्कच की एक विज्ञानशाला रही है। इस विज्ञानशाला का जितना भाग था, वह नदी के प्रवाह में नष्ट हो गया। यहाँ उनके विश्वविद्यालय में, उनकी यत्र षाला में नाना प्रकार का अनुसन्धान होता रहा। (अड़तिसवाँ पुष्प, बरनावा, 6 मार्च, 1982)

परमाणु शक्ति निरोधक यन्त्र

आज परमाणु शक्ति का प्रयोग होने जा रहा है परन्तु जब वह प्रयोग होगा तो मानव श्वास लेने से ही समाप्त हो जाएगा। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महाभारत में परमाणु शक्ति का

संग्राम हुआ था तो घटोत्कच के द्वारा जलाशय से बना हुआ एक यन्त्र ऐसा था जिसका चन्द्रमा की सहायता से परमाणु ले करके निर्माण हुआ था, जिससे अग्नि अस्त्र वहीं समाप्त हो जाते। वह 'नृसिचन्द्रव्राति' यन्त्र कहा जाता था। यह विज्ञान भी आधुनिक काल में अधूरेपन में रमण कर रहा है। (अश्वमेघ याग और चन्द्रसूक्त, बरनावा, 24 फरवरी, 1991)

आचार्यो ने कहा है कि जिसका जितना व्यापक शब्द होता है उसका चित्र भी उसके साथ उतना ऊर्ध्वा में चला जाता है। भीम के पुत्र घटोत्कच ने एक ऐसा यन्त्र इस शब्दावली से जाना था। मानों जिससे परमाणुओं को जानकरके एक शब्द से ही मानो श्रोत्रों के एक रस के बिन्दु से मानव का सर्वांश चित्र आ जाता था। वैज्ञानिकजनों ने कहा है कि एक रक्त का बिन्दु है परन्तु उस बिन्दु से वैज्ञानिकजन शब्द की प्रतिभा उसमें लाते हैं। शब्द का मिलान करते हैं तो जिस मानव का वह रक्त है उसी मानव का चित्र मन्त्रों के द्वारा आ जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है 'ब्रह्मे लोकं प्रभा अस्ति सुप्रजा' द्वापर के काल में संजय हस्तिनापुर में कुरुक्षेत्र की वार्ता को प्रत्यक्ष प्रकट कर रहा था। इसके मूल में कारण क्या था? क्योंकि 'रक्तं ब्रह्मे' शब्दात् ब्रह्मे लोकं प्रभा अस्ति सुप्रजाः उन्हीं शब्दों को ग्रहण करने वाला उनका चित्र भी उनके साथ आता था मानों वह स्वतः ग्रहण होता रहता था। (चौदहवाँ पुष्प, फिरोजपुर, पंजाब, 13 अगस्त,

1980)

मुनिवरो! भौतिक विज्ञान यह कहलाता है कि जिसमें नाना प्रकार के प्रकृति के अणुओं को महाअणुओं को एकत्रित किया जाता है और उनसे नाना प्रकार के मन्त्रों का आविष्कार किया जाता है, जिस प्रकार द्वापर काल में भीम के पुत्र घटोत्कच ने, अर्जुन ने और महाराज कृष्णा ने बड़े-बड़े मन्त्रों का अविष्कार किया। आज हमें उस भौतिक विज्ञान को भी जानना है। (चतुर्थ पुष्प, जम्मू, 19 अप्रैल, 1964)

द्वापर काल में नाना वैज्ञानिक नाना लोकों की यात्रा करते थे। जैसा मैंने इससे पूर्व शब्दों में वर्णन किया है। मुनिवरो! देखो, महाराजा अर्जुन ने मंगल मण्डल की यात्रा करते समय वैज्ञानिक बन गये। देखो, भीम के पुत्र घटोत्कच थे, वह शुक्रमण्डल की यात्रा करते थे। जैसे मंगल की यात्रा अर्जुन करते थे उसी प्रकार शुक्र की और चन्द्रमा की यात्रा हमारे यहाँ घटोत्कच इत्यादि किया करते थे। भगवान् कृष्णा शुक्र और घृति इन दो लोकों की यात्रा किया करते थे। (सत्राहवाँ पुष्प, शामली, 17 दिसम्बर, 1969)

महात्मा विदुर का संसार

मुनिवरो! द्वापर काल में एक समय महात्मा विदुर महाराजा धृतराष्ट्र के द्वार पहुँचे। महाराजा धृतराष्ट्र ने उनका ऊँचा स्वागत किया और कहा कि हे महात्मा विदुर! मुझे वर्णन कराइए कि आज का

संसार कैसा है? महात्मा विदुर बोले कि महाराज! आज का संसार बड़ा विलक्षण है। यह एक भंयकर वन है जहाँ भंयकर अग्नि प्रज्वलित है और सिंह व हाथी अपनी ध्वनि कर रहे है। मनुष्य इन्हें विचारता है तो वहाँ से भयभीत होकर तीव्र गति से अपने स्थान को आने लगता है और वह एक वृक्ष पर आ जाता है जो जलाशय के तट पर है। यहाँ देखता क्या है, कि जलाशय से एक सर्प उसके निकट आता चला जा रहा है, वह उस सर्प से भयभीत होने लगता है और देखता क्या है कि जिस वृक्ष पर विराजमान है उस को छः मुखों वाला हाथी निगलता चला जा रहा है और इस हाथी को भी एक सफेद वर्ण वाला और एक काले वर्ण वाला चूहा काटते चले जा रहे हैं। आगे और गम्भीरता से देखता है कि जिस वृक्ष पर वह विराजमान है उस पर मधु छत्ता है और मधु गिर रहा है, और मनुष्य उसके आनन्द में मग्न है। महाराजा! यह है आज के संसार का मनुष्य।

महाराजा धृतराष्ट्र ने कहा कि इसको मुझे अच्छी प्रकार वर्णन कराईए। इसका स्पष्टीकरण करते हुए विदुर ने कहा कि जब मनुष्य माता के गर्भस्थल में रहता है तो वह भयंकर वन में है जहाँ प्राणरूपी हाथी अपनी ध्वनियां कर रहे है और प्राणरूपी अग्नि प्रज्ञवलित हो रही है। उस समय यह मनुष्य प्रभु से याचना करता हुआ इस संसार सागर रूपी वृक्ष पर आ जाता है। इसके पश्चात् वह देखता है कि सर्प रूपी मृत्यु उसके निकट चली आ रही है, और

गम्भीरता से देखता है तो क्या? कि छः मुखों वाला हाथी इस वृक्ष को निगलता चला जा रहा है। वह छः मुखों वाला हाथी एक वर्ष है जिसमें ऋतुएँ बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् हेमन्त और शिशिर हैं, जो इस संसार रूपी वृक्ष को निगलता चला जा रहा है। और गम्भीरता से देखता क्या है कि इस छः मुखों वाले हाथी को श्वेत व काले वर्ण वाले दो चूहे काटते जा रहे हैं। यह श्वेत व काले वर्ण वाले चूहे दिन और रात है। इसके पश्चात् और भी गम्भीरता से देखता है, काम, क्रोध, मद लोभ और मोह रूपी मधु छत्ता है जिस छत्ते के आनन्द में यह मनुष्य मृत्यु को भूल बैठा है।

तो मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! मेरे प्यारे भद्र मण्डल! आज मानव को ऊँचा बनना है, तो इस मधु रूपी छत्ते को शान्त करना है, मृत्यु जो शनैः-शनैः तुम्हारे निकट आ रही है इससे बचने के लिए तुम्हें ज्ञान रूपी प्रकाश को पाना है। (चतुर्थ पुष्प, कोटली जम्मू, 21 अप्रैल 1964)

युद्ध न हो, इसका अन्तिम प्रयास

बेटा! मुझे द्वापर का वह काल स्मरण है जब महाभारत संग्राम के लिए सामग्री एकत्रित हो रही थी। महाराजा युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण को कहा कि महाराजा दुर्योधन की मति प्रभु ने हर ली है, उसके समीप जाइये और वाक्य उच्चारण कीजिए। शायद वह आपके वाक्य स्वीकार कर ले। भगवान् कृष्ण उसके द्वार पर जा पहुँचे तो

महाराजा दुर्योधन ने इनका बड़ा आदर किया। भगवान् कृष्णा शान्त मुद्रा में विराजमान हो गए। दुर्योधन ने कहा ''कहिए भगवन्, आज आपने कैसे कष्ट किया?'' भगवान् कृष्णा ने कहा, ''भई, हमारी इच्छा यह है कि तुम इस राज्य में से कुछ राज्य पाण्डवों को अर्पित कर दो। वह भी अपने जीवन की पूर्ति कर लेंगे।'' उस समय दुर्योधन ने कहा, ''भगवन्! मैं आपके वाक्यों को नष्ट नहीं करना चाहता परन्तु राष्ट्र में इस प्रकार के विभाजन नहीं हुआ करते है। जहाँ राष्ट्र का विभाजन हो जाए तो वहाँ कुछ नहीं रहता। आप राष्ट्र का विभाजन न कराइये। कृष्णा ने कहा, ''नहीं-नहीं, हम राष्ट्र का विभाजन नहीं कराना चाहते, परन्तु उन्हें कुछ अर्पित कीजिए जिससे वह भी अपने जीवन की पूर्ति करते चले जाएँ।'' दुर्योधन ने कहा कि जितने स्थान में मानव का एक केश आता है उतनी भूमि भी उन्हें प्रदान नहीं की जाएगी।''

मुनिवरो! कृष्णा ने बहुत कुछ कहा, परन्तु इस वाक्य के उच्चारण होते ही उन्हें प्रतीत होने लगा कि अब समय आ गया, जब यहाँ अग्नि प्रदीप्त होगी। भगवान् कृष्णा ने कहा, ''अच्छा दुर्योधन जैसी तुम्हारी इच्छा, परन्तु अग्नि अवश्य प्रदीप्त होने जा रही है।'' दुर्योधन ने उन्हें कुछ कटु शब्द कहा। गोचर कहा, गऊ को चराने वाला कहा और दुष्ट कहे, भगवान् कृष्णा मग्न हो गए। दुर्योधन ने उनके लिए नाना प्रकार की खान-पान की सामग्री एकत्र की। परन्तु भगवान्

कृष्ण ने कहा राजन्! मैं इस अन्न को नहीं पाऊँगा।'' उन्होंने (दुर्योधन) कहा 'क्यों?' (भगवान् कृष्ण ने कहा) 'रक्षां ब्रह्म वाचाः अन्नदि गुप्तानि भूषणं ब्रह्मणे'' तुम्हारा यह अन्न तुम्हारी भावनाओं से दूषित हो चुका है। यह अन्न मुझे भी दूषित करेगा।'' दुर्योधन ने बहुत कुछ कहा, परन्तु वहाँ नाना प्रकार के भोजन का त्याग करके, कृष्ण, महात्मा विदुर के स्थान पर जा पहुँचे, जो स्वयं अन्न से पीड़ित रहते थे। वे मार्ग से शाखा लाते और उसका भोजन बना करके दोनों प्राणी पान करते। भगवान् कृष्ण ने वह भोजन मग्न होकर के पान किया और पान करके वहाँ से चले। बेटा उनके जीवन में कितनी अमूल्य धारायें थी आज हमें उन धाराओं को अपनाने के लिए प्रयत्नशील रहना है। (आठवाँ पुष्प, सीताराम बाजार, दिल्ली, 11 मई, 1967)

दोनों पक्षों को सहायता

जब महाभारत का संग्राम होने लगा, संग्राम के लिए दोनों पक्ष भगवान् कृष्ण से सहायता लेने के लिए चले। एक स्थान से अर्जुन चले और दूसरे स्थान से दुर्योधन। महाराजा दुर्योधन अभिमान से संलग्न महाराजा कृष्ण के सिर के आँगन में विराजमान हो गए और अर्जुन पश्चात् पहुँचे और वह उनके चरणों में नतमस्तक हो गये। भगवान् कृष्ण निद्रा में तल्लीन वे। निद्रा से जब वह जागरूक हुए तो उन्होंने प्रथम अर्जुन को दृष्टिपात् किया और पूछा कहो, अर्जुन किस प्रकार आये हो? आज क्या कार्य हो गया? दुर्याधन ने कहा भगवन् में

भी आया हूँ, आपके द्वारा। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर बोलो, क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि भगवन् हम संग्राम के लिए सहायता चाहते हैं, हमें सहायता दो। महाराज कृष्णा ने कहा परन्तु, प्रथम जो मांग है वह अर्जुन की होगी। उन्होंने (दुर्योधन ने) कहा प्रथम तो मैं आया हूँ। भगवान् कृष्णा ने कहा कि यह तो मैं नहीं जानता परन्तु सबसे प्रथम मुझे अर्जुन के दर्शन हुए है। देखो, एक स्थान में तो केवल मैं हूँ और एक स्थान में मेरी सर्वस्व सेना है, अब जो चाहते हो ले जाओ। महाराजा अर्जुन ने यह विचारा कि मैं सेना का क्या करूँगा जब मेरे द्वारा जनार्दन आ जायें तो उन्होंने कहा कि भगवन्! मैं तो आपको चाहता हूँ। दुर्योधन बड़ा मग्न हो गया कि सर्वस्व सेना मुझे युद्ध करने के लिए प्राप्त हो गयी, इनका मैं क्या करूँगा क्योंकि इन्होंने तो शस्त्र भी नहीं उठाना।

बेटा! जो प्राणी इतना त्यागी और तपस्वी-होता है, वह महाभारत जैसे संग्राम को बिना अस्त्रो-षस्त्रों के करा सकता है। मुझे उनका वह तप भी स्मरण आता रहता है। जब वह यह विचार कर चले कि पाण्डवों को कुछ न कुछ उनकी जीविका के लिए दिलवा दूँ तो उस समय हस्तिनापुर के क्षेत्र में दुर्योधन ने कहा था कि हे ग्वाले! कैसे आए हो। उन्होंने (भगवान् कृष्णा) कहा कि मैं इसलिए आया हूँ कि तुम पाण्डवों को कुछ तो अर्पित कर दो। उन्होंने (दुर्याधन) कहा कि मैं कुछ अर्पित नहीं करूँगा। पृथ्वी का एक अंकुर भी उन्हें प्राप्त नहीं

कराया जा सकेगा। मुनिवरो! उन्होंने बहुत कुछ वाक्य प्रकट किया परन्तु वह एक रस रहे। तपस्या का बल कितना महान् होता है। राष्ट्र में ऊँचे-ऊँचे भोजनालयों को त्याग करके महात्मा विदुर के यहाँ जाकर के साधारण से पदार्थो को पान कर लिया। यह है तपस्या, जब मानव तपस्वी बनता है तो उसमें तपस्या का बल होता है। वह महान् से महान् सम्राट को नीचे गिरा देता है और तपस्वी का जीवन संसार में महानता को प्राप्त हो जाता है। (दसवाँ पुष्प, उज्ञैन, कुम्भ, 10 मई, 1968)

संजय को दिव्य दृष्टि

भगवान् कृष्ण महाराजा धृष्टराष्ट्र के जब द्वार पर पहुँचे तो उन्होंने कहा महाराज कुछ चाहते हो? उन्होंने कहा ''हे कृष्ण 'मैं' और कुछ नहीं चाहता हूँ। परन्तु एक ऐसा यन्त्र चाहता हूँ जिससे महाभारत के संग्राम को मैं स्वयं दृष्टिपात् कर सकूँ'' उन्होंने कहा ''आप तो प्रज्ञाचक्षु हैं।'' धृतराष्ट्र ने कहा'' मेरे महामन्त्री जो संजय है यह मुझे प्रकट कराते रहे, ऐसा मैं चाहता हूँ। तब उन्होंने वह चित्रावली दी जिसके द्वारा कुरुक्षेत्र में जो प्रायः संग्राम होता रहता था उसका चित्रण उन्हें प्रायः आता रहता था और संजय उनसे दृष्टिपात् करके अपनी वाणी से धृतराष्ट्र को उच्चारण करता रहता था। (चौबिसवाँ पुष्प, लाजपत नगर, नई दिल्ली, 17 अगस्त, 1978)

द्वापरकाल में महाराजा धृतराष्ट्र ने संजय से कहा कि हे संजय!

मैं महाभारत के संग्राम का वृतान्त जानना चाहता हूँ। उस काल में संजय ने संग्राम देखा। आज कोई तो कहता है कि भगवान् कृष्ण ने उसे दिव्य नेत्र दिए। परन्तु वह दिव्य नेत्र नहीं कहा जाएगा, भगवान् वह भौतिक रूप का एक विज्ञान कहा जाएगा। यदि आज हम आध्यात्मिकता से सोचें, तो जो भी वृतान्त मन्त्रों के द्वारा आता है वह मानव के नेत्रों में आ जाता है। इसी प्रकार हमारा या महानन्द जी का आत्मा है और भी ऋषियों की आत्मा है, जिन्हांने इस आध्यात्मिक विज्ञान को जाना है, वह जानते है कि आत्माओं का कैसा संगठन होता है। उनकी वाणी कहाँ की कहाँ चली जाती है। आपत्तिकाल होने के कारण यह शरीर एक प्रकार का यन्त्र(आधुनिक रेडियों) बनाया गया। सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं का एक महान् सत्संग रूप हो करके उसकी वाणी हमारे शरीर द्वारा आने लगती है। यह वाणी किस प्रकार प्रकट होती है? एक शरीर में दो आत्माएँ नहीं, परन्तु आत्मा का उत्थान हो करके सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं का एक महान् सत्संग रूप हो करके उसकी वाणी हमारे शरीर द्वारा आने लगती है। यह वाणी किस प्रकार प्रकट होती है? एक शरीर में दो आत्माएँ नहीं, परन्तु आत्मा का उत्थान हो करके सूक्ष्म शरीर वाली आत्माओं से सत्संग हो जाता है। उस सत्संग की वाणी हमारे शरीर द्वारा मृत-मण्डल में प्रगट होने लगती है, जैसा भोगवश हमें भोगना है।

जिस मानव ने इस रहस्य को जानना है, उसे सबसे पूर्व गम्भीर बनना है, अपनी त्रुटियों को त्यागना है, निर्भिमानी बनना है, यौगिक क्रियाओं को जानना है, अपने आध्यात्मिक विज्ञान को जानना है। केवल भौतिक विज्ञान से काम न बनेगा। भौतिक विज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक विज्ञान को जानना होगा। जो आध्यात्मिक विज्ञान के व्यक्ति हांगे वह इस रहस्य को सहज में जान आएंगे। (तृतीय पुष्प, पहाड़ गंज, नई दिल्ली, 6 दिसम्बर, 1962)

द्वापर काल में धृतराष्ट्र ने संजय से कहा था कि हे संजय! आज मेरे पुत्र और पाण्डव पुत्र कुरुक्षेत्र में संग्राम की स्थिति में है मुझे उनका वर्णन कराते चले जाओ, मैं उनको नेत्रों से नहीं देख सकता। वह क्या था? पूर्वकाल में उसको स्वाधिविद्यानम् मम वन्नते वर्णोति वचतां भवति कच्ताः, उसको 'चित्रावली विद्यानम् यन्त्र' कहते थे। उस यन्त्र का तारतम्य जब कुरुक्षेत्र से मिलान करा दिया तो उस तारतम्य के द्वारा उन चित्रों का अनुकरण किया जा रहा है, उनकी वाणी भी है। तारतम्य के द्वारा वहाँ जो कुछ होता था, संजय महाराजा धृतराष्ट्र को सब वर्णन कर दिया करते थे। मेरे प्यारे महानन्द जी का कथन है कि संजय को भगवान् कृष्ण ने दिव्य नेत्र दिये। कदापि नही, वह दिव्य नेत्र नहीं थे परन्तु प्रकृति से जाना हुआ एक यन्त्र था जो भौतिक विज्ञान से जाना जाता है।

पूज्य महानन्द जीः गुरु जी! आधुनिक काल में उसको और कुछ

कहते हैं। वास्तव में अभी उसका इतना तारतम्य तो नहीं हुआ जितना आप उच्चारण कर रहे है। इन मन्त्रों का कुछ विकास तो किया है और अभी तक चल रहा है, पूर्ण रूप से विकास नहीं हुआ है।

पूज्यपाद गुरुदेवः चलो बेटा! आधुनिक काल में उस यन्त्र को कुछ कहते हैं परन्तु पूर्व काल में जो कहते थे वह मैंने वर्णन किया। मुझे इसका प्रमाण देने की क्या आवश्यकता थी? इसका नाम है भौतिक विज्ञान और यह है आध्यात्मिक विज्ञान। जिसका मनोहर तारतम्य है वह किसी भी आत्मा से मिलान कर सकता है। उसका तारतम्य यहाँ भी है और वहाँ भी है। जहाँ उन विचारों वाला यन्त्र होता है वहाँ यह यन्त्र उनको धारण कर लेता था। (चौथा पुष्प, रानीबाग, नई दिल्ली, 19 जुलाई, 1964)

संजय को भगवान् कृष्ण ने जो एक यन्त्र दिया था वह यन्त्र कैसा था कि महाभारत का जो संग्राम था मानो उसका चित्राण उस यन्त्र मे आ रहा था। वही यन्त्र था बेटा, जो महाराजा धृतराष्ट्र को संग्राम की सब वार्ता प्रकट करा रहा था। एक-एक कण में, इस अग्नि की धाराओं में इस संसार का सूक्ष्म चित्राण रहता है। सूक्ष्म रूपों से परमाणु विचरण करता रहता है। वही परमाणुवाद वायु में, अन्तरिक्ष मे ओत-प्रोत रहता है। इसलिए इन परमाणुओं से इस यन्त्र का निर्माण होता है। मानो उन्हीं परमाणुओं से यह भरण हो रहा है।

(सोलहवाँ पुष्प, लोधीरोड, नई दिल्ली 29 मार्च, 1972)

अम्बरीक को युद्ध से अलग करना

महाराजा अम्बरीक जो द्वितीय राष्ट्र के राजा थे परन्तु वह भी महाभारत का संग्राम देखने आ पहुँचे। उस समय उन्होंने महाराजा कृष्ण से सम्बन्ध स्थापित किया, तो महाराजा कृष्ण ने पूछा, भगवन्! आप कहाँ को विराज रहे हैं। उस समय अम्बरीक ने कहा, मैं तो महाभारत का संग्राम देखना चाहता हूँ। भगवान् कृष्ण ने पूछा, ''तुम संग्राम देखना ही चाहते हो या संग्राम भी करोगे?'' महाराज! मैं संग्राम भी अवश्य करूँगा यदि अवसर मिला। (भगवान् कृष्ण) तुम्हारा अवसर कौन-सा है? अम्बरीक ने कहा, ''जिस पक्ष में हानि होगी वही मेरा पक्ष होगा और वही मेरा अवसर होगा।'' महाराज कृष्ण ने कहा, तुम्हारे द्वारा क्या प्रमाण है कि तुम हानि वाले पक्ष मैं संग्राम करोगें?'' महाराज! अपने जीवन में मैंने और मेरे एक वैज्ञानिक ने तीन मन्त्रों की खोज की है। जिसमें एक यन्त्र ऐसा है कि एक ही प्रहार से दोनों पक्षों की सेना समाप्त कर वह यन्त्र मेरे पास आ जाएगा।'' उस समय महाराजा कृष्ण ने अर्जुन से कहा, अरे भाई! यह तो संग्राम न होने देगा, हमे क्या करना चाहिए? महाराज कृष्ण ने नीतिज्ञ होने के नाते कहा, जब तुम इतने बड़े बलवान हो, इतने बड़े वैज्ञानिक हो तो तुम दान कितना दे सकते हो? उस समय उसने कहा, जितना भी आप आज्ञा करेंगे वह ही मैं दान देने के लिए

उद्धत हो जाऊँगा।'' महाराजा कृष्णा ने कहा तो भई हमें दान देना है तो अपने सिर का दान दे दो। उस समय अम्बरीक ने कहा, वास्तव में मैंने अपने कण्ठ से ऊपर का भाग आपको दान दे दिया। परन्तु मैं संग्राम देखना चाहता हूँ। ''उस समय योगेश्वर कृष्णा ने कहा अच्छा, तुम संग्राम को देखो परन्तु तुम्हारा जो कण्ठ है वह हमारा हो चुका है। अब तुम्हारे भुज समाप्त हो चुक हैं इनसे कार्य करना अब तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है।'' उस समय महाराजा अम्बरीक ने ''तथास्तु'' कह कर कहा, महाराज मैं अपना सिर आपको दे चुका हूँ। तब महाराज कृष्णा ने उसके लिए एक ऊँचा स्थान बनवाया जिस पर विराजमान होकर वह महाभारत का संग्राम देख सके। (तृतीय पुष्प, सरोजनी नगर, नई दिल्ली 9 मार्च, 1962)

कर्ण वध

जब कर्ण और अर्जुन दोनों का संग्राम हुआ और महाराजा शल्य को कर्ण का सारथी नियुक्त किया गया तो उस समय भगवान् कृष्णा और अर्जुन को यह प्रतीत हुआ कि शल्य कर्ण का सारथी बन रहा है। कर्ण का सारथी कौन है? महाराजा शल्य, जो माद्री का विधाता कहलाता था। अब दोनों, (कृष्णा और अर्जुन) को जब यह प्रतीत हुआ तो भगवान् कृष्णा और अर्जुन दोनों उनके समीप पहुँचे। उन्होंने कहा हे शल्य! तुम इस कर्ण के सारथी बन रहे हो, परन्तु तुम कर्ण के साथ क्यों अपनी आभा प्रकट कर रहे हो? महाराजा शल्प ने

कहा, अब मैं बन गया हूँ तो सारथी तो बनूँगा, परन्तु तुम जो चाहते हो उच्चारण करे। भगवान् कृष्ण बुद्धिमान थे। उन्होंने कहा, तो शल्य आप एक कार्य कर सकते हैं। आप कर्ण को साहस न देना। उनसे निराशा की वार्त्ता प्रकट करते रहना जिससे वह हताशा होते रहें। यह मेरी इच्छा है। महाराजा शल्य ने ऐसा ही किया। (तीसरा पुष्प, सरोजनी नगर, 9 मार्च, 1962)

जब कर्ण रथ में विद्यमान हुआ, तो शल्य कहता है, हे कर्ण! मुझे प्रतीत होता है कि तुम्हारी आज मृत्यु होगी। उन्होंने कहा-क्या उच्चारण कर रहे हो? मैं बलिष्ठ हूँ, अर्जुन जैसे कितने भी रथी आ जाएँ वह भी मेरे लिए कुछ नहीं हैं। पुनः फिर शल्य ने कहा, हे कर्ण! तुम्हारी मृत्यु है आज। वह उससे निराशा की वार्ता प्रकट करता रहा। संग्राम होने लगा। परन्तु वह जो रथ बह रहा था जब उनके रथों के चक्र में कुछ अप्रीति हो गई। वह अग्रणीय न बन रहे थे तो उस समय उन्होंने (कर्ण) कहा हे शल्य! रथ के जो चक्र हैं इनको बाहर करो। उन्होने कहा, मैं राजा हूँ। मैं तुम्हारा सारथी बन गया हूँ परन्तु यह मेरा कार्य नहीं है। तुम सूतपुत्र हो। जब उन्होंने ऐसा कहा तो कर्ण रथ से नीचे आकर जब चक्रों को बाहर करने लगे तो कृष्ण जी ने कहा, हे अर्जुन! अब समय है इसकी मृत्यु का। षस्त्रों की, वाणों की वर्षा होने लगी उसका शरीर छेदन होने लगा। उस समय कर्ण ने कहा, हे अर्जुन, मेरी भुजाओं मे कोई शस्त्र नहीं है

और तुम मुझे मृत्यु को पहुँचा रहे हो। उस समय भगवान् कृष्ण कहते हैं, हे कर्ण! उस समय तुम कहाँ थे जब अभिमन्यु को निहत्थे तुमने नष्ट किया। उसकी भुजाओं में भी कोई अस्त्र नहीं था। आज तुम्हें अपना शरीर, अपने प्राण इतने प्रिय हैं। अर्जुन बाणों की वृष्टि करता हुआ शान्त हो गया। कृष्ण जी बोले, हे अर्जुन। क्यों? उन्होंने कहा, इसकी भुजाओं में कोई शस्त्र नहीं है। उन्होंने (कृष्ण) कहा तुम्हारी मृत्यु आ रही है। आज तुम मृत्यु को अपने समीप लाना चाहते हो। परन्तु यहाँ शल्य कह रहा था, कर्ण मृत्यु आ गई। अर्जुन पुनः अस्त्रों की वर्षा करने लगा परिणाम यह हुआ कि कर्ण की मृत्यु हो गयी। ऐसी कौन सी आभा है जो मानव के अन्तःकरण को छेदन कर देती है। वह निराशा है। एक मानव को निराशा देते रहिए, एक प्राणी को आशा देते रहिए। निराशावादी की मृत्यु बहुत शीघ्र होती चली जाती है। जबकि आशावादी का प्राण उसका साथ देता है। ऋषियों ने इस वाक्य पर अनुसंधान किया कि निराशा में कैसे मृत्यु है और उल्लास में कैसे जीवन प्राप्त होता है? (उन्तालिसवाँ पुष्प, ग्रीनपार्क, नई दिल्ली, 12 सितम्बर, 1981)

अभिमन्यु

अभिमन्यु जब माता के गर्भ में था तो छठे माह में अर्जुन ने उन्हें चक्र व्यूह को नष्ट करने की वार्ता प्रकट की थी, जब चक्र व्यूह से बाहर आने की बात प्रारम्भ की गई तब तक माता को निद्रा आ

गई। तो चक्र-व्यूह का सर्व विज्ञान उसको (अभिमन्यु) माता के गर्भ में ही परिणत हो गया था। परन्तु उससे बाहर निकलने का नहीं। यह विज्ञान हमारे यहाँ दर्शनों में प्राप्त होता है। (छबीसवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 2 अगस्त, 1973)

श्रावणी पर्व के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पना रहती है। काल्पनिक पुरुषों में एक कल्पना यह रहती है कि जब अभिमन्यु युद्ध भूमि में संग्राम के लिए चले तो वह महामाता कुन्ती के द्वार पर पहुँचे। उन्होंने अभिमन्यु के एक भुज में एक सूत्र को सूत्रित किया और यह कहा कि जब तक यह सूत्र तुम्हारे भुजों में रहेगा तब तक युद्ध भूमि में तुम्हें कोई विजय नहीं करेगा। यह कल्पना मानी गयी है। (चौवनवाँ पुष्प, बरनावा, 30 अगस्त, 1985)

जिस समय महारानी द्रौपदी ने अपने कुटुम्बियों को और अपने पति को ले करके राष्ट्र-स्थली को त्याग दिया, अस्त्रों-षस्त्रों के भण्डार को भी अग्नि में अर्पित कर दिया। भयंकर वनों में जा पहुंचे। उस भयंकर वन में पहुँचे जहाँ वे अपने में भ्रमण करने वाले, कोई भी प्राणी होता तो उसकी रक्षा में लग जाते।

भगवान् कृष्ण उनसे थोड़ी दूर स्थली पर वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे थे। वे विज्ञान का अनुसंधान करते थे और उनके आश्रम में जहाँ अनुसंधान करते थे और भी शिक्षार्थी विद्यमान होते थे और महारानी रुक्मिणी भी रहा करती थी। महारानी रुक्मिणी भी अनुसंधान करती

रहती थी।

भगदन्त का यन्त्र से सुरक्षा

महाभारत के काल की एक वार्ता है। एक समय महाराजा भगदत्त ने एक यन्त्र से प्रहार किया। उस यन्त्र में यह था कि श्वास लेने के साथ ही सेना समाप्त होने लगी। परन्तु अर्जुन के पास एक ऐसा यन्त्र था 'सुयाती यन्त्र'' वह उन्होंने अन्तरिक्ष में त्यागा। उसका प्रभाव समाप्त हो गया, उससे सेना की सुरक्षा हो गई एक यन्त्र के प्रहार से श्वास लेने से ही प्राणी मृत्यु को जा रहा है, दूसरे यन्त्र से जब वह त्याग रहा है तो उससे प्राणी की रक्षा हो रही है। (इकतालिसवाँ पुष्प, बरनावा, 9 मार्च, 1979)

दुर्योधन को वज्र शक्ति

महाभारत काल में देवी गान्धारी जब पति गृह में प्रविष्ट हुई, तो उसने अपने पति को नेत्रों से हीन दृष्टिपात् किया। उसी समय गान्धारी ने अपने नेत्रों को वस्त्रों से ढक लिया और ज्ञानां ब्रह्मे वृत्तम् उसकी कोई ज्योति द्वितीय स्थानों में नहीं जाती थी। केवल अन्तहृदय में, आन्तरिक जगत् में ही उसकी महान् ज्योति पनपती रही। महाभारत का युद्ध समाप्त होने लगा तो धृतराष्ट्र ने यह कहा कि हे दुर्योधन। तुम माता के समीप चले जाओ और वे तुम्हारे लिए कोई न कोई उद्गीत गायेंगी। दुर्योधन ने कहा कि किस दशा में जाऊँ? उन्होंने कहा कि नग्न होकर चले जाओ। कृष्णा जी को जब यह प्रतीत हुआ

कि गान्धारी दुर्योधन को वज्रशक्ति दे रही है तो उन्होंने विचारा कि इससे तो महाभारत समाप्त हो जाएगा। तो उसी समय अर्जुन और कृष्ण ने दुर्योधन से कहा कि तुम माता के समीप नग्न जाओगे? तो देखो, दुर्योधन ने केलसुतम्, वृक्ष के पत्तों से शरीर को ढाँप लिया। वह गान्धरी के समीप पहुँचा और बोला दृष्टिपातं ब्रह्मे, हे माता! तू दृष्टिपात् कर जिससे मेरा शरीर वज्र का हो जाए, क्योंकि तूने सदैव जीवन में तपस्या की है, नेत्रों से कभी भी कुदृष्टिपात् नहीं किया है, तुम्हारे नेत्र तपे हुए हैं और तेरी जो अमूल्य ज्योति है, अग्नि का उसमें वास है, वह मेरे शरीर को अग्नि तुल्य बना सकती है। माता गान्धारी ने अपने नेत्रों से उस वस्त्र को हटा लिया दुर्योधन को दृष्टिपात् किया और कहा कि क्या, तुम्हें रास्ते में कोई प्राप्त हो गया था? दुर्योधन ने कहा कि हे माता! मुझे कृष्ण और अर्जुन का दर्शन हुआ था। गान्धारी ने कहा जाओ, तुम्हारा शरीर पूर्ण वज्र का नहीं बना। (याग मंजूषा, अमृतसर, 8 जनवरी, 1992)

अधिकार की भावना

मानव को अधिकार में परिणत नहीं होना चाहिए, अधिकार तो मानव को स्वतः प्राप्त हो जाता है। वह अधिकार मानव को उच्चारण करने से, अधिकार के लिए संग्राम करने से अधिकार कदापि प्राप्त नहीं होता उससे तो देखो, मानव में, समाज में अन्धकार की आंशका रहती है। एकस्थल है कि जो मानव नम्र है, जो मानव बुद्धिमान है,

जो मानव अपने हृदय के उद्गार चाहता है, जो संसार में उदासीन रहना चाहता है वह संसार की विडम्बना में जाना नहीं चाहता। वह नम्र बन करके सेवक बनना चाहता है। अधिकार की भावना द्वापर के काल में थी इस अधिकार की भावना ने संसार को मानवता से विचलित कर दिया।

महाभारत में परमाणु युद्ध

महाराजा कृष्णा एक रेखा को जानते थे जिसे ''सोमकृति रेखा'' कहते थे। जितने क्षेत्र में परमाणु शक्ति संग्राम होता हे, उसके मध्य में वह यन्त्र स्थिर किया गया था। उसका प्रभाव उतनी दूरी तक रहता था, जहाँ वह रेखा थी। उससे बाह्य प्राणी परमाणुवाद से नष्ट नहीं होता था। आधुनिक काल का यन्त्र वाद ऐसा है आज प्रहार कर दिया तो राष्ट्र के राष्ट्र उससे भस्म हो जाएँ। आधुनिक काल में उस रेखा का निर्माण अभी तक नहीं हुआ है। (चवालिसवाँ पुष्प, कैथवाड़ी, मेरठ, 17 अगस्त, 1983)

महाभारत का संग्राम हुआ, परमाणु जो शक्ति थी उस रेखा से बाह्य जगत् में नहीं जाती थी। परन्तु आधुनिक काल ऐसा है द्वितीय राष्ट्र अपनी विज्ञानशाला में विद्यमान है और वह मन्त्रों का प्रहार कर रहा है तो राष्ट्र भस्म हो सकता है परन्तु उसको शान्त नहीं कर सकता। (छत्तिसवाँ पुष्प, बरनावा, 23 फरवरी, 1980)

भीम की रक्षा

जो मानव परमात्मा को और उसकी विशेषता को धारण करने वाला होता है उसको 'अग्रणीय वार्ता' स्मरण आने लगती है, वह आगे की वार्ताओं को विचारने लगता है मेरे प्यारे! देखो, भगवान् कृष्ण को अग्रणीय वार्ता आती रहती थी। ऐसी ही भगवान् कृष्ण के जीवन की एक गाथा मुझे स्मरण आती रहती है। जब महाभारत का संग्राम समाप्त हो गया, कुरुक्षेत्र श्मशान स्थली बन गयी। उस समय प्राणी मात्र दृष्टिपात् करने के लिए सूक्ष्म रह गए, कौरवों के कुटुम्ब में केवल एक नेत्रहीन धृतराष्ट्र रह गया, माताएँ रह गई। पाण्डव पुत्रों ने विचारा कि अब हमें कहा गमन करना चाहिए? कुरुक्षेत्र में एक सभा हुई और युधिष्ठिर ने भगवान् कृष्ण से कहा कि महाराज! अब हम कहाँ गमन करें? उन्होंने कहा हस्तिनापुर चलो। तब युधिष्ठिर ने कहा बहुत प्रिय भगवन् गति करो। तो वहाँ से जब वह गति करने लगे तो भगवान् कृष्ण नेत्रों को अन्तर्मुखी करके चिन्तन करके बोले आज गति नहीं करेंगे। हम कल हस्तिनापुर धृतराष्ट्र के समीप जायेंगे। वे विद्यमान हो गये और अर्जुन को लेकर एकान्त स्थली में आ गए। अपने मन्त्रों में विद्यमान हो करके उन्होंने एक लोहे का भीम स्थापित कर दिया। उस लोहे के भीम को हस्तिनापुर मे एक स्थली पर स्थिर कर दिया, स्थिर करके वे पुनः कुरुक्षेत्र पहुँचे। अगला दिवस आया तब युधिष्ठिर ने कहा चलो, भगवन्!

मेरे प्यारे! पाँचों पाण्डव और भगवान् कृष्ण हस्तिनापुर आ गए।

हस्तिनापुर आने के पश्चात् अपने-अपने कक्षों में स्थिर हो करके वे अपने पितर से मिलन करने के लिए पहुँचे। महाराजा धृतराष्ट्र ने कहा हे भगवन्! हे कृष्णा! मैं उसे कण्ठ से ओतप्रोत करना चाहता हूँ, जिसने मेरे वंश को समाप्त किया है। उन्होने कहा-अच्छा, भगवन्! भगवान् कृष्णा ने धृतराष्ट्र के भाव को जान लिया। वह जो लोहे का भीम स्थापित किया था, उसे समीप कर, उन्होंने कहा कि महाराज यह है तुम्हारे वंश को समाप्त करने वाला। मेरे प्यारे, उस अन्धे नेत्र हीन धृतराष्ट्र ने लोहे के भीम को नष्ट कर दिया। उसके तीन भाग हो गए। उसके पश्चात् भगवान् कृष्णा ने अर्जुन से कहा हे अर्जुन! आज भीम का विनाश हो जाता यदि लोहे का भीम स्थापित न किया होता। भीम यदि उसके कण्ठ से लग जाता तो भीम का प्राणांत हो जाता।

मेरे पुत्रो! देखो, जो ज्ञान और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता होते है उन्हें आगे की वार्ता स्वीकार होने लगती है। उन्हें आगे दृष्टिपात् होने लगता है। (आत्मलोक 21 अप्रैल, 1979)

कृष्णा ने अर्जुन से कहा कि मैं सब प्रकृति को जानता हूँ परन्तु मुझे तो वह कर्म करना है जिससे यह संसार ऊँचा बने। (चतुर्थ पुष्प, 28 जुलाई, 1963)

१० महाराज युधिष्ठिर

मानव के जीवन में भी दो पक्ष होते हैं। एक कृष्णा पक्ष कठिनाइयों का काल है जिसका अन्त उज्ज्वल शुक्लपक्ष में होता है। शुक्लपक्ष में मानव का उत्कर्ष होता है और एक कृष्णापक्ष सदृश जिसमें अवनति हो जाती है। बेटा! आज मानव का जीवन, चन्द्रमा के शुक्लपक्ष के समान पूर्ण हुआ बैठा है, परन्तु कल प्रतीत नहीं, इसका कारण कैसे बन जाए, कौन-सा काल इसके समक्ष आए? जो मानव आज राजा बना बैठा है कल को पता नहीं भिक्षुक बन जाए। यह उन्नति और अवनति के दो भेद हैं, जो साधन रूप है, जिस पर दृढ़ता पूर्वक आचरण से, उच्च कर्त्तव्य के पालन से, वह पूर्णता को रख सकता है और सूर्य की तरह सर्वजगत् को अपने अलौकिक प्रकाश से प्रकाशित कर सकता है। जैसे युधिष्ठिर आदि को देखो, जब वे लाक्षागृह में थे वहाँ से बच गए और अपने कर्त्तव्यों पर दृढ़ रहे। उनका भाग्य कर्म उच्च था जिससे फिर महाभारत के संग्राम में विजयी हुए। आज महाराजा युधिष्ठिर, धर्मपुत्र के नाम से कहे जाते हैं यह उनके महान् उच्चकर्म की महानता थी। (प्रथम पुष्प, विनय नगर, नई दिल्ली, 6 अप्रैल, 1962)

याज्ञिक युधिष्ठिर

एक मानव ही नहीं जितना भी प्राणी मात्र है वह सर्वत्र याज्ञिक बना हुआ है वह यज्ञ करने के लिए आया है। याग का अभिप्रायः यह

है कि मानव के लिए ऋषि-मुनियों ने पांच प्रकार के यज्ञों का चयन किया है। जैसे प्रथम ब्रह्मयाग कहा जाता है द्वितीय यज्ञ का नाम देवयज्ञ है तृतीय का नाम अतिथियज्ञ है और चतुर्थ का नाम बलिवैश्वयज्ञ और पंचम का नाम भूतयज्ञ है जिसे हम पितृयज्ञ भी कहते हैं। पति-पत्नी एक स्थान पर विराजमान हो करके ब्रह्मयज्ञ करते है, ऋषि मुनि विराजमान हो करके ब्रह्मयज्ञ करते है। ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्म यज्ञ है। देवपूजा का अभिप्रायः क्या है कि हम देव पूजा करे। पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना उनको क्रिया में लाना। तो प्रातःकाल में मानव याग करता रहा है, द्वापर काल में युधिष्ठिर जैसा राजा प्रातःकाल में देवयाग करता रहा है। भगवान् कृष्ण, जब प्रातःकाल होता तो याग करते थे। वे दोनों पति-पत्नी यज्ञ करते रहते थे। (यागमयी साधना, चित्तसोना, मेरठ, 24 मई, 1976)

युधिष्ठिर महाराज के न्यायालय में एक महापुरुष का आसन लगता था। वह महापुरुष राजा को धिक्कारने वाला होता था। परन्तु उसके द्वारा कितनी निष्ठा और राष्ट्रीयता को आवश्यकता रहती थी। (बीसवाँ पुष्प, बरनावा, 18 फरवरी, 1970)

जीवन में शुभ संकल्प धारण करो

हे मेरे बुद्धिमानो! मेरे ब्राह्मणगण, मेरे यजमानों, मेरे परोपकारी भद्र मण्डल, मैं तुम्हें यह कहने आया हूँ कि तुम अपने हृदय में शुभ

संकल्प धारणा करो। प्रभु की याचना कर, प्रभु की सहायता पाते रहो। बुद्धिमानों से प्रेरणा पाकर ऊँचा कर्म करो। जो मनुष्य संकल्प धारणा करेंगे उनका जीवन पवित्र बनेगा। उनका जीवन सूर्य और बृहस्पति लोक तक पहुँचेगा। जो यहाँ अपना द्रव्य अशुभ कर्म करने में शान्त करते चले जायेंगे वह जानो यहाँ बारम्बार आते रहेंगे और कष्ट भोगते रहेंगे।

मैं देखता हूँ कि यहाँ मेरी माताएँ, मेरा भद्र मण्डल अधिकतर दूसरे जीवों को भक्षण करके अपने प्राणों की रक्षा करते हैं। बहुत से प्राणी ऐसे है जो परमात्मा ने हमारे लाभ के लिए उत्पन्न किये है। हमारे द्वारा जो दुर्गन्धि हो जाती है उसे समेटने वाले प्राणी हैं उन्हें तुम अपने गृह में चटकर जाते हो, उनको चट न करो। उनको चटनी की तरह पान न करो, उनकी रक्षा करो जैसे वृक्ष तुम्हारी रक्षा करते हैं। जल तुम्हारी रक्षा करता है, वायु तुम्हारी रक्षा करती है, अग्नि तुम्हारी रक्षा करती है। बुद्धिमान तुम्हें सब कुछ दे करके तुम्हारे धर्म की मर्यादा को ऊंचा बनाते है। आज यदि तुम्हें चटकीले पदार्थों का पान करना है तो सद्गुण और ऊँचे गुणों को चट करो और जो दुर्गन्धि दायक है उन्हें पृथक् करो आज तुम्हें दूसरे प्राणियों की रक्षा करनी है। (आठवाँ पुष्प, विनय नगर, 14 नवम्बर, 1963)

आज प्रायः प्राणी उच्चारण करता है कि गऊ पशु की रक्षा हो। अरे मानव! तू अपनी गऊ रूपी इन्द्रियों की रक्षा तो कर ले। जब

तक गऊ रूपी इन्द्रियों की रक्षा नहीं होगी, तब तक इस गऊ रूपी पशु की भी रक्षा नहीं हो सकती। जब तक तुम अपनी इन्द्रियों और अपने गौरव रुपी पशु को ऊँचा नहीं बनाओगे तब तक तुम्हारा राष्ट्र और मानवता ऊँची नहीं बनेगी। मानवता ऊँचा बनाना प्रथम है दूसरों की रक्षा तो स्वतः होती चली जायेगी। आज चिन्ता क्यों करते हो चिन्ता यह करो कि संसार में हमें कुछ बनना है। हम नहीं बनेंगे तो आज हम दूसरों को बना ही नहीं सकेंगे।

जिन राष्ट्रों के लिए आज का यह राष्ट्रवाद चिन्तित हो रहा है, आज का यह पदलोलुपता वाला व्यक्ति चिन्तित हो रहा है, मुझे वह समय भी स्मरण है जब महाभारत के काल में वह राष्ट्र आज्ञा के अनुसार आने के लिए तत्पर हो जाते थे, आज्ञा पाई और आज्ञा से किसी भी काल में धृत कार्य किया परन्तु आज वही इतनी धृष्टता में चले गये हैं। जब महाराज युधिष्ठिर ने इसी इन्द्रप्रस्थ में सर्वस्व यज्ञ किया था तो यहाँ सर्वज्ञ राजा आ पहुँचे थे और उन राजाओं ने अर्जुन, भीम और भगवान् कृष्ण की आज्ञाओं से सारा कार्य किया था। आज वही राष्ट्र तुम्हें एक नौका जैसा बना रहे है, कभी तुम्हारी नौका को डुबोने के तुल्य कर देते है और किसी काल में ऊँचा बना देते है। क्योंकि वह न तो स्वयं आत्मविश्वासी है, न कभी आत्मविश्वासी हो सकते है, न किसी काल में हुए है और न तुम्हें ही किसी काल में सन्तुष्ट कर सकते हैं। (ग्यारवाँ पुष्प, जोरबाग, नई

दिल्ली, 31 जुलाई, 1962)

शान्ति का पथ

कैसा सुन्दर आदेश, इसके विपरीत आज मानव कहाँ पहुँच रहा है? आज का मानव जब तक एक दूसरे का आदर नहीं करेगा, एक दूसरे के अन्तःकरण की भावनाओं और सत्ता को आदर नहीं देगा, उसे नहीं जानेगा, तब तक धर्म का कोई महत्व नहीं। जब तक मानव की दृष्टि में धर्म का अस्तित्व नहीं, तब तक मानव एक दूसरे का आदर कदापि नहीं करेगा।

वेद आदेश देता है कि संसार में सभी का आदर करो ऐसी दशा में प्रश्न होता है कि क्या तमोगुणी व्यक्ति का भी आदर करें। यदि तमोगुणी का आदर नहीं करोगे तो उस तमोगुणी व्यक्ति में सतोगुण तो कदापि आ ही नहीं सकेगा। मुनिवरो! देखो, मानव को आस्तिक बनाने के लिए, उसको तमोगुणी से सतोगुणी बनाने के लिए उसका आदर करना अर्थात् उससे आदर पूर्वक व्यवहार करना अत्यावश्यक है। क्योंकि सत्कारपूर्वक व्यवहार से ही उसके अन्तःकरण में सतोगुण के प्रति और आस्तिकता के प्रति प्रेम उत्पन्न हो सकेगा अन्यथा नहीं। तमोगुणी व्यक्ति को भी हमारे मधुर व्यवहार से, उसके अन्तःकरण में ऐसी प्रेरणा मिले या उत्पन्न हो जिससे वह विचारे कि तुझको भी लोगो से ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए कि जैसा तेरे साथ किया जा रहा है। इसके विपरीत यदि तमोगुणी व्यक्ति से हम तमोगुण

वाला ही व्यवहार करें तो उस तमोगुणी मानव में या उसके अन्तःकरण से सात जन्मों तक भी सतोगुण का अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकेगा। इसलिए वेद कहता है कि हे मानव! तू नम्रता के साथ सबका आदर कर। परन्तु इसके साथ वेद ने यह आदेश दिया है कि जब तक मनुष्य समय के अनुकूल व्यवहार नहीं करेगा तब तक मानव का कोई महत्व नहीं। मुनिवरों! हमारे यहाँ दो प्रकार की अवस्थाएं या विषय है, दो प्रकार की नीतियाँ है। एक आध्यात्मिक धर्मनीति है तो दूसरी राजनीति है। मुनिवरो! हमको तो धर्म के आध्यात्मिक विषय पर जाना चाहिए। क्योंकि यदि हम आस्तिकता को, सतोगुणों को प्रसारित करना चाहते हैं तो हमें सबकी आत्माओं के स्वभाव को ध्यान में रखकर सभी के साथ अर्थात् तमोगुणी के साथ भी नम्रता और आदर के साथ व्यवहार करना आवश्यक है। तभी अपनी आत्माओ को उच्च बना सकेंगे, तभी हम आध्यात्मिक विज्ञानी बन सकेंगे अन्यथा हम आध्यात्मिक विज्ञान को कदिप तथा किसी प्रकार भी नहीं पा सकेंगे।

यहाँ तो उन आत्माओं की आवश्यकता है जो आत्मा यहाँ आ करके वैदिक पथ को दर्शा जाएं, यहाँ उन आत्माओं की आवश्यकता नहीं जो अपने स्वार्थ को पूर्ण करने वाली हो और वेद के विपरीत चलने वाली हो। यदि यह संसार एक साथ प्रभु की याचना करे कि हे प्रभु! हमारे मध्य में उस व्यक्ति को न भेज जो हमारी आत्माओं के

उत्सव को हताश बना दे, यहाँ वह आत्मा आये, जो यहाँ आकर के वेदों का प्रसार करें और सब महान् वेदों की संस्कृति को जानने वाले बने। हमारे शरीर से जो महान् रश्मि उत्पन्न होती है वह भी वेद से भरी हुई हो, हमारी वाणी महान् संस्कृति से भरी हुई हो। हे विधाता! ऐसा महान व्यक्ति हमारे मध्य आना चाहिए जिस प्रकार महाराज कृष्ण आये जो नाना देवियों और नाना पुरुषों को वैदिक पथ पर चलाकर चले गये। (पंचम पुष्प, विनय नगर, नई दिल्ली, 19 अगस्त, 1962)

मेरे प्यारे! आज हम जिज्ञासु बनकर प्रभु से विनोद कर रहे हैं, प्रभु से संघर्ष कर रहे है, जो आत्मा प्रभु से संघर्ष करती है वहीं आत्मा भगवान् कृष्ण का रूप धारण कर लेती है और संसार का कल्याण कर देती है। इसलिए आज हमें विचारना चाहिए प्रभु से संग्राम करने वाला बनना चाहिए अरे प्रकृति से संग्राम करने वाले क्यों बनते हो? परमात्मा से संग्राम करके देखो। जिससे मानव का कल्याण होता है और देव स्थिति उत्पन्न होती है। (चतुर्थ पुष्प, जम्मू, 21 अप्रैल, 1984)

११ महाभारत काल की प्रामाणिकता

आज के संसार को, आज के इस शिक्षित समाज को दृष्टिपात् करके मेरा अन्तरात्मा किसी काल में तो गद्गद् होने लगता है और किसी काल में दुःखित होने लगता है। आज का समाज अपने स्वार्थ के वशीभूत हो करके यह कहता है कि महाभारत का संग्राम हुआ ही नहीं, महाभारत कोई काल नहीं हुआ। उन दोनों भ्राताओं में इतना विवाद, अपने कुटुम्ब में इतना विवाद आ गया तो यह केवल काल्पनिक है। ऐसा ही आज का कुछ शिक्षक समाज भी घोषणा कर रहा है।

जब इन विचारों को मैं श्रवण करता हूँ कि आज का वैज्ञानिक यह कहता है कि जो विज्ञान हमने जाना है वह विज्ञान इससे पूर्व काल में नहीं था। आज का समाज जब यह कहता है तो मेरा अन्तरात्मा दुःखित होता है कि यह समाज कहाँ चला गया। मैं यह जानना चाहता हूँ कि हमारे दर्शनों में जब हम प्रवेश करते हैं तो दर्शनों में आज का जो विज्ञान उड़ान उड़ रहा है वह दर्शनों की उड़ान है, वह दर्शनों से इससे पूर्व कालों में ऋषि मुनियों ने नियुक्त किया। आज का मानव समाज यह कहता है कि हमारा जो विज्ञान है वह चन्द्रमा पर चला गया। जब वैज्ञानिकों का किसी काल में विचार विनिमय होता है, उनकी नाना गोष्ठियाँ होती हैं, नाना विचार धाराएं प्रारम्भ हाती है तो उनका विचार जो गम्भीर वैज्ञानिक होता है

वह कहता है, कि जो मैंने जाना है वह बहुत ही सूक्ष्म-सा है। अब मैं यह विचार विनिमय करता हूँ कि भोले प्राणी! आज तू यह क्या उच्चारण कर रहा है। जो देव समाज और काल और संस्कृति का ह्रस करता चला जा रहा है। यह इस प्रकार ह्रसता में तो नहीं आता। क्योंकि आज मानव कहता है कि महाभारत काल काल्पनिक है, यह काल्पनिक कैसे दृष्टिपात् आता है। वह नाना उदाहरण देने के लिए तत्पर होते हैं, प्रमाण देते हैं परन्तु जब मैं यह कहता हूँ कि यह तुम्हारा निकास है?तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ। तुम्हारे शरीर का सबसे निर्माता पिता कौन था? कौन माता निर्माता थी? परन्तु मानव के द्वारा कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। उन शिक्षित प्राणियों से भी प्राप्त नहीं होता है। इन शिक्षकों के विचारों में अज्ञान रमण कर रहा है, क्योंकि स्वार्थ है और स्वार्थ से अज्ञानता की उत्पत्ति होती है।

चन्द्रमा पर भीम व घटोत्कच के यन्त्र

मैंने कई काल में तुम्हें वर्णन करते हुए कहा कि जब इस राष्ट्र के साहित्य में किसी प्रकार का उसके पात्रों पर आक्रमण करना होता है तो वह आक्रमण उस काल में होता है जबकि स्वार्थी प्राणी विशेषकर हो जाते हैं। स्वार्थी प्राणी उनके पात्रों को भ्रष्ट कर देते है जिससे वह साहित्य कुछ काल में समाप्त हो जाता है, उसकी परम्परा समाप्त हो जाती है। आज हे भोले प्राणियों! आज मैं उसका मण्डन कर रहा हूँ। महाभारत का काल हुआ है। महाभारत के काल

के और आज के वैज्ञानिकों की चर्चा प्रकट करना चाहता हूँ। आज से लगभग साढ़े पांच हजार वर्ष पूर्व भीम और घटोत्कच जिनके यन्त्रचन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में गमन कर रहे हैं। जब आज का भौतिक वैज्ञानिक यन्त्रों को ले करके जायेगा तो उसे वहाँ वे सर्वत्र प्राप्त होंगे। हे भोले वैज्ञानिकों! हे शिक्षक समाज! यदि तुम इस महाभारत काल को स्वीकार नहीं करते हो तो चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में पोथी के प्रमाण को यथार्थ स्वीकार करते हो, तो तुम्हारा यह कर्त्तव्य है कि यदि उसका निर्णय करना है तो यान को ले करके चन्द्रमा के ऊपरले कक्ष में पहुचों। वहाँ वे यन्त्र प्राप्त होंगे। वहाँ उन यन्त्रों पर एक लेखनी होगी। उस लेखनी पर घटोत्कच और भीम का नामकरण प्राप्त होगा।

मैं शिक्षक प्राणियों से यह प्रश्न पूछना चाहता हूँ कि महाभारत काल में या लगभग साढ़े पांच हजार वर्षो पूर्व तुम्हारा पडपिता था या नहीं। तो उत्तर प्राप्त नहीं होगा। परन्तु आज मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को निर्णय कराना चाहता हूँ। रहा यह वाक्य कि मैं क्या दृष्टिपात् कर रहा हूँ? इस भूमि पर विराजमान हो करके भीम और घटोत्कच दोनों ने कुछ वैज्ञानिक यन्त्रों को जाना। परन्तु वह भूमि, वह काल मौहम्मद के मानने वाले के आँगन में चला गया। इस समय उससे पूर्व काल में भी साहित्य अग्नि के मुखाबिन्दु में परिणत हो गया। आज पुनः से मैं क्या

दृष्टिपात् कर रहा हूँ। इसलिए हम कहा करते हैं कि परमपिता परमात्मा की प्रकाश की ऐसी तरंगे चलती हैं कि जहाँ अन्धकार है, वहाँ प्रकाश हो जाता है और जहाँ प्रकाश है, वहाँ अन्धकार आ जाता है। यह मैं अन्धकार और प्रकाश की चर्चाएँ कर रहा हूँ।

महाभारत कालीन वारणावतपुरी

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन करते हुए कहा था कि महाभारत काल में लाक्षागृह का निर्माण किया गया था। उस लाक्षागृह का निर्माण पाण्डवों को भस्म करने के लिये, उन्हें अग्नि में परिणत करने के लिए। आज का वैज्ञानिक ऐसे गृहों का निर्माण नहीं कर सका है। जिसमें सूर्य की तीखी किरणों से भी अग्नि प्रदीप्त हो जाए ऐसे गृह का निर्माण उस काल में हुआ। परन्तु जहाँ से उनका देववत प्रवेश हुआ वहाँ से उनका निकास हो गया और चन्द्रायण वन में उन्होंने प्रवेश किया। यह वही स्थली है, वही पुण्य भूमि हैं। परन्तु उसके पश्चात् यहाँ न्यायालय भी रहा है। यह मानस क्षेत्र कहलाया जाता है, महाभारत की यह वारणावतपुरी कहलाती थी। पूज्यपाद गुरुदेव का तो यह दृष्टिपात् किया हुआ है। नौ लाख प्राणी इस वारणावतपुरी में वास करते थे। उतना क्षेत्र इसका रहा है। कुछ अग्नि के मुख में चला गया। नदी भी इस स्थली से लगभग एक वृत्तियों की दूरी से रमण करती थी। जहाँ भूमि प्राचीन काल में लगभग पांच वृत्तियों (कोसों) में थी। पांच कोसों की दूरी से यह

नदियाँ अपनी गतियाँ करती रहती थी। आज जब में इस प्रकार के वाक्यों में जाता हूँ, इस प्रकार की वार्ता प्रकट करता हूँ। हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! इसी स्थली पर महाराजा द्रोणाचार्य ने शिक्षा दी थी। वह स्थान अग्नि के मुखारबिन्दु में चला गया। अग्नि उसको निगलती चली गई। यहाँ एक शिक्षालय रहा था। कौरव और पांडव पुत्रों में यहाँ विचार विनिमय होता रहा। जब मैं इस वाक्य को स्मरण करता हूँ कि यहाँ न्यायालय रहा है, विचित्रता रही है। तो मेरा अन्तरात्मा गद्गद् होने लगता है।

हे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने कई काल में आपसे वर्णन किया है कि यही भूमि है, यही वह लाक्षागृह कहलाया है, जहाँ पांडव पुत्रों के लिए गृह का निर्माण हुआ था। परन्तु यवन काल में यह श्मशान भूमि बन गई। उससे पूर्व यहाँ शिवालय थे। यहाँ पूजा होती थी। यज्ञ इत्यादियों की विधि का पठन-पाठन होता रहा था। परन्तु उसके पश्चात् यवन काल में यह यवनों के मुखारबिन्दु में परिणत हो गया। यह श्मशान भूमि बन गई। यहीं श्मशान का गृह बनने लगा। जब यह श्मशान भूमि बन गई, यहाँ नाना प्रकार के बलात्कार भी होते रहे हैं। मेरी नाना पुत्रियों के श्रृंगारों का हनन भी होता रहा है, मैं उसके ऊपर कोई चर्चा नहीं करूँगा।

अहा! पुनः से मेरे पूज्यपाद गुरुदेव का न जाने कौन-सा संस्कार उदय हो गया, और उदय होने के पश्चात् पुनः से यह उन्नत होने जा

रहा है जहाँ वेदों का पारायण याग हो रहा हो, चतुर्वेदों के पारायण याग होते हों। यहाँ हर समय याग होता रहता था, वह भी काल था, यह पुण्य भूमि रही है, जहाँ द्रोण याग करते थे। जहाँ महाराजा जन्मेजय और जैमिनी विराजमान हो करके याग करते थे। महाराणा जैमिनी मुनि महाराज ने इस स्थली पर ही दर्शनों की मीमांसा करते हुए अपनी लेखनियों को उपराम किया। जब मैं इन वाक्यों को ले करके चलता हूँ चन्द्रायण वन में जैमिनी मुनि महाराज ने अपनी लेखनियां बद्ध की। उन लेखनियों को ले करके आज जब चलता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि कैसा विचित्र दर्शन है। (इक्तिसवाँ पुष्प, लाक्षागृह, बरनावा)

महाराजा परीक्षित

मानव को अज्ञान में परिणत नहीं रहना चाहिए। महात्मा सुखदेव जी ने द्वापर के काल में महाराजा परीक्षित को बड़ा अद्भुत ज्ञान दिया और उन्होंने कहा 'समाप्तमयं' यह संसार समाप्त हो जाता है। पन्द्रह-पन्द्रह दिवस जो हमारे यहाँ शुक्लपक्ष और कृष्ण पक्ष के है, उनमें ही द्विपदा, चतुष्पदा आती है, इसी में वर्ष और माह समाप्त हो जाते है। देव, मानव सभी प्राणियों की आयु सम्पन्न हो जाती है। महात्मा सुखदेव ने राजा परीक्षित को संसार में यह ज्ञान दिया कि संसार में मृत्यु का अभाव है। जो अंधकार है उसका अभाव है परन्तु प्रकाश का अभाव कदापि नहीं होता। वह सदैव एक रस बना रहता है, रहा

यह कि यह आत्मा कहाँ चला जाता है? मेरा अन्तर्रात्मा सदैव दृष्टिपात् करता रहता है और मैं यह विचारता रहता हूँ कि आत्मा से आत्मा का सम्मिलान होता रहता है। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों की प्रतिभा मानव के अन्तरात्मा के साथ रहती है। जैसे एक सूत्र में पिरोया हुआ जगत् दृष्टिपात् होता है ऐसे ही मानव के संस्कार भी एक सूत्र में पिरोये हुए रहते है, और उन सूत्रों का कटिबद्ध हो जाना या उन सूत्रों का एक दूसरे से सम्मिलन हो करके उनका विच्छेद हो जाना यह तो मानव के भोगवाद की चर्चाएँ हैं। यह भोगवाद का एक विषय रह जाता है। जो आत्मा हमारे मध्य से चला जाता है वह अपनी गति और मानवीयता को प्राप्त हो जाता है। (इकसठवाँ पुष्प, बरनावा, 11 मई, 1989)

१२ महाभारत काल के बाद का आर्यवृत्त

जातिवाद का प्रारम्भ

गुरुजी! महाभारत के काल के पश्चात, यह तो आपको प्रतीत है कि जब राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय राजा हुए और उन्होंने एक सर्वस्व यज्ञ किया। जितनी उनके द्वारा सम्पत्ति थी, सब यज्ञ में अर्पण कर दी। जब गुरुदेव! महाराजा जनमेजय ने यह निश्चय किया कि जितनी मेरी सम्पत्ति है, वह सब यज्ञ में अर्पण हो, तो वहाँ कुछ ऐसा पाया गया कि उस कार्य में आदि ब्राह्मणों को निमन्त्रण न देकर

यजन किया गया। महर्षि जैमिनी मुनि उस यज्ञ के ब्रह्मा बने और ब्रह्मा बन उस यज्ञ को पूर्ण कराया। महाराजा जनमेजय यजमानी (यजमान की पत्नी) सहित विराजमान थे। तभी कुछ ऐसा कार्य हुआ कि आचार्य जी ने भविष्य की वार्ता का उच्चारण करते हुए कहा कि आपका यज्ञ सफल नहीं होगा। वहाँ जब एक ब्राह्मण ने मग्नता मनाई तो महाराजा जनमेजय के हृदय में यह भावना प्रकट हुई कि यह ब्राह्मण तेरी मग्नता मना रहा है तो जनमेजय ने उस ब्राह्मण के कंठ से ऊपर के भाग को अपने वज्र से अलग कर दिया। देखिये गुरुदेव! जब उसने यज्ञशाला में यह कर्म कर दिया तो यज्ञ भ्रष्ट हो गया। जब यज्ञ भ्रष्ट हो गया तो वहाँ ब्राह्मणों ने यज्ञ का त्याग किया और कहा कि हम कदापि भी द्रव्य न लेंगे, दान के पात्र नहीं बनेंगे। जब महाराजा जनमेजय ने यह वार्ता सुनी तो उन्हें ज्ञान हुआ कि तेरे गुरु ने तुझे संकेत किया था परन्तु तब भी तूने ब्राह्मण के शीश को समाप्त कर दिया, अब तुझे क्या करना चाहिए? तो गुरुजी! हमने ऐसा पाया कि ब्राह्मणों को द्रव्य न दे करके, भूमि का दान दे करके वहाँ से पृथक् कर दिया। वहाँ से गुरुदेव! जाति का प्रारम्भ हो गया, उसके पूर्व वर्ण व्यवस्था थी। जो ब्राह्मण के कर्म करने वाले थे, वह ब्राह्मण बने रहे और भगवन्! इसके पश्चात् जिन्होंने त्याग दिया उन्हें त्यागी रूपों से पुकारने लगे। अब यहाँ से जातिवाद का भेद बन गया। (छटा पुष्प, आर्य समाज हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

इसके पश्चात् भगवन्! आगे काल चलता रहा। जब अज्ञानता आई तो ब्राह्मणों ने विद्या की सूक्ष्मता कर दी। सूक्ष्मता के कारण क्षत्रियों में जो वास्तविक शिक्षा थी वह समाप्त होने लगी, वेद की विद्या लुप्त होने लगी। आगे काल आया कितने सन्यासी बने परन्तु कोई यथार्थ सन्यासी बना तो उसकी यथार्थ विद्या को न मानना और अपने स्वार्थ के वशीभूत हो मनमानी वार्ता चलने लगी। जब यहाँ नाना प्रकार का जातिवाद चलने लगा तो जो जिस कार्य को करता था वह उसी नामों से नियुक्त होने लगा और एक दूसरे से घृणा होने लगी। मनु महाराज ने जो भी आदेश दिया उन पर न चलना। राजाओं में नाना प्रकार की त्रुटियाँ आ गयी, दुराचार की भावनाएँ आने लगीं। नाना देवियाँ उनके स्थान में रहा करती। यहाँ देवियों की विद्या और जो उनकी प्रतिभा थी वह समाप्त होने लगी। उसके पश्चात् यहाँ धर्म के विषय पर सम्प्रदाय चल गये। जिससे घृणा की, उसी का सम्प्रदाय पृथक् बन गया।

वाममार्गी सम्प्रदाय

जब यहाँ सम्प्रदाय बनने लगे तो यहाँ एक वाममार्गी सम्प्रदाय चला। हमने जो इनका दुराचार देखा, उस दुराचार को तो हम आपके समक्ष वर्णन नहीं करेंगे परन्तु वेद की विद्या उन्होंने नष्ट कर दी। वेदों का कुछ भाष्य किया परन्तु वह भाष्य भी अनुचित कर दिया, जिससे संसार में नास्तिकता दौड़ने लगी। कुछ व्यक्तियों ने तो

ऐसा कहा है कि यह परमात्मा कोई पदार्थ नहीं और न परमात्मा की यह वेद विद्या है। यह तो धूर्त विद्या हैं, महान् दुराचारियों ने और पिशाचों ने वेद की विद्या को प्रकाशित किया है, हम इस वेद की विद्या को कदापि स्वीकार नहीं करेगें। तो गुरुदेव! जब वाममार्गियों ने ऐसा किया तो वेद की विद्या यहाँ से लुप्त होने लगी। यह सम्प्रदाय बड़ा दुराचारी था। दुराचारी सम्प्रदाय होने के कारण राष्ट्र में अज्ञानता आने लगी।

उस काल में क्या होता था? गुरुदेव! इन वाममार्गियों ने ऐसा किया कि जब अजामेध यज्ञ करते तो बकरी के अंगों की उसमें आहुति देते। अजा कहते हैं बकरी को, जैसा आपने पूर्व कहा ह अजामेध यज्ञ को जब इन्होंने समझा नहीं तो क्या किया कि यज्ञ में अजा को लेकर वेद मंत्र का पाठ करते हुए 'चक्षुस्ते-शुन्धामि', जिस अंग का नाम आये उस अंग की आहुति देने लगे और उसे अजामेध यज्ञ वर्णन करने लगे। जब गौ मेध यज्ञ का वर्णन आता तो वहाँ गौ माता की आहुति देकर यज्ञशाला में अर्पण करने लगे। वह यहाँ ऐसा अधोगति का काल आया। जिसमें दार्शनिक समाज और वैज्ञानिक समाज सब तुच्छ होने लगे। वेद की विद्या लुप्त होने से संसार अधोगति को चला गया। गौ मेध यज्ञ को समझा नहीं कि गौ कहते हें पृथ्वी को और पृथ्वी की विद्या को जानना ही गौ मेघ यज्ञ है, उन्होंने इसको समझा नहीं। उन्होंने केवल यही समझा कि गौ मांस

की आहुति दो तब ही तुम्हारा यज्ञ सफल हेगा।

अज्ञानता आ जाने के कारण आगे चलकर अश्वमेध यज्ञ भी विकृत होने लगे। गुरुदेव! उन्होंने अश्वमेध का अभिप्राय, जो वेद में वर्णन किया है कि जब राजा अश्वमेध यज्ञ करता था तो वह घोड़ा छोड़ता था और जो उस घोड़े को रोक लेता था राजा उसके साथ युद्ध करता था। उसके विजय होने के पश्चात् उसे अश्वमेध यज्ञ करने का अधिकार था उन्होंने इस कर्मकाण्ड को त्याग दिया और गुरुदेव! हमने उन वाममार्गियों को देखा जिन्होंने देखो, 'प्राह गणो ते अचते! देखो, इनके लिंग यज्ञते महान यज्ञ मानस्य।' वहाँ दुराचार भ्रष्टाचार होने लगे समाज में नास्तिकता आने लगी, परमात्मा को शान्त कर दिया और कहा कि परमात्मा कोई पदार्थ नहीं।

महाभारत के पश्चात् के काल में वाजपेयी यागों में पशुओं की बलियों का वर्णन किया गया। एक कान्तकेतु था जो वाममार्गी था, उन्होंने एक समय यह वाजपेयी याग किया और उसमें गऊ की बलि प्रदान की गयी परन्तु उसका परिणाम यह हुआ कि समाज में नास्तिकवाद आ गया, वेदों के प्रति, मन्त्रों के प्रति, आस्था न रही। इसलिए वैदिक साहित्य लुप्त हो गया। (यज्ञ एवं औषधि विज्ञान, जोरबाग, नई दिल्ली, 9 जुलाई, 1982)

पांडव वंश के शासक

यहाँ महाराजा युधिष्ठर के पश्चात् अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का

राष्ट्र हुआ। परिक्षित के पुत्र जनमेजय हुए उसके पश्चात् ममानुक नाम के राजा हुए आगे आमन्तरी हुए। आमन्तरी राजा के पश्चात् विक्रम हुए उनके पश्चात् शामिणाम और उनके पश्चात् यहाँ सत्कामातुर नाम के राजा का साम्राज्य आ गया। उसके पश्चात् यह प्रणाली समाप्त हो गई। और यहाँ जैनियों का साम्राज्य आ गया, जैन मत की उत्पति हो गई। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 6 मार्च, 1962)

महावीर

जब यहाँ नाना सम्प्रदाय चलने लगे तो यहाँ एक महावीर नाम के व्यक्ति आ पहुंचे। उन्होंने अपनी दार्शनिक बुद्धि से कुछ विचारा कि यह तो बड़ा अनर्थ होने लगा है समाज में। महावीर नाम के दार्शनिक ने धर्म को दार्शनिकता से विचारा और उन्होंने कहा कि ''अहिंसा परमो धर्मः'' वह दार्शनिक तो बने, वेद के कुछ अंग को तो जाना, परन्तु वेद की विद्या को नहीं जाना। और न जान करके उन्होंने कहा कि वेद की विद्या सब निरर्थक है। यह कहा कि वेद की विद्या का वाक्य सत्य नहीं और न वेद कोई पदार्थ है। अहिंसा परमो धर्मः का तो कुछ पाठ करके, वेद के कुछ अंग का प्रचार किया, परन्तु उन्होंने कहा कि आत्मा-परमात्मा एक ही हैं। न कोई इस संसार को बनाने वाला है और न संसार किसी स्थान में बनता है। यह तो ऐसे ही अनादि चला आ रहा है। यह आत्मा ही परमात्मा बन जाता है।

(छठा पुष्प, आर्य समाज हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

यहाँ महावीर नाम के स्वामी ने अपने मत का प्रसार किया। परन्तु वह प्रचार घृणात्मक था। उस महावीर से इस भारत भूमि में घृणा की उत्पत्ति हुई। इस भारत भूमि में उससे पूर्व घृणा की उत्पत्ति नहीं थी वैसे तो घृणा की उत्पत्ति महाराजा दुर्योधन के समय से हो गयी थी, परन्तु मानव के द्वारा अत्यन्त पक्षपात् महात्मा महावीर के समय में आया। वास्तव में वह महात्मा थे, मैं उनका आदर करता हूँ परन्तु उनके शब्दों में घृणा थी। आगे उनके मानने वालों ने और भी अधिक घृणा उत्पन्न कर दी और उसका परिणाम यह हुआ कि यहाँ अराजकता का प्रसार प्रारम्भ होने लगा। उनके सिद्धान्त के विपरीत जो यहाँ पुस्तकें थी, जो वैज्ञानिक थे, जो उनके आंगन में नहीं आते थे, वे अग्नि के मुख में अर्पित होने लगे। उन्होंने वैदिक साहित्य को, वेद की पोथी को अपने नेत्रों के समक्ष नहीं आने दिया। आगे यहाँ जैनियों का साम्राज्य चलता रहा। यहाँ की सब पुस्तकें अग्नि के मुखारविन्द में जाती रही। 1127 वेदों की शाखायें थी परन्तु वह भी अग्नि के मुख में चली गयी। किसी महापुरुष ने कोई संहिता स्मरण की तो आगे उसकी परम्परा चलती रही और वेद की रक्षा होती रही। वेद को परमात्मा का ज्ञान कहा है। इसलिए प्रायः उसकी रक्षा होती रही।

हमारे यहाँ नाना स्मृतियाँ थी। शतपथ ब्राह्मण इत्यादि नाना लिपियाँ थी और भी देखो, महाराजा घटोत्कच, महाराजा अभिमन्यु

महाराजा अर्जुन का और भीम इत्यादियों के पुस्तकालय थे जो इतने वैज्ञानिकता से परिपूर्ण थे कि आज मानव उन्हें अनुभव में ला ही नहीं सकता। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 6 मार्च, 1969)

जब यहाँ जैन मत आया और नाना प्रकार की अज्ञानता फैली तो भगवन्! यहाँ जो सतयुग, त्रेता और द्वापर काल के जो महान हमारे दार्शनिकों के वाक्य थे, ग्रंथ थे, जैनियों ने अग्नि में भस्म कर दिये। जब यह पुस्तकालय भस्म हो गये तो अब क्या करें। अज्ञानता तो आनी थी। वेद किसी प्रकार बच गए? वेद किसी के गृह में रह गये। आह! वह विद्या कहाँ से लाएँ जैसा हम आपसे प्रश्न करते है कि वह प्रमाण अब क्यों नहीं मिलते, वह इसलिए नहीं मिलते क्योंकि वह पुस्तकालय ही अब समाप्त हो चुके है जिसमें हमारे पूर्व दार्शनिकों के वाक्य थे। (छठा पुष्प, आर्य समाज, हनुमान रोड, नई दिल्ली 12 मार्च, 1962)

महात्मा बुद्ध

भगवन्! आगे काल ऐसा ही चलता रहा, नाना प्रकार की त्रुटियाँ समाज में आने लगी। उसके पश्चात् परमात्मा ने कुछ विभूतियों को भेजा। आज से लगभग 2,500 वर्ष का समय हो गया जब यहाँ महात्मा बुद्ध का आगमन हुआ। उन्होंने इस संसार का कुछ निर्माण किया, द्वितीय राष्ट्रों में भ्रमण करके उन्होंने कहा कि "अहिंसा परमो धर्मः।" जब उनके समक्ष नाना वाममार्गी शास्त्रार्थ करने के लिए आये

तो उन्होंने कहा कि भाई! तुम हमें वेद का प्रमाण देते हो, जिस वेद में ऐसा प्रकरण हो, पापाचार हो, हिंसा हो, हम उस वेद को कदापि भी स्वीकार नहीं करेंगे। उनके अनुयाईयों विचारा नहीं। उन्होंने वेद का स्वाध्याय करना समाप्त कर दिया। वास्तव में महात्मा बुद्ध बड़े ऊँचे थे, बड़े दार्शनिक थे, राजा थे। राजा से उन्होंने सन्यास धारण किया, सर्वस्व सांसारिक ऐश्वर्य को त्याग करके ऐसे अगाध अन्धकार में आ कूदे। उन्होंने क्या किया? बहुत से राष्ट्रों का निर्माण किया, वेद के कुछ अंगों का पालन किया। जब महात्मा बुद्ध समाप्त हो गये तो उनके जो अनुयायी थे, उन्होंने महात्मा बुद्ध के विचारों को न मान करके नाना प्रकार का दुराचार करना प्रारम्भ कर दिया। मैं इन सभी पुरुषों का आदर करता हूँ परन्तु मैं आदर इसलिए नहीं करता क्योंकि उन्होंने वैदिक साहित्य को, वेद की पोथी को अपने नेत्रों के समक्ष नहीं आने दिया। परन्तु आदर इसलिए करता हूं क्योंकि वह महान् थे, विचित्र थे। उनके शब्दों में पश्चात् में आकर घृणा की दृष्टि आ गई थी। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 6 मार्च, 1969)

मेरे विधाता महानन्द जी ने कहा कि महाभारत के पश्चात् कलियुग आया। यहाँ एक महाराजा बुद्ध नाम के आये और उनकों भी यहाँ अवतार मान बैठे जिन्हें वेद का पूर्णतया ज्ञान न था। परन्तु उन्हें ज्ञान था ''अहिंसा परमोधर्मः'' का। जिसको लेकर वह चले और संसार का पुनः उत्थान कर दिया, आज हम उन महान् व्यक्तियों को

महान् माने जो उनकी वास्तविकता है। उन महान् आत्मा ने तो यह भी कहा कि परमात्मा ने यह संसार रचा ही नहीं, यह अनादि काल से चला आ रहा है। तो क्या हम उनको अवतार मान बैठे? अपना भगवान् मान बैठे। जिन्होंने परमात्मा के ऊंचे स्वरूप को, उस महान विश्वकर्मा को अच्छी प्रकार जाना ही नहीं। हम यह नहीं कहते कि कुछ नहीं जाना, बहुत कुछ जाना, हम यह अवश्य कहेंगे इस अन्धकार के संसार को प्रकाश देकर चले गये। परन्तु यह नहीं कह सकते कि वह परमात्मा का अवतार बनकर आ गये, इसको कोई भी महान् आत्मा, कोई भी योगी कदापि भी स्वीकार नहीं करेगा। (पंचम पुष्प, विनय नगर, नई दिल्ली, 19 अगस्त, 1962)

महात्मा शंकराचार्य

महाभारत काल के पश्चात् संसार में अन्धकार की तरंगें ओतप्रोत हुई और वह अन्धकार इतना बलवती बना कि धर्म और मानवता को शान्त करने का प्रयास किया। मानवता और धर्म न रहा। अन्तिम परिणाम यह हुआ कि अज्ञान में समय-समय पर महापुरुषों ने आकर के समाज को चेतावनी दी और चेतावनी देकर के उन्हें प्रेरणा दी और प्रेरित करके उनको धर्म क्षेत्र में लाने का प्रयास किया। (पैंतिसवाँ पुष्प, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली, 9 नवम्बर, 1977)

जब दुराचार होने लगा तो भगवन्! आज से 2,200 वर्ष या कुछ अधिक वर्ष हो गये जब महात्मा शंकराचार्य यहाँ आ पधारे।

जिस समय वह बारह वर्ष के थे तब उन्होंने अपनी माता से कहा कि मैं तो इस संसार को जगाना चाहता हूँ। यह संसार मुझे अन्धकारमय प्रतीत हो रहा है। महात्मा शंकराचार्य पूर्व जन्म के कुटली मुनि महाराज थे। उनकी आत्मा ने यहाँ आकर जन्म धारण किया। परमात्मा के अनुकूल ऐसी महान आत्मा, यौगिक आत्मा संसार में आती रहती हैं और आ करके धर्म का कुछ न कुछ पालन करा ही देती हैं। उसकी माता ने कहा कि बेटे! तुझे धन्य है, जो तूने ऐसे महान विचारों का संकल्प किया है। इन विचारों को संसार के समक्ष नियुक्त करो जिससे यह संसार अन्धकार से पृथक् हो जाये। तो हे गुरुदेव! उस महात्मा शंकराचार्य ने आ करके इस संसार का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया। महात्मा बुद्ध और महात्मा महावीर को मानने वाले जो अनुयायी थे, उनसे शास्त्रार्थ किया। मूर्ति-पूजा के विषय में षास्त्रार्थ करते थे। उनका कथन था कि मेरा यह नियम है कि यदि मैं षास्त्रार्थ हार जाऊँगा तो मूर्ति पूजक बन जाऊँगा और यदि नहीं हारा तो तुम्हारी इन मूर्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर दूँगा। हे गुरुदेव! हमने महात्मा शंकराचार्य को देखा है। वह आत्मा और परमात्मा के विषय में षास्त्रार्थ करते थे और जब विपक्षी थकित हो जाते थे तो अपने खाण्डे को लेकर उनकी मूर्तियों पर आक्रमण करते थे, मूर्तियों को उनके स्थान से पृथक् कर दिया जाता था। महात्मा शंकराचार्य ने समाज का बहुत कुछ उपकार किया, धर्म का बहुत

बड़ा कल्याण किया था। आत्मा परमात्मा को पृथक् मान करके जैनमत और बौद्धमत के अनुयायियों को, सबको चकित कर दिया। एक समय समाज में आ करके उन्होंने वेदान्त का पाठ किया और वेदान्त की महान ऊँची गहराई में जा करके उन्होंने कहा कि भाई, आत्मा-परमात्मा का भाव एक ही प्रतीत होता है परन्तु फिर भी उन्होंने यह नहीं कहा कि यह एक है, यह कहा कि यहाँ भाव तो एक ही है। जैसे माता का बालक है और जब वह माता के गर्भ में रहता है उस समय वह माता के समक्ष नहीं होता, न माता को दिखता है और न ही संसार को दिखता है। ऐसे ही हम आत्मा जब मोक्ष में जाते हैं तो परमात्मा के गर्भ में चले जाते हैं, परमात्मा के गुण हममें प्रविष्ट हो जाते हैं उस समय हम अपने को परमात्मा मान लेवें तो कोई हानि नहीं परन्तु वास्तव में हम परमात्मा तो नहीं हैं। हम किसी को तभी पावेंगे जब उनके गुण में रमण करेंगे, उसके गुणों की वार्ता उच्चारण करेंगे अन्यथा हम किसी प्रकार भी उसमें रमण नहीं करेंगे। गुरुदेव! शंकराचार्य ने इन विचारों का कथन किया। आगे चल करके उपनिषदों का स्वाध्याय करते हुए ऐसा कहा कि आध्यात्मिक विचारों को लेते हुए प्रतीत होता है कि आत्मा से बढ़ कर भी कोई सत्ता अवश्य है। जब महात्मा शंकराचार्य ने वेद की विद्या को ऐसा जान लिया तो नाना मत वालों से षास्त्रार्थ कर वेद विद्या की पुनः स्थापना की। वेदांगों का मन्थन किया, उनका पालन

किया और एक महान समाज बना दिया। उन्होंने समाज से कहा कि देखो, जैसे तुम जैनियों और बौद्धों के मन्दिरों और स्थानों में जाते हो इससे तो तुम एक कार्य करो कि तुम अपने ही मन्दिर बनाओं और उन्हीं में एकान्त स्थान में विराजमान हो करके उस परमपिता परमात्मा को जानने का प्रयत्न करो जो तुम्हारी आत्मा के समक्ष बैठा, तुम्हारा पालन कर रहा है। तुम दूसरे मत वालों के स्थानों में क्यों जा रहे हो? यथार्थ वाक्य था, सबने स्वीकार कर लिया।

(छठा पुष्प, आर्य समाज हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

आगे चलकर महात्मा शंकराचार्य ने अपनी प्रतिभा से अपनी यौगिकता से समाज में एक संस्कृति का प्रसारण करने का प्रयत्न किया परन्तु यहाँ के ही धर्मज्ञों ने, जिन्होंने यह जाना कि तुम्हारी पद्धति नष्ट होने जा रही है, उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 6 मार्च, 1969)

ईसा मसीह

आगे चल करके यहाँ बहुत से अन्य मत आ गये। भगवन्! देखो, ईसा मसीह नाम के आ कूदे। वह द्वितीय राष्ट्र में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने यहाँ आ करके काशी स्थान में आयुर्वेद की शिक्षा को पान किया। आयुर्वेद का स्वाध्याय करके इस विद्या को जाना कि नेत्रों की दृष्टि से मानव के शरीर विज्ञान को जाना जाता है। भगवन्! काशी में

एक विरंडी नाम के आचार्य थे, उनसे उन्होने आयुर्वेद की शिक्षा पाई और उसमें महान् बन करके इस राष्ट्र से अपने राष्ट्र को चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी विद्या का प्रचार किया और उन्होंने एक निराला मत उत्पन्न किया। भगवन्! उन्होंने अच्छी प्रकार तो समझा नहीं और जाना नहीं परन्तु इसी में उनका एक महान् मत बन गया। उनके द्वारा क्या विशेषता थी? आयुर्वेद की विद्या को जानने से और योगाभ्यास करने से नेत्रों की दृष्टि द्वारा मानव के अवगुणों को शान्त करने की शक्ति आ जाती है। तो भगवन्! जब उसमें यह सत्ता आ गई तो वह बड़ा तपस्वी बना और तपस्वी बन करके उन्होंने वहाँ के कुछ व्यक्तियों का उद्धार किया। परन्तु उसको भी इस संसार ने समाप्त कर दिया। उन्होंने भी एक समाज बनाया और उस समाज में यथार्थ शिक्षा दे करके वे भी चले गये। आगे उनके अनुयाइयों ने उनकी शिक्षा का दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया, हे भगवन्! उन्हें असली रूप में न छोड़ा। (छठा पुष्प, आर्य समाज हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

महात्मा ईसा ने भी अपनी संस्कृति का अपने चरित्र बल का प्रसार किया। महात्मा ईसा ने भी इस भारत भूमि में शिक्षा पाने के पश्चात् अपने धर्म का प्रसार किया, परन्तु धर्म क्या है यह उन्होंने नहीं विचारा। हम यह उच्चारण कर सकते है कि आयुर्वेदाचार्य के नाते उनका पांडित्य बहुत ऊँचा और पवित्र था। उनका हृदय बड़ा निर्मल

और स्वच्छ था। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 6 मार्च, 1969)

महात्मा ईसा को जब यहुदी नष्ट करने लगे, परन्तु उन्होंने मृत्यु के मुख मे जाते हुए कहा कि मुझे नष्ट कर सकते हो, परन्तु मेरी जो यथार्थ क्रान्ति, आत्म विश्वास है उसे छेदन नहीं कर सकते। (ग्यारहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 31 जुलाई, 1968)

मुहम्मद

भगवन्! आगे चल करके मुहम्मद नाम के एक यवन हुए। वास्तव में देखा जाये तो वह यवन ही थे, जैसा आपने वेद की विद्या में कहा है। एक छोटे से घर में जन्म ले करके एक राजा बनने की अपेक्षा की और राजा बने। अबुबक्र उनके एक मित्र थे परन्तु उनको अन्तुत बनाया और मन्त्रियों में अपने नाना शिष्य बनाये, शिष्य बना करके संग्राम किया और अन्त में राष्ट्र पर उनका अधिकार हो गया। अज्ञानी काल था, विद्या थी नहीं, भगवन् जब वह राजा बन गये तो उन्होंने आसवाती नाम के वृक्ष में एक पुस्तक बना करके अर्पण की और उसके पश्चात् राष्ट्र के महान चुने हुए व्यक्तियों का समाज एकत्रित किया और कहा कि भाई! मुझे परमात्मा के दर्शन हुए हैं और परमात्मा ने मुझे एक पुस्तकालय दिया है जिसको मैं महान बनाना चाहता हूँ, आज मेरे इस वाक्य को स्वीकार करो। उन्होंने उस वृक्ष का वर्णन किया। उन व्यक्तियों ने उस वृक्ष को समाप्त कराया तो उन्होंने देखा कि उसमें वह पुस्तक वैसे ही थी। उन्हें विश्वास हो

गया। हे गुरुदेव! पाहि मनः वाचे, उनकी विचारधारा जो पुस्तक में थी, वह प्रजा के समक्ष आ गई। उन्होंने सोचा कि भाई! यह तो बड़ा सुन्दर है और उन्होंने मुहम्मद की वार्ता को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार देखो, यवन मत बन गया।

उन्होंने भगवन्! द्वितीय राष्ट्रों पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। कितना बड़ा संसार में अन्धकार आया। एक माह के संग्राम के पश्चात् मुहम्मद ने यूनान राष्ट्र पर विजय प्राप्त की। उस सग्रांम में वे दिवस में युद्ध करते और सांयकाल युद्ध करने वालों से कहा करते कि अरे भाई। तुम रात्रि में भोजन किया करो और दिवस में युद्ध किया करो। वह दो समय रात्रि को भोजन किया करते थे। उन्होनें उसका एक सम्प्रदाय बना लिया। गुरुदेव बड़ा अच्छा वाक्य है, क्या उच्चारण करें उसे वह 'रोजे' कहा करते थे। युद्ध का काल था वह 'रोजे' प्रारम्भ हो गये। भगवन! कैसा काल आ गया। आपको तो बड़ा कष्ट हो रहा होगा क्योंकि आपने तो दार्शनिक समाज को देखा है जिस दार्शनिक समाज में मानव का बहुत बड़ा विकास होता है। (छठा पुष्प, आर्य समाज हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

जिन्हें महात्मा मुहम्मद कहा जाता है, उनका जीवन राष्ट्रीयता में रहा। यहूदियों को नष्ट करने के लिए जिस राष्ट्र में मुख्य कार्य होते थे वहाँ, मुहम्मद का जन्म हुआ। वहाँ मानव प्रीति से दूर रहता था और नाना घृणित कार्य करता था। जहाँ मानव में दूसरे को अपने

अधीन बनाने की प्रवृत्तियाँ आ जाती हैं वहाँ, कोई न कोई सुन्दर पुरुष आ ही जाता है। किन्तु महात्मा मुहम्मद राष्ट्र को अपनाने के पश्चात् स्वयं पाखण्डता में परिणत हो गये। उन्होंने पाखण्ड का प्रसार करना आरम्भ किया। उन्होंने एक पुस्तक को बनाया और किसी वृद्ध के आंगन में स्थिर कर दिया और राष्ट्र के पुरुषों को किसी भी प्रकार से वशीभूत करके उस पुस्तक का प्रभुत्व उनके ऊपर आ पहुँचा। राष्ट्र में आने के पश्चात् मानव का साधारण प्रजा पर प्रभुत्व स्वतः आ ही जाता है। मैं महात्मा मुहम्मद को महात्मा की दृष्टि से दृष्टिपात नहीं करता हूँ। मैं यह कहा करता हूँ कि मुहम्मद ऐसा पुरुष था जो राष्ट्र के लिए कुछ सुधारक था परन्तु जहाँ चरित्र और मानवता का प्रश्न है, महात्मा का प्रश्न है, वह मेरी दृष्टि से उसमें सुन्दर प्रतीत नहीं होता। मैं प्रायः परम्परा से यथार्थ वक्ता रहा हूँ। मुहम्मद ने तेरह संस्कार किये। तेरह पत्नियां उनकी रही। एक स्त्री नष्ट होती रही तो दूसरी आती रही। उन्होंने देखो, कुरिस परिवार से अपने दूर के पुत्र की स्त्री को भी अपने गृह को चलाने के लिए अपनाया, पत्नी होने के पश्चात् भी उससे संस्कार कर लिया। मैं इस दृष्टि से उन्हें सुन्दर स्वीकार नहीं करता हूँ, आगे इन्हीं के मानने वालों ने क्या-क्या कुरीतियों का आक्रमण किया? जिससे संस्कृति का विनाश हो गया।

जिसको आधुनिक काल में ईरान कहते हैं, वहाँ हमारे महर्षि गौतम जी का आश्रम रहा हैं उन्होंने वहाँ वेद का बड़ा प्रसार किया

था। ईरान से पूर्व उस राष्ट्र का नाम श्वांगनी था, वह आर्यत्व कहलाया जाता था। इसी प्रकार जिस राष्ट्र को आधुनिक काल में अरब रूपों से वर्णन किया जाता है, यह नाम मुहम्मद के द्वारा रूपान्तर है, इससे पूर्व अरब का नाम, 'शोनधेतु' नाम का राज्य कहलाता था जहाँ महर्षि जैमिनी जी का प्रायः भ्रमण होता था। मुहम्मद के मानने वालों ने इस भारत भूमि पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया परन्तु यहाँ राजा भोज के काल में महाराजा कालिदास हुये जिन्होंने मुहम्मद को नष्ट कर दिया और मृत्यु को प्राप्त करा दिया था। मुहम्मद यह चाहता था कि यदि इस भारत भूमि पर उसका साम्राज्य हो जायें, प्रभुत्व हो जाये तो सारे संसार को अपनी छत्र छाया में लाया जा सकता है। राजा भोज के महामन्त्री काली ने उन्हें नष्ट कर दिया। आगे समय आया और मुहम्मद के मानने वालों ने इस भारत भूमि पर आक्रमण किया और वह विजयी हो गये, यहाँ उनका साम्राज्य हो गया। उस साम्राज्य में क्या हुआ इस घृणित चर्चा को मैं लाना नहीं चाहता, सूक्ष्म चर्चा यह देना चाहता हूँ कि उनका चरित्र, उनकी मानवता, उनका इतिहास प्रकट करता है कि यदि मुहम्मद के मानने वालों में अराजकता न होती तो उनके यहाँ से जाने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता था। यवनों ने क्या किया? माता के श्रृंगार का हनन और अपना प्रभुत्व स्थापित करना यह उनका कार्य था। उनके राष्ट्र की परम्परा चली। उनके राज्य में यहाँ कोई ऐसा

राजा नहीं हुआ जिसमें पाण्डित्य हो और जिसने पाण्डित्य की दृष्टि से राष्ट्र को उन्नत बनाने का प्रयत्न किया हो। रहा यह कि क्यों इतने काल तक उन्होंने यहाँ राज्य किया? तो इसके वही कारण है, जो आधुनिक काल में भी प्रायः चल रहे हैं कहीं भाषा का विवाद है, कहीं मानवता का विवाद है। अरे! जब समाज में स्वार्थवाद आ जाता है तो प्रायः मानव पराधीन हो ही जाता है। यदि मानव के द्वारा अपनी संस्कृति हो तो कोई कारण नहीं बन सकता कि हमारे पाण्डित्य को किसी प्रकार की हानि पहुँचाने के लिए कोई आ पहुँचे। (बारहवाँ पुष्प, हैदराबाद, 6 मार्च, 1969)

यहाँ देखो, सबसे पूर्व जो मुहम्मद के मानने वाले थे स्वार्थी व्यक्ति मुहम्मद गोरी को लाये। मुहम्मद की बनाई हुई जो पुस्तक है उसमें केवल एक ही नाद है कि आज जो मुझे स्वीकार न करे उसे नष्ट करो। क्या तुमने इस शब्द को किसी काल में विचारा है। कदापि नहीं विचारते। मुहम्मद ने उन्हें केवल एक ही पाठ दिया। वास्तव में उन्होंने सुधारक कार्य बहुत कुछ किए परन्तु एक वाक्य कहा कि जो उसे न माने उसे "काफिर" और घृणा की दृष्टि से पान करो। इसका विशेष कारण क्या है? विचारों में, धर्म में अधूरापन। जहाँ धर्म में अधूरापन रहता है वहाँ विचार नहीं मिलते। जहाँ विचार नहीं मिलते वहाँ का स्वार्थ भी समाप्त नहीं होता। जहाँ स्वार्थ समाप्त नहीं होता वहाँ मानवता किस प्रकार बन सकती है। मुहम्मद ने उन्हें एक ही

पाठ पढ़ाया कि आज तुम राष्ट्रीय बनो, तुम राष्ट्र की रक्षा करो। धर्म को उन्होंने व्यापक नहीं माना, राष्ट्र को व्यापक माना। राष्ट्र को व्यापक मानकर आज सीमा पर संग्राम हो रहा है उनके स्वरों में वहीं मुहम्मद का नाद। स्वार्थी व्यक्तियों ने नहीं जाना कि हमारा कर्त्तव्य क्या है, हमें क्या करना है कहाँ तो एक मानव नष्ट हो रहा है कहाँ एक भोगविलास में लगा हुआ हैं एक माता के शृंगार को लूटा जा रहा है और एक माता भोग विलासों में मग्न है। आगे जो काल आया देखो, जब यहाँ यवन आये तो जैसे मुहम्मद ने अपने जीवन में तेरह संस्कार कराए ऐसे ही इनकी विचारधारा वालो ने यहाँ आ करके जो कार्य किये उसने इस संसार को अधोगति में पहुँचा दिया। हमारी जो माताएँ थीं, भगिनियां थीं वह बड़ी विदुषी होती थीं। महान् सीता का आदर्श उनके समक्ष था परन्तु विद्या लुप्त होने के नाते माताओं की विद्या समाप्त हो गई। महान् पुस्तकालय तो जैनियों के काल में ही समाप्त हो चुके थे। यवनों का काल आया तो विद्यालयों को और समाप्त कर दिया गया और समाज में अज्ञानता फैला दी। माताओं को बड़े-बड़े कष्ट देकर तथा उनके साथ महान् दुराचार कर इस संसार को अधोगति में पहुँचा दिया।

गोस्वामी तुलसीदास

जब यवनों ने महान् विद्यालय समाप्त कर दिये तो यहाँ गोस्वामी तुलसीदास जी आ गये। उन्होंने पुरुषार्थ किया और विद्या का कुछ

प्रसार किया, बिचारे इतने बुद्धिमान तो थे नहीं, परन्तु काव्य उनको बहुत सुन्दर था। काव्य सुन्दर होने के नाते उनकी वार्ताओं को समाज ने स्वीकार कर लिया, धर्म का प्रचार प्रारम्भ होने लगा। (छठा पुष्प, हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

महात्मा नानक

महात्मा नानक ने क्या ही सुन्दर एक वाक्य कहा कि जो रक्त का मानव के वस्त्र पर एक चिन्ह लग जाता है तो वह जल से क्या नाना प्रयत्न करो वह जाता नहीं। आज मानव के अन्तःकरण में, मानव के हृदय में जब किसी का रक्त जाता है तो क्या उसका चिन्ह मानव के हृदय में नहीं होता? वह किसी भी काल में नष्ट हो सकता है?

महात्मा नानक ने मानव बल को ऊँचा बनाया। अपने प्यारे शिष्यों को एक नाद दिया कि धर्म की रक्षा करो। तुम्हारे केश जाएं या न जाएं परन्तु धर्म की रक्षा करो। आज तुम्हें भी रक्षा करने की शिक्षा दे रहा हूँ, महात्मा नानक के अनुयायियों ने धर्म की रक्षा की। यवनों द्वारा जब वीर बन्दा बैरागी के शरीर को नोचा जा रहा था तो वह मग्न हो रहा था और क्यों मग्न था, क्योंकि वह महात्मा नानक के आदेशों को पूर्ण कर रहा था कि मैं धर्म पर अपने मानव जीवन को नष्ट कर रहा हूँ जिससे मुझे कोई शौक नहीं है। अरे! यह थी उन महात्माओं की एक महान चिन्हता। हम उन्हीं के पद चिन्हों पर चलें

जिससे हमारे मानवत्व में उच्चता आती चली जाये और हमारा जीवन विशाल बनता चला जाये।

आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया। केवल गुरुदेव को यह उच्चारण करने आया हूँ कि यहां कैसे-कैसे महान व्यक्ति हुए। देखो, महात्मा (गुरु) गोविन्द सिंह हुए जिनका आदर्श कितना ऊँचा दोनों पुत्रों को धर्म रक्षा के लिए यवनों द्वारा दीवार में चिन्वा दिया। आज के इस राष्ट्र का क्या बनेगा जो स्वार्थ में इतना बहते चले जा रहे हो। एक समय वह आयेगा जब यह स्वार्थ तुम्हारे लिए विष का कार्य करता चला जायेगा। क्या स्वार्थ है जो दूसरों को नष्ट करने की भावना तुम्हारे अन्दर आ चुकी है? इसे अपने हृदय से दूर कर दो। (छठा पुष्प, 11 अक्टूबर, 1965)

महर्षि दयानन्द

भगवन् उसके पश्चात् अभी सौ वर्ष भी नहीं हुए हैं, जब यहाँ एक दयानन्द नाम के आचार्य आ पहुँचे। जब उन्होंने संसार को इस प्रकार का देखा तो क्या किया? गुरुदेव! हमने तो कुछ ऐसा अनुभव किया है कि द्वापर काल में जो महर्षि अटूटी (महर्षि शमीक मुनि) थे, उनकी आत्मा ने आ करके दयानन्द के शरीर में प्रवेश किया। संसार बड़ा अधोगति में चला जा रहा था। उन्होंने अपने माता-पिता का ऐश्वर्य त्याग दिया और पूर्व ऋषियों का जो मार्ग था, उसे अपनाया। जैसे शंकराचार्य ने पूर्व महान् आत्माओं के कथन को

अपनाया, ऐसे ही इस महान दयानन्द ने यहाँ आ करके संसार में ज्ञान का प्रसार किया। वह नाना मूर्ति पूजकों के समक्ष पहुँचे, उनसे षास्त्रार्थ किया और पराजित किया। जैसे शंकराचार्य के ऊपर बड़ी-बड़ी महान् आपत्तियाँ आयीं, इसी प्रकार दयानन्द के समक्ष भी आयीं। पूर्व जन्म के ऋषि होने के नाते इस संसार का उत्थान करने के लिए, परमात्मा के नियमों का पालन करने के लिए वह संसार में आए थे और नाना पर्वतों में भ्रमण कर उन्होंने वेद की विद्या को खोजा। जहाँ भी वेद की विद्या मिली उसे ग्रहण करके, उन्होंने वेद की विद्या का प्रसार किया, उन्होंने उन शास्त्रों की वार्ताओं को अपनाया जिन्हें हमारे जैमिनी मुनि ने, हमारे गुरु ब्रह्मा आदि सबने अपनाया था। स्वामी शंकराचार्य ने जिस मत और जिस दार्शनिक विषय को माना, वहीं मान करके उन्होंने इस संसार में उसका पुनः प्रसार प्रारम्भ कर दिया। जो मानव समझ नहीं पाते, वे उन्हें न समझे। परन्तु वह वेद की विद्या के एक बहुत ही ऊँचे महान विद्वान माने गये हैं।

भगवन्! आधुनिक काल में तो उन्हें महर्षि नाम की उपाधि प्राप्त हो गयी है क्योंकि आधुनिक काल में ऐसा महान् व्यक्ति जब आ जाता है तो संसार को कुछ देकर चला जाता है। आचार्य दयानन्द के सिद्धान्त में एक बड़ी ऊँची वार्ता है, जिसको हर व्यक्ति को मानना चाहिए। देखो, इस वेद की विद्या में कुछ लुप्तता हो गयी है। इसकी

कुछ संहिताएँ नहीं मिली हैं, जिनका अभी तक प्रसार नहीं हुआ है। कुछ ऐसा तो माना है कि आचार्य दयानन्द ने चारों वेदों की संहिताओं को तो नियुक्त कर दिया है परन्तु जब पूर्ण संहिताएं न मिली तो बिचारे कहाँ से लाते? उनका तो जितना ज्ञान था, उसका प्रसार कर गये। जैसे गुरुजी के द्वारा ज्ञान का समुद्र है, ऐसे ही उनकी विद्या भी समुद्र थी क्योंकि वे पूर्व काल के अटूटी नाम के ऋषि थे, उन्हीं की आत्मा ने आ करके इस संसार का कल्याण करने के लिए जन्म लिया।

हे गुरुदेव! कलियुग का तो काल था ही। ईसा को मानने वाले व्यक्ति, जिनका यहाँ राज्य था, उनसे और यवनों इत्यादियों से उन्होंने षास्त्रार्थ किया। भगवन्! उनकी विद्या अब तक चल रही है परन्तु उनके अनुयायी उनके वाक्यों को ठीक से न समझ कर उनको अन्धकार में गिरा रहे हैं। तो यह है भगवन् आज संसार का वर्णन जिसमें अन्धकार छाता चला जा रहा है। (छठा पुष्प, हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

जब पश्चिम से प्राणी यहाँ आकर राज्य करने लगे तो इसी मध्य में एक आचार्य दयानन्द नाम के महात्मा आ गये। महात्मा दयानन्द ने एक ही वाक्य कहा कि आदि ब्रह्मा से लेकर के जैमिनी प्रर्यन्त जो तुम्हारी संस्कृति है, परम्परा है जो तुम्हारे सिद्धान्त कहलाते हैं, यदि उसी पर तुम आ जाओगे तो तुम्हारे राष्ट्र में शान्ति उत्पन्न होगी, तुम

महान् सम्राज्यवादी बनोगे अन्यथा तुम्हारा जीवन यो ही नष्ट-भ्रष्ट होता रहेगा। महात्मा दयानन्द ने अपने जीवन में कितना प्रयत्न किया परन्तु धर्म के ठेकेदारों ने उनको विष दे करके नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह तो विभूति थी, परम आत्मा थी, महान आत्मा थी उसको संसार का लेपन नहीं आया, द्रव्य का लेपन नहीं आया। जिस प्रकार भगवान् कृष्ण के जीवन में द्रव्य का लेपन नहीं आया। उसी प्रकार महात्मा दयानन्द के जीवन में किसी प्रकार की कुरीतियों का लेपन नहीं आया, अच्छाइयों की परम्परा बनी रही। क्योंकि ऋषित्व और पाण्डित्य उनके जीवन का स्वतः अधिकार रहा है। जिनका ऋषित्व और पाण्डित्य जन्मसिद्ध अधिकार होता है वही यहाँ संसार में कुछ उत्थान कर सकते है। मुझे स्मरण है कि महात्मा दयानन्द की आत्मा में पाण्डित्य से गुथे हुए उद्गम विचार कई जन्मों से चले आ रहे थे। यहाँ आ करके उन्होंने यवनों को दीर्घ वाणी से उच्चारण किया और जो यहाँ पश्चिम के राष्ट्र नेता थे उनको दीर्घ वाणी से कहा, अपने राष्ट्र में रहने वाले प्राणियों से कहा कि कहाँ जा रहे हो? आज तुम अपना समाज बनाओ, अपनी उन्नति का कोई साधन बनाओं। यह जो जातिवाद से, ब्राह्मणवाद चल रहा है, इस जातिवाद को नष्ट कर दो। यह जातिवाद की परम्परा है, यह महाभारत के पश्चात् की है, इसे नष्ट करो। उनके द्वारा यौगिकता होने के नाते जैसे सूर्य प्रकाशवान रहता है ऐसे ही उनका जीवन मानव के हृदयों में प्रदीप्त रहता आया

है और रहता रहेगा। हम उनका जितना आदर करते चले आये हैं, वह हमारा हृदय जानता है। उनका महान् आत्मा कितना सुन्दर, कितना पवित्र कितना मानवता से, ऋषित्व से, पाण्डित्व से गुथा था, उन्होंने आदि ब्रह्मा से जैमिनि मुनि तक के सिद्धान्तों को प्रकट किया। उनके हृदयों में उन सिद्धान्तों की कुजी थी। उनका हृदय पुकार कर कहता था कि वेद को अपनाओ, समाज ने उनको अपनाने का प्रयास किया, क्रान्ति भी आई, उनके कारनामों का महान् परिणाम भी हुआ किन्तु आधुनिक काल में उनके मानने वाले तर्कवाद पर आने के लिए तत्पर हो गये, जहाँ विचार-विनिमय करना था वहाँ तर्कवाद आ गया। जहाँ जातिवाद को नष्ट करना था वहाँ स्वयं भी जातिवाद में पारंगत हो गये है। जहाँ दयानन्द की पद्धति का प्रश्न है, दयानन्द की पद्धति नहीं मनु जी की पद्धति भी कहती है कि जातिवाद नहीं होना चाहिए। जातिवाद क्या वस्तु है? मानववाद होना चाहिए। यह जातिवाद कैसे नष्ट हो? जब यहाँ ब्राह्मण हो और ब्रह्मण कैसे हो? वे त्यागी-तपस्वी हों। ऐसे ब्राह्मण प्रत्येक गृह में जा करके उत्तम समाज को एकत्रित करके यह कहे कि वर्तमान काल के अनुसार तुम्हें परिवर्तित होना होगा और नहीं होगें तो भयंकर क्रान्ति मानव के निकट आती चली जा रही है। दयानन्द के मानने वालों ने तर्कवाद को अपना करके उनके यौगिक वाक्यों को त्याग दिया है। जिससे महात्मा दयानन्द की आत्मा भी अन्तरिक्ष में व्याकुल हो रही

है कि यह मेरे मानने वाले, मेरे पुजारी क्या कर रहे हैं। महात्मा शंकराचार्य की पुनीत आत्मा भी इसी प्रकार व्याकुल होती है। (बारहवाँ पुष्प, हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

जब मुझे महात्मा दयानन्द का जीवन स्मरण आने लगता है, उनकी विचार धारा, उनका ब्रह्मचर्य उनका तप स्मरण आने लगता है तो मेरा हृदय गद्गद् होने लगता है और मुझे यह प्रतीत होने लगता है कि वह महापुरुष कैसा महान था कि उसने यर्थाथ क्रान्ति को लाने का प्रयास किया और उस यथार्थ क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि यह राष्ट्र जो दूसरे राष्ट्रो के नीचे दबायमान था, वह यहाँ से प्रस्थान कर गयें। यह होता है यथार्थ महापुरुषों की क्रान्ति का परिणाम। (ग्यारहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 31 जुलाई, 1968)

आचार्य दयानन्द ने ऐसा कहा है कि सत्य को मानने में किसी प्रकार की कोई हानि नहीं। वस्तुतः आधुनिक काल में उनके मानने वाले कुछ व्यक्ति ऐसे आ पहुँचे हैं जिन्होंने सत्यता को स्वीकार करना ही समाप्त कर दिया है जब वह सत्यता को नहीं मानते तो उनके वाक्यों या उनके बनाए हुए जो नियम है उनको समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया है। यथार्थ को यथार्थ मानने में किसी को किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए। उसको मान लेना चाहिए। संसार में बहुत-सी ऐसी वार्ताएँ है जो बुद्धि का विषय नहीं, बुद्धि से परे का विषय है। आज अनुसंधान करो और बुद्धि से परे की वार्ताओं को विचारो।

योगाभ्यास करो, आत्मा को परमात्मा के समक्ष पहुंचाओ। योग को जान करके संसार को जानने वाले बनो। (छठा पुष्प, हनुमान रोड, नई दिल्ली, 12 मार्च, 1962)

साहित्य और चरित्र को शुद्ध बनाओ

हे ब्राह्मणों! आओ तुम पुनः से अपने पात्रों को शुद्ध बना लो। यदि आधुनिक काल का ब्राह्मण पात्रों को शुद्ध बना लेगा तो साहित्य जीवित रह सकेगा, अन्यथा जिस सामाज का, आर्यत्व का साहित्य पतित हो गया है तो उनके द्वार रह क्या गया है? महाभारत के काल में परीक्षित काल के पश्चात् यह अज्ञानता आई। जो वाममार्ग आया, उसमें धर्म और वैदिकता को नष्ट करने के लिए वह तत्पर रहे। यहाँ तक कि वेदों के भाष्यकारों में भी मांस भक्षण की त्रुटि आई। जहाँ वेद में कोई भी मन्त्रा, कोई भी शब्द इस प्रकार का नहीं है, जिसमे मांस भक्षण करने की वृत्ति मानव की बनाई जाये। आयुर्वेद का जहाँ प्रसंग है वह द्वितीय प्रसंग है। विचारना यह है कि उन कारणों को विचारे जिन परम्पराओं में हमारे साहित्य के जो पात्र है उनको अशुद्ध किया गया। उन्हीं पात्रों को लेकर आधुनिक काल में तार्किक पुरुषों ने इन साहित्यों को नष्ट करके अपने आप में उपाधियुक्त बनते चले जा रहे है। क्योंकि जब साहित्य के पात्र अशुद्ध हो जाते है तो अज्ञानी पुरुष, तार्किक पुरुष बन जाते है, वे नास्तिकवाद में परिणत होते हुए पात्रों को भ्रष्ट रूप में दृष्टिपात् करके अपनी उपाधियों को

प्राप्त किया करते है। आज हमें पुनः इनके शुद्ध रूप को लाना है, शुद्ध रूप की प्रतिभा को लाने के लिए सदैव प्रयास करना है।

रामायण और महाभारत के पात्र

आधुनिक काल में जिस साहित्य को दृष्टिपात् किया जाता है उनमें रामायण के पात्रों को भी बौद्ध काल और जैन काल मे भ्रष्ट किया गया। मुहम्मद के मानने वाले मुस्लिम काल में भी उनको ह्रसता में परिणत कराया गया उनके ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियाँ की। महात्मा बुद्ध और जैन समाज से पूर्व वाममार्ग समाज का एक वृत्त था और राष्ट्र में उनकी पताका थी। उन्होंने जो अट्ठारह पुराण कहलाए जाते है, उनकी रचना कराई। जो हमारा पुरातन साहित्य है, हमारी जो पुरातन ऋषि मुनियों की सूक्ष्म प्रणालियाँ हैं, राजाओं की परम्परा है वह त्याग कर वहाँ वाममार्गियों ने मांस भक्षण करने की यागों में मांस की आहुति देने की परम्परा प्रारम्भ की। जैसे गौमेघ याग में गौ के मांस की आहुति देना। अजामेघ याग में बकरी के मांस की आहुति देना और अश्वमेघयाग में घोड़े की आहुति देना, देव याग में मानव के मांस की आहुति देना, इस प्रकार की जो परम्परा चली जिसमें उन्होंने मांस भक्षण के लिए, अपनी रसना के आनन्द के लिए धर्म और मानव को भ्रष्ट करने के लिए मिश्रण किया। आज जब मैं वाममार्ग के क्षेत्र में जाता हूं, तो मुझे भ्रान्ति उत्पन्न होने लगती है। हमारे यहाँ बहुत ऊँचे-ऊँचे विद्वान

थे। परन्तु द्रव्य की लोलुपता के कारण वे रुढ़िवाद में परिणत हो गये। उन्होंने राम के साहित्य को नष्ट किया तथा महाभारत के पात्रों को भी विकृत किया। महाभारत के काल में द्रौपदी, पितामह भीष्म, गांधारी, पाण्डव पुत्रों तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों के सन्दर्भ में बड़ी विचित्र गाथाएँ चलित की गई है और उन पात्रों में अशुद्धियों का समावेश किया गया है। आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व एक चेतांग नाम का ब्रह्मण हुआ और एक 'रमाशंकर' नाम का ब्राह्मण हुआ जैन समाज और बौद्ध समाज ने दोनों को द्रव्य देकर महाभारत के पात्रों को विकृत बनवा दिया। महाभारत के जो पात्र है उनको अशुद्ध बनाया। उसी काल में 'रेनकेतु' नाम के ब्राह्मण थे और एक स्वाति नाम के ब्राह्मण थे इन्होंने रामायण के पात्रों को विकृत किया। इसी प्रकार हमारे साहित्य में समय-समय पर अनेक प्रक्षेप करके साहित्य को ही नष्ट करने का प्रयास किया जाता रहा है। (चौबीसवाँ पुष्प, 27 अक्टूबर, 1973)

रुढ़िवादी काल

पूज्य महानन्द जीः भगवन्! इस लोक में रुढ़िवाद है जैसा मैंने आपसे वर्णन किया था यहाँ कोई मुहम्मद को मानने वाला है, कोई ईसा को मानने वाला है कोई दयानन्द को मानने वाला है और कोई महात्मा शंकर को।

मेरे प्यारे ऋषि मण्डल। मैं पुनः से एक वाक्य कहा करता हूं कि

बेटा! तुम इसे रूढ़िवाद स्वीकार कर लो परन्तु जो भी ऊँचा मानव आता है वह कोई न कोई वेद के अंग को लेकर ही चलता है। कोई सन्यासी उच्चारण करता है कि भाई राष्ट्र में ऊँची विद्या होनी चाहिए, तो बेटा! यह भी वेद का एक पवित्र अंग बन जाता है। कोई मानव यह कहता है कि किसी दूसरे मनुष्य को अपने अधीन बनाना है। यह कोई वेद का संदेश नहीं है। जब बेटा! इस प्रकार के विचार कोई भी मानव देता है तो वह वेद के एक न एक अंग को लेकर चलता है। बेटा! एक समय तुमने मुझे मुहम्मद और ईसा की चर्चा प्रकट कराई और तुमने वर्णन किया कि ईसा आयुर्वेद के सिद्धान्त को लेकर चला, आयुर्वेद से चिकित्सा करता हुआ, ब्रह्मचर्य का पालन करता, उनमें कोई सूक्ष्मता हो सकती है परन्तु वह वेद के कोई न कोई अंग को लेकर चला। आगे संसार अपनी बुद्धि के अनुकूल रूढ़िवाद में चला जाए तो बेटा! वेद का कोई दोष नहीं और न यथार्थ पुरुष का कोई दोष है। आगे मुहम्मद के विषय में तुमने एक चर्चा निर्णय की कि जहाँ उनकी जन्मभूमि थी वहाँ अप्रिय वस्तुओं को पान करना, प्रत्येक गृह में वज्रों के देवालय, द्रव्य के बदले अधिक द्रव्य लेना आदि, उन सबका एक आदेश देने वाला व्यक्ति हुआ वह कोई न कोई वेद के अंग को लेकर चला। यह हो सकता है कि राष्ट्रवाद में उनकी प्रवृत्ति अधिक रही हो और आगे रुढ़िवाद में चले जायें तो उसमें वेद का कोई दोष नहीं।

इसी प्रकार बेटा! तुमने महात्मा महावीर की चर्चा प्रकट की वह 'अहिंसा परमोधर्मः' का नाद लेकर चले, तो यह ध्वनि वेद में आती है। अब रही यह बात कि आगे चल करके उनके मानने वाले रूढ़िवाद में चले गए तो बेटा! वेद का कोई दोष नहीं और न वेद के किसी अंग का कोई दोष है। इसी प्रकार आगे तुमने वर्णन कराया कि महात्मा बुद्ध भी 'अहिंसा परमोधर्मः' को लेकर चले, उनके जीवन में, उनकी लेखनी में कोई सूक्ष्मता हो सकती है परन्तु उनका जो संकेत था वह वेद का था और वह वेद के संकेत को लेकर चले। इसके पश्चात् जैसा तुमने वर्णन कराया महात्मा शंकराचार्य, त्रेतवाद को लेकर चले। उन्हें महर्षि कह दो, महापुरुषों की उपाधि दे दो, कुछ भी कह दो, परन्तु वह वेदान्त को लेकर चले उन्होंने वेद के सर्वशः अंग को अपनाया। आगे चलकर उनको मानने वाले उनके इतने गम्भीर विषय में न जाकर रूढ़िवाद में चले गये। इसमें वेद का कोई दोष नहीं। इसी प्रकार महात्मा दयानन्द की तुमने चर्चा प्रकट की कि वह वेद का संदेश लेकर चले। त्रेतवाद को लेकर के चले, वेद के प्रत्येक अंग को लेकर के चले। आगे चलकर उनकी मान्यता वाले रूढ़िवादिता में आ जाएँ तो इसमें दयानन्द जी का या वेद का कोई दोष नहीं। इसी प्रकार तुमने महात्मा नानक की चर्चा की। महात्मा नानक एक वाक्य को लेकर चले कि ''राष्ट्रवाद का कल्याण होना चाहिए।'' मानवता ऊँची होनी चाहिए, किसी मानव का, किसी

जीव का हनन नहीं करना चाहिए। उसी संकेत को लेकर चले। यदि आज उनकी मान्यता वाले रूढ़िवाद में आ जाए तो बेटा! इसमें महात्मा नानक का कोई दोष नहीं। वह वेद के किसी अंग को लेकर चले यह दोष तो मानने वालों का है। देखो, वेद सार्वभौमिक है जितने भी महापुरुष होते है वेद के किसी न किसी अंग को अपनाया करते है। (आठवाँ पुष्प, रामकृष्णा पुरम, नई दिल्ली, 1 अप्रैल, 1965)

बेटा! एक समय इस कलियुग की वार्ता प्रकट करते हुए तुमने कहा था कि महात्मा नानक नाम के महात्मा इस संसार में हुए। उन्होंने यह परिपाटी चलाई कि तुम्हें अपने इन केशों को स्थापित करना है और जो मुखारबिन्द पर केश होते हैं इन सबको भी स्थापित करना हैं तुमने भी कहा था कि महात्मा नानक ने मर्यादा स्थापित करने के लिए, यवनों से संग्राम करने के लिए, अपने धर्म की मर्यादा को ऊँचा बनाने के लिए ऐसा कहा। क्षत्रिय रूप हो करके उन्होंने अपने केशों को स्थापित करते हुए आर्यत्व का उत्थान किया। अपने धर्म की रक्षा की। परन्तु यह परम्परा महात्मा नानक ने नहीं यह परम्परा क्षत्रिय रूप में रही थी, पर परम्परा हमारे आर्य रूप में भी थी। वह हमारे धर्म की रक्षा के लिए नहीं परन्तु यह हमारे परमात्मा के ज्ञान विज्ञान के उपर निर्भर थी।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव! यह कहते है कि यह इस प्रकार

का हमारा धर्म है और पाँच चिन्ह हमारे द्वारा अनिवार्य हैं। महानन्द जी! इसका उत्तर यह है कि क्षत्रियों के द्वारा पाँच चिन्ह अनिवार्य है परन्तु केवल हम केशों के लिए पांच चिन्ह माने तो यह तो केवल हमारा रूढ़िवाद है। हमें तो इसके विज्ञान को देखना चाहिए, इसमें मानवता क्या कह रही है। इसमें मानवता तो यह कह रही है कि हमने राष्ट्र की रक्षा के लिए, धर्म की रक्षा के लिए हमने कोई विधान बनाया और वह रक्षा हमारी पूरी हो गई। उसे आज भी अपनाते रहे तो उसका कोई महत्व नहीं वह तो रूढ़िवाद है। महात्मा नानक वह महान आत्मा थी जिन्होंने संसार का उत्थान किया, धर्म की रक्षा की परन्तु आज उनके अनुयायी उनके मार्ग से बहुत दूर चले गये हैं। आज उनके अनुयायी दूसरों को अपना करना जानते है परन्तु अपने को ऊंचा बनाना नहीं जानते। आज उन्हें ऊँचा बनना है। अपनी रसना के आनन्द में नहीं जाना है परन्तु अपने बल की रक्षा करनी है॥ (दसवाँ पुष्प, करोल बाग, नई दिल्ली, 26 जुलाई, 1963)

संस्कृति का आघात

यवनों ने यहाँ आकर मनुष्यों के विचारों पर आक्रमण किया। क्यों हुआ? इसका कारण है कि यह रूढ़िवाद से हुआ। रूढ़िवाद से विचारों पर आक्रमण हुआ और विचारों पर आक्रमण करके यहाँ जो सम्पन्न विद्या थी उसे शान्त कर दिया। मुनिवरो आधुुनिक काल का संसार तो अपने विचारों मे इतना परिपक्व है कि जो भी यथार्थ

वाक्य आता है वह ढलक जाता है, उसमें वह समाहित नहीं होते। इसका क्या कारण है? इसका कारण है कि मानव के द्वारा इतना स्वार्थ है, इतना रूढ़िवाद है रूढ़िवाद से विचारों पर आक्रमण शान्त नहीं कर सकते। आज एक-दूसरे के विचारों पर आक्रमण किया जाता है जैसे मुहम्मद ने यहाँ आकर के विचारों पर आक्रमण किया, बुद्ध ने विचारों पर आक्रमण किया, महावीर ने विचारों पर आक्रमण किया, जिससे यहाँ अनेक मत प्रचलित हो गए। राजाओं ने आकर विचारों पर आक्रमण किए। अकबर ने यहाँ विचारों पर आक्रमण किया जिससे वैदिक संस्कृति शान्त होती चली गयी। यहाँ क्या नहीं हुआ? वह पुस्तकालय जिसमें महाराजा अर्जुन और घटोत्कच की वह पुस्तक जिनमें सम्पन्न भौतिक ज्ञान और विज्ञान था वह सब अग्नि के मुख में चला गया। आज उस साहित्य के समाप्त होने से क्या हुआ कि हमारी इस भारत भूमि को छोड़कर अन्य दूसरे राष्ट्रों ने जिन्होंने विज्ञान में कुछ प्रगति की है उन्होंने कहा है कि वेद ऋषियों का एक काव्य है।

जर्मनी की प्रगति वेद से

महाराजा परीक्षित के राज्य में महाराजा जनमेजय द्वारा सर्व यज्ञ कराने के पश्चात् जिसको हम पूर्व काल में जन्मस्ती कहा करते थे और आधुनिक काल में उसको जर्मनी कहा जाता है, वहाँ जाकर जनमेजय ने अपना एक सूक्ष्म सा राष्ट्र बनाया और वह वहाँ वेद के

अनुपम साहित्य को स्थापित किया। उस वेद की विद्या से उस राष्ट्र ने विज्ञान में अधिक प्रगति की है। विज्ञान तो वेदों में ही प्राप्त होता है। हमें संसार में कोई ऐसी पुस्तक प्राप्त नहीं होती जहाँ वेद से पुरानी और ऊँची कोई विद्या प्राप्त हो जाये। यह ज्ञान विज्ञान सब प्रकार की विद्या से सम्पन्न हैं।

१३ महाभारत कालीन स्थानों की ऐतिहासिकता

आज मैं विचारों की चर्चा करने आया था कि यहाँ विचारों पर कितने आक्रमण हुए। महात्मा महावीर के जो अनुयायी थे उन्होंने यहाँ पुस्तकालय के पुस्तकालय समाप्त कर दिये मैंने आज से 3500 वर्ष पूर्व वह दृश्य देखा हैं जब यहाँ महाराजा पाण्डव के साहित्य को अग्नि के मुखारविन्द में अर्पित कर दिया था। मैंने उस समय को देखा था जब यह लाक्षागृह अग्नि में नष्ट हो गया था। यहाँ महाभारत के युद्ध के पश्चात् एक विशाल विद्यालय रहा था। यहाँ जो साहित्य था जिसमें महाराजा घटोत्कच, महाराजा अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव का जो भी साहित्य था, विज्ञान था जिसमें अन्तरिक्ष में जाने के मन्त्रों के आविष्कार का विधान था, नाना धातुओं आदि को जानने का साहित्य था। वह सब अग्नि के मुख में चला गया। जब भारत-भूमि के विनाश का समय आया तो ऐसा किया गया। यदि इसका अभाग्य न होता तो इसको आज ऐसा भोगना न पड़ता, इस पर आक्रमण ही क्यों होता? (छठा पुष्प, जंगपुरा, नई दिल्ली, 15 जुलाई, 1964)

इस आसन पर जो 'लाखा ग्रहं ब्रह्मे' महाराजा दुर्योधन ने एक लाख का गृह, लाख गृह बनवाया था, पाण्डव पुत्रों को नष्ट करने के लिए। उस समय क्या हुआ? पाण्डव तो जीवित चले गये परन्तु संग्राम हुआ। अरे, दुर्योधन न रहा संसार में, पाण्डवों की विजय हो

गयी। उसके पश्चात् भी इसी स्थान पर, महाभारत के ही काल में, उसके पूर्व काल में घटोत्कच और महाराजा अर्जुन का यहाँ कुछ विशाल पुस्तकालय रहा है। यहाँ सूर्य विज्ञान पर विशाल पुस्तकों का भण्डार था। सूर्य विज्ञान क्या है, चन्द्र विज्ञान क्या है? और मंगल विज्ञान क्या है? घटोत्कच जो हिडम्बा के पुत्र कहलाए जाते थे, उनका यहाँ एक पुस्तकालय था। विज्ञान के सम्बन्ध में एक पुस्तक उन्होंने लेखनीबद्ध की थी। उस पुस्तक में चौदह सहस्र पृष्ठ थे। उस पुस्तक में वर्णित यत्र का नाम 'सुरंगत' था। सुरंगत नाम के यन्त्र में इतना प्रवाह होता है कि जिस व्यक्ति को तुम्हें नष्ट करना है वह यन्त्र उस व्यक्ति को नष्ट करके वापस आ जाता है। उस पुस्तक में सर्व मन्त्रों का निर्माण लिखा था।

इसी प्रकार महाराजा अर्जुन जब मंगल-मण्डल में तीन वर्ष और तीन मास तक रहे, उन्होंने 'मंगल केतुक' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। जैन काल में उसको अग्नि के मुखारविन्द में अर्पित किया गया था। आगे चलकर महाराजा परीक्षित के समय में यहाँ उनका एक न्यायालय रहा है। परन्तु समय आता रहा इसकी प्रतिभा में, मैंने इससे पूर्व काल में भी प्रकट कराया था कि सबसे प्रथम जैन काल में महावीर के मानने वालों ने पुस्तकों के भण्डार को नष्ट कर दिया। कारण क्या? क्यों नष्ट कराया? जिससे उनके समाज का ऊँचा प्रभाव हो। जब तक ये पुस्तक रहेंगी, विज्ञान ऊँचा रहेगा, तो तुम्हारा जो

नवीन 'अहिंसा परमोधर्मः' है, यह ऊँचा नहीं बनेगा। इसी प्रतिभा से, इन संकीर्ण विचारों से यह सब नष्ट भ्रष्ट होता रहा है।

इसी प्रकार आगे चल करके, आज भी मुझे स्मरण आ रहा है, जब यवनों का राज्य आ गया, उन्होंने इस स्थान पर बलि दी। चन्द्रकान्त एक वैश्य था, जो मनन करने वाला था उन्होंने, यहाँ एक नया सुन्दर भव्य मन्दिर बनवाया, उन्होंने यहाँ कूप बनवाया। उस काल को लगभग पन्द्रह सौ बाईस वर्ष हो चुके है, जब वाणिज्य करने वालों ने कूप इत्यादि का निर्माण और नाना प्रकार की प्रतिमा बनवाई। यवन काल आया उसका परिणाम यह हुआ कि राज्य बल के कारण पुजारियों तक, जो पण्डित रहने वाले थे, उनको नष्ट कर दिया। यहाँ ऐसा होता रहा है जिसके ऊपर मैं आज विवेचना देने से असमर्थ रहता हूँ। हमारा सुन्दर काल एक ऊँचेपन पर बारम्बार स्मरण आता रहा है, वाक्यों को मैं पुनरुक्ति देना नहीं चाहता। आज भी उनको नष्ट भ्रष्ट करने की योजना बनती रहती है परन्तु प्रभु की अनुपम कृपा रहती है। आज जो मानव सदैव दूसरों के विचारो, दूसरों की मौलिकता, दूसरे के कार्य को नष्ट करने के लिए तत्पर रहता है, वह स्वयं इस संसार-सागर से नष्ट हो जाता है। परन्तु आज जो जगत् है उसको 'अहिंसा परमोधर्मः' की वेदी पर आना चाहिए, साधक बनना चाहिए। क्योंकि बिना साधना के मानव का जीवन शून्य रहता है। परन्तु साधक उस काल में बनता है जब

उसका आहार, व्यवहार सुन्दर होता है। आहार, और व्यवहार के लिए हमें सदैव सावधान रहना चाहिए, साधना में युक्त रहना चाहिए। उसी साधन से हमारे जीवन का पुनः निर्माण होता रहा है।

जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है इसी महान सुन्दर लाक्षागृह पर आज लगभग 4000 वर्ष के पश्चात् इस पर पुनः विद्युत प्रकाश का निर्माण हुआ है।

'लाक्षागृह' पर विभिन्न समय में याग

द्वापर काल मे एक समय जिस भूमि पर यह याग हो रहा है यहाँ, महर्षि वेदव्यास ने एक याग कराया। वह याग ब्रह्मचारियों के समीप हुआ। उस याग में नाना ऋषियों का आगमन हुआ। उस याग के ब्रह्मा अपने में अपनी आभा को प्रकट कर रहे थे और उस याग में बुद्धिमानों का नृत्य होता रहा ओर वैज्ञानिक रूपों से देखो, निकासने की क्षमता रही। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो जानते हैं कि जहाँ याग हुआ वहाँ एक विद्यालय था। जहाँ महर्षि वेद व्यास मुनि महाराज और द्रोणाचार्य इत्यादियों ने पधार कर याग किया। तो याग का अभिप्राय यह है कि 'भूः वर्णाः भुवः वर्णोस्यतां देवाः आभ्यां दमन्यं ब्रह्मः लोकाम्' याग अपने में अद्वितीय क्रिया-कलाप है। जिसके ऊपर मानव परम्परागतों से अध्ययन करता रहा है। एक समय माता कुन्ती ने भी अपने पांचों पुत्रों के सहित यहाँ याग किया था। याग तो परम्परागतों की एक कुजी कहलाती है और वह मानव के हृदय को

पवित्र बनाने वाला है। (अट्ठावनवाँ पुष्प, बरनावा, 19 मार्च, 1979)

हमारे यहाँ विज्ञान पूर्व में भी था जो मानव कृतियों में रमण करता रहा है। हमारे यहाँ विज्ञान के सम्बन्ध में, नाना मन्त्रों के सम्बन्ध में विचार विनिमय प्रायः होता रहा है। इसीलिए आज मैं इन वाक्यों को प्रकट कर रहा हूँ क्योंकि मुझे इसका इतिहास देना बहुत ही अनवार्य है। मैं यह उच्चारण करने को बड़ा प्रसन्न रहता हूँ, हे प्रभु! तेरी कैसी अनुपम महिमा है, जहाँ श्मशान भूमि हो सकती है वहाँ सुन्दर सुन्दर यज्ञ भी हो सकते है और जहाँ यज्ञ हो सकते है वह स्थान भ्रष्ट भी हो सकता है। वास्तव में वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि संसार ऐसा ही चलता रहा है। परम्परा से ही जहाँ श्मशान भूमि हो जाती है वहाँ किसी काल में राष्ट्र गृह बन जाते हैं, जहाँ राष्ट्र गृह होते है वहाँ श्मशान भूमि भी बन जाती है। इसी प्रकार यहाँ न्यायालय भी रहा है तो श्मशान भूमि भी रही है। यहाँ श्मशान भूमि रही है तो देखो यज्ञ भी होते रहे है। (ईक्सवाँ पुष्प, लाक्षागृह बरनावा, 20 फरवरी, 1970)

यह पाण्डव स्थल की भूमि है। यहाँ मैंने (महानन्द जी) भी कई काल में तपस्याएँ की हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यहाँ उस पुरातन काल में भी कई यज्ञ इत्यादि करायें। जब मैं इस यज्ञ की वेदी पर, अपने सूक्ष्म स्वरूप के द्वारा, इस यज्ञ स्थली पर विचार-विनिमय करने लगता हूँ जिस स्थली पर यवनों के द्वारा नाना प्रकार के

अपराध हुए हो, जहाँ ब्राह्मणों और मन्दिर के पुजारियों के नाना विभाग करके पृथ्वी में दमन कर दिए हों, यह भूमि कैसी ''पुण्य ब्रह्मा अश्वतम्'' थी। जहाँ यज्ञों के पारायण होते हों। जब मुझे यह वाक्य स्मरण आता है, कि जब यहाँ शिवालय था। श्वेत श्वानित नाम का एक वैश्य था, जिन्होंने यहाँ शिवालय का निर्माण किया था। उससे पूर्व यहाँ कुछ ''अप्रतां अश्वान'' था जो समय के विनाश को प्राप्त होते रहे। उससे पूर्व यहाँ कुछ खण्डहरों के अवशेष थे। जहाँ साकृत रहता था। यहाँ महाराज परीक्षित के न्यायालय के भी कुछ खण्डहरात थे। उनमें कुछ आकृत भी हो गये। वह दमन किए गए, इसके पश्चात् यहाँ शिवालय बना। जिसको हम ''भ्राहे आस्वात् कूप'' कहा करते है, इस कूप का भी उस समय निर्माण हुआ था।

नदियों की प्राचीनता

भीम और उनके पुत्र घटोत्कच की यहाँ एक सुन्दर निर्माणशाला थी, विज्ञानशाला थी जहाँ, चन्द्रमा से ऊपर जो आज भी उपग्रह भ्रमण कर रहे है उनका यहीं इसी भूमि पर निर्माण हुआ था। वे दोनों पिता और पुत्र वैज्ञानिक रूपों से महाराजा व्यास के द्वारा, महाराजा प्रीति के द्वारा यहाँ नाना प्रकार की विज्ञानशाला में परमाणुवाद का निर्माण करते रहते थे। उसके पश्चात् यहाँ न्यायालय रहा। यहाँ जो नदियाँ है, जहाँ आज अपना प्रवाह लिए हुए है यह नदियाँ, लगभग महाभारत के काल से और आज से तीन सौ पचास

वर्ष पूर्व तक, तीन कृति कोई आधा योजन की दूरी तक अपना प्रवाह लिए हुए रहती थी। इस वारणावत भूमि क्षेत्र में उस काल में लगभग बाईस लाख मानस वास करते थे। भूमि का वह भाग आज कहाँ चला गया? मैं नहीं जानता। उस प्रभु की कैसी अद्भुत रचना है।

यवनों का दमन

इस भूमि पर जहाँ लाक्षागृह का निर्माण हुआ उसके पश्चात् यहाँ क्या नहीं हुआ? यवनों ने क्या नहीं किया? यवनों ने यहाँ नाना प्रकर के जो मृत शव थे, उनसे यहाँ श्मशान भूमि बना दिया। देखो, सरबुदीन एक यवन था उसने यहाँ लगभग बाईस ब्राह्मण कन्याओं को, ब्रह्मकन्याओं को अपनी भुजाओं से नष्ट करके यहीं उनका दमन कर दिया। जब आज, उस सरबुदीन को पूजा के योग्य; यह समाज जब स्वीकार करने लगता है तो मुझे बड़ा आन्तरिक कष्ट होता है। मैं यह कहा करता हूँ ऐसा जो वेद के विपरीत कर्म करने वाला हो, उसे तो संसार में नष्ट करने के लिए मानवी कृति प्राप्त होनी चाहिए। मैं यह वाक्य द्वेष से प्रकट नहीं कर रहा हूँ, विचार देना मेरा कर्त्तव्य है। संसार में क्या-क्या नहीं बनता। जहाँ श्मशान भूमि है, जहाँ ब्रह्म कन्याओं की हत्या की जाती हो, जहाँ यवन काल में लगभग सवा मन जनेऊओं पर भी प्रहार हुआ हो। मैं नहीं जानता यहाँ ऐसी द्वेष की मात्रा क्यों बढ़ी? राष्ट्र का बल (क्षत्रिय) समाज जब रूढ़ि में डूब जाता है तो उस रूढ़ी का भयंकर रूप धारण हो जाता है।

उस समय इसी कूप में पांच वैश्य कन्याओं को विषय करके विराजमान कर दिया था। आज वह कूप कैसा वृत (रूप) धारण करने वाला है। जब किसी राष्ट्र से दूसरा कोई राष्ट्र बना करता है, किसी दूसरे राष्ट्र से कोई धर्म आता है उसको धर्म नहीं कहते। मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था कि मुहम्मद को मैं महात्मा नहीं कहा करता हूँ। क्योंकि उसमें महात्मा के कोई गुण नहीं थे। आज मैं यह उच्चारण कर सकता हूँ। मूर्खो का जब समाज एकत्रित होता है तो मूर्खो को शिक्षा नहीं होती, दीक्षा नहीं होती तो वहाँ मूर्खो का समाज केवल दुराचार ही करता है। वह माताओं के श्रृंगार को नष्ट करता है। वह माताओं के श्रृंगार को इसलिए भ्रष्ट करता है क्योंकि उसमें शिक्षा की सूक्ष्मता होती है। जहाँ शिक्षा नहीं होती वहाँ विचार भी नहीं होते और जहाँ विचार भी नहीं होता वहाँ विवेक भी नहीं होता और जहाँ विवेक नहीं होता वहाँ पाप और पुण्य की जानीकारी मानव को नहीं होती। मैं आज इसलिए इन वाक्यों को उच्चारण कर रहा हूँ कि क्या जिस पृथ्वी पर श्मशान भूमि रह जाए वहाँ यज्ञ-वेदी, न्यायालय और गृह और शिक्षालय भी हो सकते है? जहाँ दुरुपयोग किया जाता हो, जहाँ एक-दूसरे को नष्ट करने की भावना हो, वहाँ देखो, कोई समय ऐसा भी आता है जब उस भूमि पर यज्ञ सुगन्धि भी होती है। जहाँ विचारों की दुर्गन्धि विराजमान हो करके केवल अशुद्ध विचार ही प्रदान किए जाते रहे हों, जहाँ विचारों की दुर्गन्धि, कर्म की दुर्गन्धि,

जहाँ दोनों ही रहती हों, वहाँ आज परिवर्तन हो करके देखों सुगन्धि ही सुगन्धि होने लगी है। कैसा प्रभु का यह जगत् है, कैसी प्रभु के जगत् की प्रतिभा है, कैसा यह जगत् परिवर्तनशील है? कैसा यह जगत् एक मानवीयता से सुगठित रहता है?

मुझे स्मरण है आज से लगभग दो सौ वर्ष भी नहीं हुए, लगभग सौ वर्ष हुए यहाँ एक ब्राह्मण आ गया। ब्राह्मण ने यवनों से यहाँ जल की याचना की, उसे क्षुधा लग रही थी। उसके मुखारविंदु से किन्हीं यवनों के पुत्रों के सामने कटु शब्दों का प्रयोग हो गया। कट ुशब्दों का प्रयोग होने पर शस्त्र भय दिखाकर गऊ के रक्त का उसे पान कराया और फिर मृत्यु के मुखारविन्द में परिणत कर दिया। परन्तु इसी भूमि पर अन्य प्रवाह भी चलते रहे। तो यह कैसी प्रभु की विचित्रता है? जहाँ वैज्ञानिक रहते हो, जहाँ घटोत्कच तथा भीम जैसे वैज्ञानिक जिनकी चन्द्र और मंगल तक की उड़ान रहती हो जहाँ शिवालयों में सुगन्धि होती हो उसी भूमि पर ऐसे-ऐसे रक्तों के प्रहार होते हों, उसके पश्चात् पुनः से यह सुगन्धि आ जाए तो यह प्रभु की ही विचित्रता है। यह तो प्रभु का जगत् है, जहाँ श्मशान है वहाँ सुगन्धि है जहाँ सुगन्धि है वहाँ कल को श्मशान भी हो सकता है।

मैं यहाँ इस भूमि पर यह भी दृष्टिपात करता हूँ जहाँ व्यास जी ने और जैमिनी जी ने वेदों की, यज्ञों की प्रतिभा और घोषणा की हो। यहाँ यज्ञ होते, सुगन्धियाँ होती, महत्ता का दिग्दर्शन होता, परन्तु मैं

यह वाक्य इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ कि समाज को यह जानकारी हो जाए कि इस भूमि पर जहाँ यह यज्ञ होता है, अरे यहाँ कभी गऊओं के रक्त का संचार भी होता रहता था। यहाँ विज्ञानशालाएँ भी रहीं परन्तु देखो, यहाँ क्या-क्या होता रहा? मैं विस्तार देना नहीं चाहता। यह तो समाज है, जगत् है, इसी प्रकार चलता रहता है। यह परिवर्तनशील जगत् है। जो राजा है वह कल को सन्यासी बन सकता है, सन्यास में जा सकता है। इसी प्रकार यह जगत् चलता रहता है। जगत् का प्रवाह परम्परा से चला हुआ है यह आज कोई नवीन नहीं है।

यहाँ पुरातन काल में राजपुत्रों को सुन्दर शिक्षाएँ प्रदान की गयी थी। वह समय मुझे भली-भांति स्मरण है जिस समय पितामह भीष्म ने अपने पाण्डु पुत्रों, धृतराष्ट्र के पुत्रों और द्रोणाचार्य के लिए स्थल बनवाया था। यह वारणावतपुरी एक शिक्षा क्षेत्र था जहाँ धुनर्विद्या का पारायण केन्द्र रहा था। मुझे वह समय भली-भांति स्मरण है इसलिए मैं चाहता हूँ कि समाज में ऐसी एक महान् क्रान्ति आनी चाहिए जिससे यहाँ पुनः से अस्त्रों-षस्त्रों का एक केन्द्र बनें। जिससे यहाँ पुरातन द्रोणाचार्य जैसे बुद्धिमान पुनः से अस्त्रो-षस्त्रों की शिक्षा का एक केन्द्र बनाये। महाराज द्रोणाचार्य के द्वारा, कौन-सा राष्ट्र ऐसा था जो उनसे शिक्षा पान नहीं करता था। यह वही स्थली है, वही भूमि है जो खण्डित हो करके इस नदी के प्रवाह में कुछ समाप्त हो गयी।

आवास समाप्त हो गये परन्तु आज मैं पुनः उसकी जानकारी करा रहा हूँ। जहाँ कर्ण, अर्जुन जैसे बलिष्ठ यहाँ नाना प्रकार की अस्त्र-शस्त्र विद्या का अध्ययन करते थे और वह अध्ययनशाला इसी वारणावत क्षेत्र में ही थी उसके पश्चात् यहाँ लाक्षागृह बनाया गया। (सत्राहवां पुष्प, लाक्षागृह बरनावा, 23 फरवरी, 1972)

रामनगर (तहसील आंवला) का इतिहास

आज इस पृथ्वी मण्डल में यह जो हमारी आकाशवाणी जा रही है उस स्थल पर जा रही है जहाँ महाराजा भीम और घटोत्कच दोनों की विज्ञानशालाओं का निर्माण होता रहा है जिस स्थान पर इस वाणी का प्रादुर्भाव हो रहा है, उससे कुछ दूरी पर मानव अवशेष और नाना प्रकार के पदग्रंत अवशेष हमें प्राप्त होते हैं। आज मैं यह उच्चारण करने के लिए तत्पर हूँ कि भीम और घटोत्कच दोनों का ही यह स्थल था। क्योंकि पाण्डवों की जो सेना थी उसके सेनापति के रूप में महाराजा घटोत्कच रहते थे। महाभारत काल में जो हस्तिनापुर राज्य था उनकी विशाल सेनाएँ यहाँ रहती थी। यह एक नगर था। जो सोमकामुक केतु नाम का नगर कहलाया जाता था, जहाँ विज्ञानशालाएँ थी, जहाँ वैज्ञानिक नाना अस्त्रों-षस्त्रों का निर्माण करते रहते थे। यह गंगा के पूर्वी भाग में ही अप्रत स्थान कहलाया जाता था जिसमें गंगा के जलों का अवशेष ले करके उनसे नाना प्रकार के अणुओं का निर्माण करते रहते थे आपो ज्योति लेते हुए

उसी के द्वारा यहाँ नाना प्रकार के अक्रीत और सुदानी रहते थे। उसके पश्चात् महाभारत के काल में यह अक्रीत सेनाऐं सब उस महासंग्राम में समाप्त हो गयी, घटोत्कच भी संग्राम में समाप्त हो गए। परन्तु यहाँ भीम का बहुत समय तब अपना विशेष स्थान रहा है।

यह स्थान वह भी कहलाया जाता है जहाँ कुछ समय महाराजा युधिष्ठिर का यज्ञ भी चलता रहता था, जब उन्हें वन प्राप्त हो गया था। वन प्राप्त हो जाने के पश्चात् इस स्थल पर रहने का उन्हें सौभाग्य मिला। ऋषि-मुनि आते और यज्ञ चलता रहता था। यहीं ऋषि-मुनियों ने महाराजा युधिष्ठिर, महारानी द्रौपदी को बटलोई प्रदान की थी वह इसी स्थान पर प्राप्त होती रही। महात्मा दुर्वासा का यहीं आगमन हुआ जब पाण्डवों को श्राप देने आने को उन्होंने अप्रत किया। जब महाभारत काल समाप्त हो गया था तो उसके पश्चात् उन्होंने कुछ भवनों का निर्माण किया। पाण्डव काल में मुनिवरो! यहाँ महाराजा युधिष्ठिर का न्यायालय भी रहा है। महाराजा अर्जुन और भगवान कृष्ण इत्यादियों ने यहाँ विज्ञानशालाओं कें अपने अन्वेषणों का निर्माण करना भी आरम्भ किया।

काल समाप्त हो जाने के पश्चात् यहाँ अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित का भी न्यायालय रहा है उस काल में भी उनके राष्ट्र की नाना सेनाऐं रहती थी उसके पश्चात् यह स्थली बिना मानव के बन गई यहाँ रमकेतु नाम की एक नगरी थी जिसमें क्षुधा प्राणी रमण करते थे।

इसी प्रकार मानो वह भूमि भी समाप्त हो गई। उसके पश्चात् जैन काल आया। जैन काल में ही एक महामुनि ने यहाँ तपस्या की। तपस्वी बनने के पश्चात उनके अवशेष के कारण उस समाज ने यहाँ आज से दो-तीन हजार वर्ष पूर्व यहाँ एक देवालय का निर्माण किया उस देवालय में तपस्वी की मूर्ति को स्थापित किया, स्थापित करने के पश्चात् यहाँ रेमकेतु, सुहागिन मृदानी, केकरू आदि यहाँ जैन हुए। जिन्होंने इन मन्दिरों का, देवालयों का निर्माण किया। निर्माण करने के पश्चात् यह अप्रेत निर्माण इसी प्रकार चलता रहा।

यहाँ एक पुस्तकालय होता था जिसमें घटोत्कच भीम और महाराजा परीक्षित का हस्तलिखित पोथियाँ, जिनमें नाना प्रकार का विज्ञान था, चन्द्रयान से ऊपरले लोकों में जाना, यान बनाना, उन यानों के निर्माण करने का कर्म था, वह उस काल में जब देवालय बना तो, किसी कारण से आज मैं उसका स्पष्टीकारण करा रहा हूँ, कि जैन काल में अग्नि के मुखारविन्दु में वह साहित्य समाप्त हो गया। यह वह स्थली है जहाँ वनों में पाण्डवों का भण्डारा चलता था। और जब महारानी द्रौपदी बटलोई में से अन्न पाती तो वह भण्डार समाप्त हो जाता था। पाण्डवों को विपत्ति काल में अपने जीवन व्यतीत करने का यहाँ सौभाग्य प्राप्त हुआ है। गंगा से पार होकर इस स्थली पर आ करके उन्होंने अपने जीवन का कुछ भाग बिताया। इसके पश्चात् जब उनका एक साल वन के लिए रह गया तो वह

यहाँ से विहारपुरी को चले गये। वृहारपुरी इन्द्रप्रस्थ से दक्षिण भाग में मानी जाती है। इसी प्रकार इन्द्रप्रस्थ से दक्षिण भाग में विहारपुरी जहाँ उन्होंने अपने जीवन को गुप्त रूपों से व्यतीत करने का प्रयास किया। यह तो वह स्थली है जहाँ मुझे भी, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को और भी नाना ऋषि-मुनियों को उस काल में आने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है।

एक समय महाराजा घटोत्कच ने और भीम ने यह कहा था कि हम यहाँ एक यज्ञ करना चाहते है। उस समय महाराजा व्यास, सोमकेतु शीर्य और महर्षि कुम्भ, महर्षि जमदग्नि, शाममुनि ऋषि जिनको हमारे यहाँ सांख्य का कर्त्ता कपिल जी कहा जाता था उनका जब आगमन हुआ तो यहाँ सुन्दर-सुन्दर यज्ञ के निर्माण हुए। ऐसे सुन्दर यज्ञ हुए कि छः माह तक यज्ञ प्रारम्भ रहा। उसी यज्ञ को इस प्रकार की ज्ञान-वैज्ञानिक सुगन्धियों में परिणत किया जिन सुगन्धियों का, जिन परमाणुओं को उन्होंने अपने में धारण करते हुए चन्द्रयान और चन्द्रायन से ऊँचे मंगलयानों का निर्माण भी प्रायः इस यज्ञ के पश्चात् किया गया। (पन्द्रहवाँ पुष्प, रामनगर, आंवला (बरेली) 23 अगस्त, 1976)

१४ राष्ट्रीयता के लिए उद्बोधक आह्वान

पवित्र भारत भूमि

यह वह भारित भूमि है जहाँ ऋषि मुनि उस स्थिति में आते है जहाँ उनके उदर पूर्ति का भी कोई साधन प्राप्त नहीं होता, परन्तु वह अपना विकास करते हैं। यह वह पवित्र भूमि है जिस पवित्र भूमि में विराजमान हो करके अपने जीवन को बनाया जाता है। जिस पवित्र भूमि पर संसार को शिक्षा दी जाती है। यह पवित्र भूमि संसार का एक महान् प्रतीक है। महान् ऊँची संस्कृति का प्रतीक है। परन्तु आधुनिक काल का संसार दूसरों को जानकर के मग्न हो रहा है और अपने हृदय को इतना मलीन कर दिया है कि अपनी मानवीयता और अपने ऋषि मुनियों की वार्ता को शान्त कर दिया। यहाँ क्या-क्या नहीं हुआ। आज जिनको यह मान्यता देते है वह इनके वेदों पर आक्रमण करते है और कहते है कि वेद तो केवल ऋषियों का काव्य है। क्यों कहते है? इसलिए कहते है क्योंकि भारतवासियों ने अपने उस कर्त्तव्य को त्याग दिया है। जब यहाँ वेदों का गौरव था, वेदों का अनुकरण करने वाली प्रभावशाली प्रजा थीं, ऋषि मुनि थे, मेरी भोली माता थी और उसी वेद के अनुकूल अपने प्यारे पुत्र को अपने गर्भ में इस प्रकार का बना दिया करती थी, जैसे वेद का एक अमूल्य मन्त्र होता है, उस वेद मन्त्र में जो पवित्र भाव होते वह उस बालक के हृदय में माता की भावनाओं के अनुकूल प्रविष्ट हो जाते हैं।

विचारों पर आक्रमण

यहाँ सबसे प्रथम विचारों पर आक्रमण होता रहता है। आज यदि संसार को ऊँचा बनना है तो विचारों के आक्रमण को शान्त करते चले जाओ। क्या आक्रमण होता है? सबसे प्रथम संसार में गुरुड़मवाद चलता है। उसके पश्चात् विचारों पर आक्रमण होता है। इन विचारों के आक्रमणों ने हमारे जीवन का और सर्वत्र संसार का विनाश कर दिया है। इन्हीं विचारों के आक्रमण ने यहाँ राजाओं को शान्त कर दिया है। गुरुदेव! यहाँ विचारों पर आक्रमण होता चला आया है। जिससे वेद की विद्या-लुप्त होती चली गई है। यहाँ वह वेद का भौतिक विज्ञान जो ऋषि मुनियों ने अपनी वाणी से सीचा था वह एक प्रकार से अब शान्त हो गया है। क्योंकि यहाँ विचारों पर आक्रमण हुआ, यहाँ यवनों ने आकर विचारों पर आक्रमण किया। क्यों हुआ? इसका कारण है रुढ़िवाद। रुढ़िवाद से विचारों पर आक्रमण हुआ और विचारों पर आक्रमण करके यहाँ जो सम्पन्न विद्या थी उसे शान्त कर दिया। आधुनिक काल का संसार तो अपने विचारों में इतना परिपक्व है कि जो भी यथार्थ वाक्य आता है वह ढलक जाता है, उसमें वह समाहित नहीं होता। इसका क्या कारण है? इसका कारण है कि मानव के द्वारा इतना स्वार्थ है, इतना रूढ़िवाद है कि रूढ़िवाद से विचारों पर आक्रमण शांत नहीं कर सकते। आज एक दूसरे के विचारों पर आक्रमण किया जाता है जैसे

मुहम्मद के मानने वालो ने यहाँ आकर के विचारों पर आक्रमण किया, बुद्ध ने विचारों पर आक्रमण किया, महावीर ने विचारों पर आक्रमण किया, जिससे यहाँ अनेक मत हो गए। राजाओं ने आकर विचारों पर आक्रमण किये। अकबर ने यहाँ विचारों पर आक्रमण किया गया, जिससे वैदिक संस्कृति शान्त होती चली गयी, यहाँ क्या नहीं हुआ? यहाँ वह पुस्तकालय जिसमें महाराजा अर्जुन और घटोत्कच्छ की वह पुस्तकें, जिनमें समस्त भौतिक ज्ञान और विज्ञान था, वह सब अग्नि के मुख में चला गया। आज उस साहित्य के समाप्त होने से क्या हुआ? हमारी इस भारत भूमि को छोड़कर अन्य दूसरों राष्ट्रों ने जिन्होंने विज्ञान में प्रगति की है उन्होंने कहा है कि वेद ऋषियों का एक काव्य है। जब यहाँ महाराजा परीक्षित के राज्य में महाराजा जनमेजय, सर्व यज्ञ कराने के पश्चात् जिसको हम पूर्वकाल में जन्मस्ती कहा करते थे और आधुनिक काल में उसको जर्मनी कहा जाता है वहाँ जाकर जन्मेजय ने अपना एक सूक्ष्म सा राष्ट्र बनाया और वहाँ वेद के अनुपम साहित्य को स्थापित किया गया और उस वेद की विद्या से उस राष्ट्र के विज्ञान ने बहुत अधिक प्रगति की है। आज जो विज्ञान हम देखा करते है, विज्ञान तो वेदों में ही प्राप्त होता है। हमें संसार में कोई ऐसा पुस्तकालय प्राप्त नहीं होता जहाँ वेद से पुरानी और ऊँची कोई विद्या प्राप्त हो जाए। इसमें ज्ञान-विज्ञान की, सब प्रकार की विद्या सम्पन्न है।

एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने संसार के पुस्तकालयों का भ्रमण कराया और मैंने (महानन्द जी) निर्णय करते हुए गुरुदेव से कहा कि वास्तव में संसार का कोई पुस्तकालय ऐसा नहीं जो वेद की तुलना कर सके। परन्तु आज वेद के जानने वाले नहीं रहे। आज वेद के जानने वाले तो हैं परन्तु सूक्ष्म हैं। जो जानते हैं उनके विचारों पर संसार में आक्रमण किया जाता है और उनको अपनी जीविका पूर्ति के लिए रुढ़िवाद में आना अनिवार्य हो जाता है।

अपने कुविचारों को कुचलो

महात्मा शंकराचार्य ने इन महान् वेदों को अपनाया और कहा कि हमें परमात्मा का पुजारी बन जाना चाहिए परन्तु इस स्वार्थी संसार ने उनके विचारों पर आक्रमण किया, उनके व्यक्तित्व पर आक्रमण करके उसे सदा के लिए विश्राम करा दिया। इस संसार ने क्या नहीं किया। महर्षि दयानन्द ने उस पवित्र वेदी को अपनाया जिससे यह संसार ऊँचा बन जाए, परन्तु आज उनके अनुयायी जो हैं उनमें एक प्रकार का रूढ़िवाद छाया हुआ है कि उनके समक्ष भगवान् राम और कृष्ण का नाम उच्चारण कर दे तो कहते है अरे-अरे यह क्या कर दिया? यहाँ इस प्रकार विचारों को नष्ट नहीं करना है प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों में स्वतन्त्र है, कर्म करने में स्वतन्त्र है आज तुम उनके विचारों को न कुचलो। तुम्हें यदि आज विचारों को ही कुचलना है तो अपने कुविचारों को कुचलो जिससे तुम्हारा जीवन पवित्र बन जायेगा

और ऋषियों की वेदी को विचारने लगोगे।

आर्य और सनातन भिन्न नहीं

जहाँ तक सनातन और आर्यता की भिन्न भेदता मानी जाती है वह सूक्ष्म सी भिन्नता केवल विचारों की है। विचारों पर आक्रमण करने से यह वाक्य हमारे आंगन में नहीं आता। एक कहता है कि हम आर्य समाजी है और एक गौरव से कहता है कि हम सनातनी है। परन्तु वह न तो एक प्रकार से आर्य है और न सनातनी है जो हृदय में गौरव के साथ कहा करते है। यदि दोनों में परम्परा की भावनाएँ हैं तो वे आर्य भी है, सनातन भी है। जब केवल मनमानी वार्ताएँ प्रारम्भ हो जाती है, मनमानी यज्ञ की परिपाटी प्रारम्भ हो जाती है ऋषित्व के सब वाक्य समाप्त हो जाते है तो न आर्य ही रहा, न सनातन ही रहा। हम संसार के इतिहास को देखा करते है तो प्रतीत होता है कि विज्ञान की अनुपम विद्या इस भारत भूमि पर पनपी थी, जहाँ भगवान् कृष्ण पनपे, जहाँ भगवान राम पनपे, जहाँ ऋषि मुनि पनपे यह वह पवित्र भूमि है। आज इस पर पनपना है तो तुम्हें आर्यता और सनातनता दोनों को विचारशील बनाना है और कैसे बनाना है? सनातन को तो अपनी महान त्राटियों को त्यागना है। जो वे जड़ पूजा में संलग्न होते जा रहे है और जड़ पूजा पर इतना अटूट विश्वास है कि यदि कोई उसके विपरीत कहता है तो वह उसे नष्ट करने के लिए उद्यत है। इसे त्यागना चाहिए। आर्यो को अपने

हृदय में श्रद्धा की वेदी को जगरूक कर देना है। यदि दोनों में श्रद्धा और त्रुटियों का त्याग हो जायेगा तो वेद की पवित्र वेदी बन सकती है। अरे, श्रद्धालु बन करके केवल जड़ पूजक बन गये तो देखों, यहाँ वेद का पग न रहेगा। यदि इस संसार और वेद की वेदी को ऊँचा बनाना है तो आर्यों को श्रद्धा की वेदी को अपनाना पड़ेगा। आज दयानन्द का कोई प्रमाण नहीं कि वह कितने श्रद्धालु थे। उनके जीवन में श्रद्धा की कितनी ज्योति जागृत थी। वे वेद के इतने श्रृद्धालु थे, इतने अनुयायी थे कि समस्त जीवन भर ब्रह्मचारी रह करके उस ओ३म् की पताका को अपनाया जिस ओ३म् की पताका से आज वेद का गौरव हमारे समक्ष है। (छठवाँ पुष्प, जंगपुरा, नई दिल्ली, 15 जुलाई, 1964)

आधुनिक समाज की स्थित

आज मैं यह विचार-विनिमय करता रहता हूँ कि धार्मिक पुरुषों की सन्तान क्या कर रही है, यहाँ मुदगल गोत्र, कपिल गोत्र और महर्षि भारद्वाज गोत्र नाना प्रकार के गोत्रीय है परन्तु उनका गोत्र ही गोत्र शेष रहा है उच्चारण करने के लिए उनके कर्म नहीं। भारद्वाज और शाण्डिल्य इत्यादि गोत्रों के पुरुष यहाँ ऐसी नियमावली बनाते है जिनको श्रवण भी नहीं किया जा सकता। आज मैं राजा से यह कहा करता हूँ कि राष्ट्र में आहार और व्यवहार को अशुद्ध मत करो। तुम्हारा स्थान रहे या न रहे परन्तु प्रजा का चरित्र रहना चाहिए। प्रजा

का चरित्र, मानवता उसके द्वारा रहनी चाहिए। ऐसा मेरा सदैव विचार रहा है। मैं यह विचारता रहता हूँ कि संसार में यह क्या हो रहा है। जब शिक्षार्थी नाना प्रकार की कठपुतलियों में रमण करने लगते है तो क्या उनका चरित्र रह सकेगा? जब नाना प्रकार की मेरी पुत्रियों को जिनका नृत्य ब्रह्मचारी को दिग्दर्शन कराया जाता है, क्या उस ब्रह्मचारी में राष्ट्रवाद या धर्मवाद आ सकेगा। यह असम्भव है यह तो नास्तिकवाद की पहचान है। जब राजा के राष्ट्र में द्रव्य की दाह हो जाती है कि मेरे राष्ट्र में द्रव्य होना चाहिए, चाहे संसार में प्रजा का चरित्र रहे या न रहे, मेरी पुत्रियों का शृंगार रहे या न रहे, परन्तु इस संसार में द्रव्य होना चाहिए तो जब इस प्रकार की प्रवृत्ति जब राजा के विचारों में आ जाती है, तो मैं प्रभु से सदैव कहा करता हूँ कि ऐसा राष्ट्र अग्नि के मुख में आ जाना चाहिए। ऐसा संसार नष्ट हो जाना चाहिए। इस प्रकार का विचार आज के संसार में मैं दृष्टिपात् कर रहा हूँ।

महर्षि दयानन्द ने एक वाक्य कहा था 'राष्ट में अराजकता नहीं होनी चाहिए और सब प्रजा को सुगठित विचार बनाने चाहिए, आर्यो का समाज होना चाहिए, अपने सुगठित विचार प्रकट होने चाहिए। वाद विवाद से रहित होना चाहिए, परन्तु मैं क्या करू जब मैं महात्मा दयानन्द के उन वाक्यों को विचार विनिमय करता हूँ तो हर्ष के मारे बहुत दूर चला जाता हूँ, परन्तु जब उनके मानने वालों के विचारों में

जाता हूँ तो ऐसा प्रतीत होता है कि महात्मा दयानन्द के विचार कहाँ चले गये? कहाँ गई वह वेदी? सुगठित होने की वैदिकता और आर्यता कहाँ चली गई? यहाँ आर्यता नहीं अनार्यता आ गई है। अनार्यता का परिणाम क्या है? वह भयंकर अग्नि है और कुछ नहीं हो सकता। जहाँ कभी महात्मा दयानन्द के मानने वालों में सुगठित विचार था, महानता थी, वैदिक परम्परा के विचार थे, वहाँ ऐसा विवाद उत्पन्न हो गया है, भयंकर अग्नि उनके अन्तःकरण में प्रदीप्त होने जा रही है यह कैसी घृणा की अग्नि है, जैसे मानव की आत्मा चले जाने के पश्चात् अग्नि भस्म कर देती है परन्तु घृणा रूपी जो अग्नि होती है यह मानव के अन्तःकरण को निगलती चली जाती है और ऐसे निगल जाती है जैसे समुद्र में नदियां अर्पित हो जाती है। ऐसे मानव को शुक्रत्व हनन होता चला जाता है। पुण्य ही नष्ट हो जाता है। हे मानव! आज तू दयानन्द का पुजारी बनना चाहता है तो घृणा न कर। तू, घृणा की वेदी को मत अपना। घृणा से तेरे मानव जीवन का विनाश होता है, आवागमन की परम्परा बनती है, न जाने आगे चल करके तुम कौन-सी योनि में प्रविष्ट हो जाओगे। यह कुछ नहीं कहा जा सकता।

महात्मा शंकर ने अपने कैसे उत्तम विचार दिए, परन्तु आज उनमें जातिवाद की प्रतिभा ओतप्रोत हो गई। मुझे यह राष्ट्र स्मरण आता रहा है। राष्ट्र में एक नियम होना चाहिए कि एक दूसरे मानव

से घृणा नहीं होनी चाहिए। राजा के राष्ट्र में वास्तव में इस प्रकार का नियम तो है परन्तु उसको कियात्मकता में नहीं लाया जा रहा है। इसका मूल कारण क्या है? स्वार्थवाद इसका मूल कारण है, अपने को उच्च स्वीकार करना। प्रभु की सृष्टि में मानव-मानव से घृणा करना यह मानव का बड़ा दुर्भाग्य होता है। मुझे इस आर्यवृत की परम्परा का साहित्य स्मरण आता रहता है। दूसरे राष्ट्रों से प्रजा घृणा को लेकर आती परन्तु यहाँ के आर्य पुरुष उनको अपने में अपना लेते थे। जैसे हमारे यहाँ नाग जाति आई, हूण जाति आए, परम्परा से आते चले गए उन सबको हमारे महापुरुषों ने अपना लिया। एक त्रुक नाम की जाति आई, उनकी जातियता हमारे ही अपनेपन में आर्यवृत परिणत हो गई।

परन्तु यह काल कुछ इस प्रकार का आया है कि अब यहाँ महात्मा दयानन्द आ जाओ, कोई आ जाओ, सब उन्हें हटा देगे। परन्तु आज के समाज का, आज के काल का दुर्भाग्य है। जब मानव-मानव से घृणा कर रहा है, यवन अधिक होते जा रहे है, महात्मा ईसा के मानने वाले अधिक होते जा रहे हैं, जो आर्यो का कार्य था वह विदेशी व्यक्तियों ने अपना लिया, वे तो महानता की विचार धारा को अपनाते है परन्तु यह अपनी विचारधारा को त्याग करके अपने आर्यावर्त और वैदिकता को ऐसे नष्ट करते चले जा रहे हैं जैसे सायंकाल का सूर्य अस्त हो रहा है। यह वैदिकता किस काल

तक चलेगी? यदि यही कार्य तुम्हारा चलता रहा तो कुछ काल में यह वैदिकता का सूर्य अस्त हो जायेगा।

अरे! दयानन्द के विचार वालो! शंकर के विचार वालो! यदि तुम्हारा यही विचार चलता रहा तो देखो, यह संसार रूढ़िवाद की अग्नि में परिणत होने जा रहा है। अरे नानक! के विचार वालों, नानक के विचार कब तक रहेंगे इस संसार में? किस काल तक रहेंगे? जब यहाँ यवनों की ईसा की अज्ञानता छा जायेगी, आर्यता नष्ट हो जाएंगी, कब तक रहेंगे तुम्हारे महापुरुषों के विचार भी? ऐसे दग्ध हो जायेगे जैसी अग्नि ईधन को भस्म कर देती है। आज तुम्हें विचार-विनिमय करना है। आज का मानव यह उच्चारण कर सकता है कि महानन्द जी तो आर्यो की वार्ता नहीं प्रकट कर रहे हैं। आर्य अनार्य हो गये, अज्ञानता से उनमें अनेकता आ गई। जो एकता की वेदी पर थे उनमें इस प्रकार की घृणा आ गई है कि एक मानव दूसरे मानव से अपना मिलान नहीं चाहता, विचार देना नहीं चाहता ऐसा यह राष्ट्र बन गया। यह समाज, यह आर्यता किस काल तक जीवित रह सकेगी? विज्ञान की वेदी से और चन्द्रमा में जाने से तुम आर्य नहीं बनोगे तुम आर्य तो अपने जीवन को श्रेष्ट बनाने और दूसरों को अपनाने से बनोंगे। दूसरों को अपनाने का प्रयास करो।

एक मानव यवन बन गया है वह यवन ही बना रहेगा, वह मुहम्मद के विचारों का ही बना रहेगा उसके मन में एक दाह है कि

मैं पुनः से आर्य बनूँ। परन्तु आर्यो में देखो, उनमें इतना अजीर्ण हो गया है कि वे उसको अपनाना नहीं चाहते। मैं तो उनको आर्य नहीं अनार्य कहा करता हूँ। मेरा केवल अपना जातियत्व यह विचार रहता है कि समाज में एक दूसरे को अपनाने की शक्ति होनी चाहिए। उन्हें द्रव्य से अपनाओ। द्रव्य तो धर्म के लिए होता है। आज संसार में धर्म को पाप में परिणत कर दिया है। द्रव्य को धर्म में लाने के स्थान पर उसके दुरुपयोग से वह पाप में परिवर्तित हो गया है। राष्ट्र के द्रव्य को धर्म में परिवर्तित करना चाहिए। प्रजा का जो द्रव्य है वह पाप में परिणत हो जाता है इसीलिए उससे एक दूसरे को नष्ट करने वाले यन्त्रों का निर्माण होता है। परन्तु जीवन के लिए कोई यन्त्र नहीं बनाता यह है आज का समाज। (सोलहवाँ पुष्प, जोरबाग, नई दिल्ली, 1 अगस्त, 1970)

आधुनिक जगत् का जो युवक समाज है, मेरी जितनी पुत्रियां है, उनके जीवन में उनके आहार और व्यवहार में आधुनिक जगत् का, आयुर्वेद का वैज्ञानिक एक कुठाराघात कर रहा है। उस प्रकार का आहार बना दिया है जिससे आधुनिक काल का युवक रसातल को चला जा रहा है। उस आहार से न तो विचार बनते है न प्रीति बनती है और न उस आहार से राष्ट्रीयता का विचार रहा है। उसमें एक स्वार्थवाद की प्रथा परिणत हो रही है, जो संसार में दूसरों के रक्तों का पान करने वाले है, उनमें प्रायः स्वार्थता की प्रतिभा उत्पन्न हो

जाती है। वह जो स्वार्थवाद आ जाता है वह समाज के लिए, गृह के लिए, राष्ट्र के लिये घातक बन करके रहता है। उससे यह सन्देह बना रहता है कि राष्ट्र में कही रक्त भरी क्रान्ति न आ जाये, जिससे जब स्वार्थ बलवती हो जाता है, द्रव्य के ऊपर समाज का जीवन निर्धारित हो जाता है तो प्रायः ऐसा प्रतीत होता है भगवन्! जैसे यह समाज रक्त के मार्ग, अग्नि के मार्ग को अपना रहा है।

राष्ट्र में सुरापान की प्रवृत्ति को, असुर प्रवृत्ति को राजा को समाप्त करना चाहिए, आधुनिक जगत् के समाज में यहाँ असुर प्रवृत्ति को जन्म दिया जा रहा है। असुर प्रवृत्ति बलवती होने पर भी कभी-कभी मानव बना रहता है क्योंकि आत्म चेतना इस मानव शरीर में अपना कार्य कर रही है आत्म चेतना की जो क्षुधा लगी हुई है, उससे भी प्राणी दूरी नहीं जा पाता। परन्तु राष्ट्र में सुरापान करने वाले मानव के लिए यह राजा ही उसका दोषी कहलाया जा रहा है। राष्ट्र ही इसका द्रोही बन रहा है क्योंकि राष्ट्र में व्यवसाय होने से वह समाज में ऐसे तत्वों को जन्म देता है जिससे समाज में उसका रक्तमय जीवन बन जाये, रक्तमयी क्रान्ति बन जाये और अपने पद की लोलुपता के लिए वह समाज में आसुरी प्रवृत्ति का द्योतक बना हुआ है।

भगवान् कृष्ण का जीवन कितना महान् था परन्तु यह समाज ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस चिकित्सा के गर्भ में चिकित्सा को

जानने वाले मानव ने प्राणियों को प्राणियों के माँस भक्षण करने की प्रवृत्तियों को जन्म दिया है उससे युवक समाज भ्रष्टता के आगन को जा रहा है। मानव अपनी आभा में नहीं रहा है अन्तरात्मा की, हृदय के वाक्यों को वह शान्त करता रहा है वह उपलब्धता होती है परन्तु उन प्रेरणाओं को दमन करने वाला स्वार्थी राजा जैसे अपने में यह जानता है कि मैं सुरापान की प्रवृत्ति जो मैंने दी है, यह मेरे राष्ट्र के लिए विनाश कारक है। यह मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है, परन्तु व्यवसायी होने से, स्वार्थी होने से उन उच्च भावनाओं का वह दमन करता रहता है और समाज को रसातल के क्षेत्र में ले जाता है। (यज्ञ एवं औषधि विज्ञान, जोरबाग, नई दिल्ली, 19 दिसम्बर, 1982)